'साधना-रहस्य'-स्मरणिका-मानस साधना मण्डल

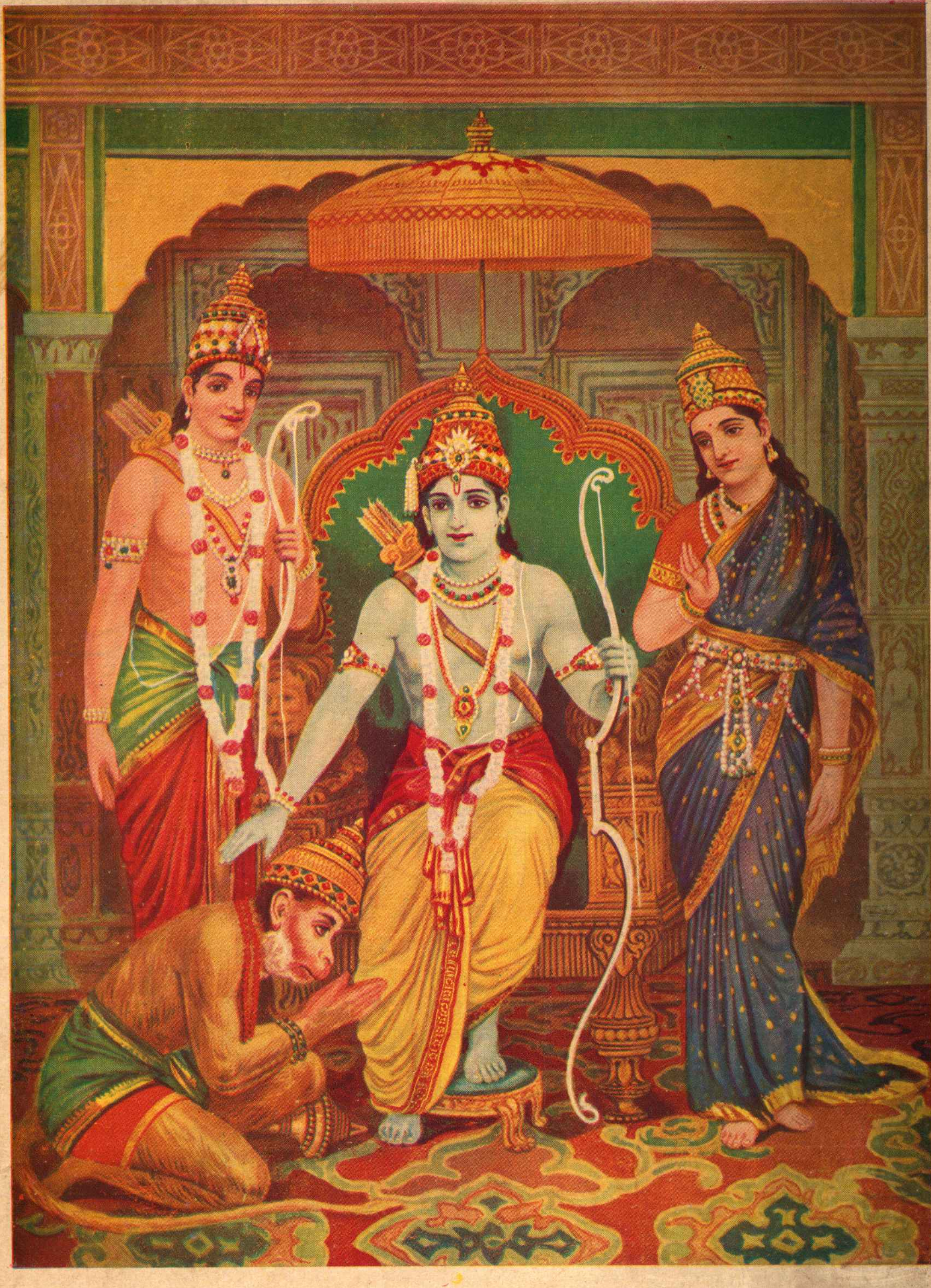

१६-१९ अक्तूबर, १९६९] ११ वीं अ० भारतीय गोष्ठी, बम्बई [विजयादशमी-वि. सं. २०२६

मानस साधना मण्डल के संस्थापक-अध्यक्ष

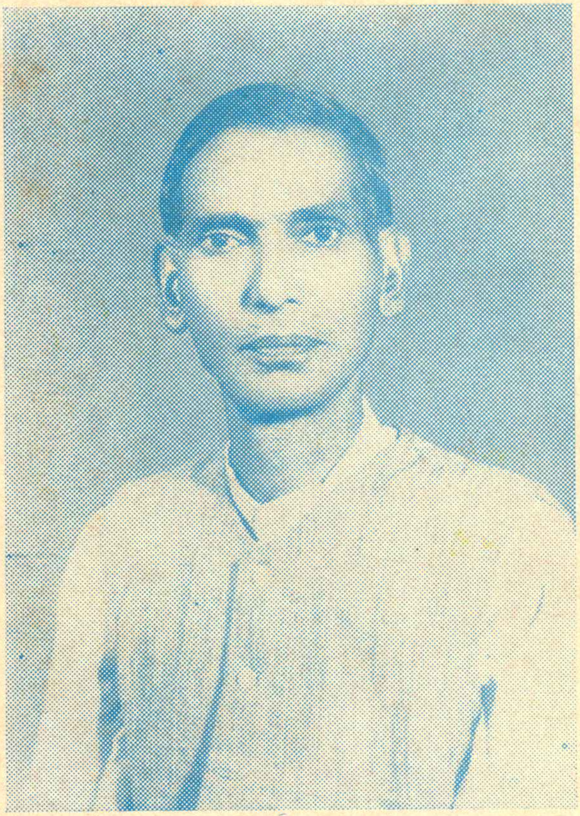

परम पूज्य श्री हृदयनारायण 'योगीजी'

आशीर्वचन

★

प्रत्येक वस्तु और व्यक्ति के भीतर एक मौलिक सत्ता विद्यमान है जो शक्तिमय, आनंदमय और ज्ञानमय है। वर्त्तमान में यह सत्ता अपरिस्फुट रूप में है इसी कारण जीवन में रोग, चिन्ता और भय, जिसे रामचरित मानस में त्रिताप कहा गया है, विद्यमान हैं। इस सत्ता का पूर्ण प्रस्फुटन मानवेतर किसी भी प्राणी में नहीं हो सकता और उसके प्रस्फुटन का प्रभाव यह होगा कि शरीर में शक्ति, मन में आनंद और बुद्धि में ज्ञान का संचार होकर रोग, दुःख और भय मिट जाएंगे।

यद्यपि मानव मात्र त्रिताप मिटाने की दिशा में सचेष्ट है फिर भी ये दुःख इस कारण नहीं मिट रहे हैं कि मानव की धारणा में भ्रांति और मान्यता में अपूर्णता है। धारणा में भ्रान्ति यह कि वह समझता है कि शक्ति, आनंद, ज्ञान का संबंध भोजन, धन, अध्ययन से है। यदि गहराई से खोज की जाए तो मनुष्य को इस सिद्धान्त का अबाधित ज्ञान हो जाएगा कि जैसा दीखता है वैसा है नहीं और वस्तुतः भोजन से शक्ति, धन से सुख, और पुस्तकों से ज्ञान नहीं मिलेगा। तब वह अधिक भोजन, अधिक संग्रह और अधिक अध्ययन की ओर अग्रसर न होकर उपवास, अभोग और सुमिरन की साधना अपनाएगा, जिसे मानस में तप का मार्ग कहा गया है और जिससे दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाएगी।

मान्यता की अपूर्णता यह है कि मानव भगवान का अस्तित्व तो स्वीकार करता है परंतु व्यापकत्व नहीं, अर्थात् सबसे प्यार नहीं करता और भगवान को शक्तिमय आनंदमय और ज्ञानमय नहीं मानता। सरल अन्तःकरण वाले साधक यदि इस बात का अटूट विश्वास कर लें कि भगवान व्यापक सत्ता है और शक्ति आनंद और ज्ञानमय है और इस मान्यता के आधार पर भगवान के सुमिरन और भजन का रास्ता अपनाएं, जो विश्वास का पथ है, तो उनके सारे दुःख मिट सकते हैं। यह भक्ति का मार्ग है। इस प्रकार संसार के अबाधित ज्ञान और भगवान में अटूट विश्वास इन दोनों मार्गों से दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति हो सकती है।

'ग्यानिहि भगतिहि नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव संभव खेदा॥'

मानस साधना मंडल के साधकों ने अपनी योग्यता एवं सामर्थ्य के अनुसार धारणा की भ्रान्ति और मान्यता की अपूर्णता को दूर कर जिस प्रकार शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक दुःखों से छुटकारा पाने की चेष्टा की है उसका विवरण मंडल के साहित्य में लिपिबद्ध है। भगवान से प्रार्थना है कि मानव विचार अथवा भावना के मार्ग द्वारा उस सत्ताका प्रस्फुटन करे और दुःखों से निवृत्त हो जाए।

मानस साधना मण्डल की विचारधारा के आदि प्रवर्तक

तथा

परम पूज्य श्री हृदयनारायण 'योगीजी' के गुरु महाराज

संत–प्रवर

पं० बदरीनारायण त्रिपाठी

साधना-रहस्य

[शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक साधना का वैज्ञानिक प्रयोगपूर्ण मासिक]

११ वीं अखिल भारतीय गोष्ठी, बम्बई विशेषांक

राम भगति मनि उर बस जाके ।
दुख लवलेस न सपनेहुँ ताके ॥
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं ।
जे मनि लागि सुजतन कराहीं ॥

*

अवैतनिक सम्पादक

कुबेरप्रसाद गुप्त

*

संरक्षक :

१–परमपूज्य ' योगीजी'
२–श्री शिवप्रसाद सेठ, शाहजहाँपुर
३–श्री फतहलाल वर्डया, हरगाँव (सीतापुर)

परामर्शदाता :

१–डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र
२–डा० भगीरथ मिश्र
३–डा० देवकीनन्दन श्रीवास्तव
४–श्री मदनमोहन सहाय
५–श्री शिवशंकर मिश्र

विशेषांक–सम्पादक–मण्डल :

हरिकिशनदास अग्रवाल
गणेश नीलकंठ पुरंदरे
गोविन्दलाल ग० महादेविया
लालभाई र० मेहता
महावीर कौशिक
जगदीशप्रसाद सिंह
शिवशंकर मिश्र
त्रिभुवनपाल गोयल

मूल्य :

वार्षिक – पांच रुपये आजीवन–१०१ रुपये इस अंक का – दो रुपय

प्रकाशक :

मानस साधना मण्डल

डी–१२।४ राजेन्द्र नगर, लखनऊ–४

फोन : २६११३

आशीर्वाद एवं शुभकामनाएँ

"वर्तमान युग में गोस्वामी श्री तुलसीदास जी महाराजने जनमानसके उन्नयन के लिये जो कार्य किया है, वह किसी भी अन्य कविके साथ तुलनाके योग्य नहीं है, स्तुत्य है, अनुपम है। उन्होंने सिद्धांत पक्ष को गौण करके और सांप्रदायिक मतभेदोंका सर्वथा तिरस्कार करके सदाचार भक्ति और ज्ञान की ऐसी त्रिवेणी प्रवाहित की है जो कि विश्वको चिरकाल तक पवित्र करती रहेगी। उन्होंने संक्षेपमें दार्शनिक तत्त्वोंका सारसंग्रह करके लिया है। धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक और पारिवारिक सुव्यवस्थाको एक निश्चित, दृढ़ एवं लक्ष्यगामिनी प्रेरणा प्रदान की है जो शाश्वत सत्यको प्रकट करती रहेगी। उन्होंने पारिवारिक सम्बन्धोंको भी एक सौहार्द्रपूर्ण सांचे में ढाला है और सर्वत्र आध्यात्मिक रूप देनेके लिये उनकी कृतियों से बढ़कर दूसरी कोई रचना नहीं की गयी। सबसे बड़ी बात तो यह है कि उन्होंने संपूर्ण चराचर की हृदय भूमि को भक्तिभावकी पीयूषधारासे अभिषिक्त कर दिया है। उन्होंने सामाजिक जीवनके किसी भी अंगकी उपेक्षा नहीं की है। हमारी शुभकामना है कि आप लोगोंका यह स्तुत्य प्रयास जन-जनके मनको उनके बतलाये पथ पर चलनेकी प्रेरणा दे।"

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मानस साधना मंडल की ग्यारहवीं अखिल भारतवर्षीय गोष्ठी बम्बई में होने जा रही है। श्री रामचरित मानस लोक-मानस के निरतिशय उत्थान के लिए शाश्वत प्रेरणा का स्रोत है। गोष्ठीकी सफलता के लिए शुभकामनाएँ।

अखण्डानन्द सरस्वती

'श्री कृष्णाश्रम' दावानल कुण्ड, वृन्दावन, मथुरा (उ० प्र०)

●

भोगवाद और जड़वाद से अन्धा हुआ मानव सुख और शान्ति के लिये इधर-उधर भटकता है। वाह्य सुखों के पीछे घूमता रहता है और अन्तमें दुःख पाकर खिन्न और म्लान हो जाता है। क्या वाह्य विषयों के अलावा दूसरे किधर भी सुख, शांति और स्वास्थ्य का स्थान नहीं है? जरूर है, लेकिन इस यन्त्रयुग के ज़माने में बहुत से लोग जानते हुए भी बोलने में घबराते हैं। ऐसे विकराल समय में मानस साधना मंडल एक लोकोत्तर और दिव्य काम कर रहा है। जिस से अखंड आनंद, अखंड शांति और अखंड स्वास्थ्य व्यक्ति को कैसे मिलेगा और उसके लिये कौनसी साधना होगी उसके बारे में वह प्रयत्न कर रहा है और मंडलने कुछ कार्यक्रम भी कार्यान्वित किया है। उनके सेक्रेटरी श्री त्रिभुवनपाल गोयल एक त्यागी, शक्तिशाली, कर्मठ और आध्यात्मिक व्यक्ति हैं। इनके साथ बातचीत करने के पश्चात् जो कुछ भी इस मंडल का परिचय हो गया उससे मुझे सिर्फ आशा ही नहीं लेकिन पूर्ण विश्वास है कि उस के पीछे भगवान रहेगा और इस कार्य को बढ़ायेगा। हम सब बम्बई के स्वाध्यायी लोग आपके साथ ही हैं। मैं कार्यव्यस्त होने से आ नहीं सकता हूं उसके लिये मुझे दुःख होता है। फिर भी मैं आनेका प्रयत्न करूंगा। ऐसे महान कार्यों के पीछे भगवान की शक्ति होती ही है। वही हम सबको युग परिवर्तन के लिये शक्ति, बुद्धि और सामर्थ देती है।

पांडुरंग शास्त्री

श्री मद्भगवद्गीता पाठशाला, माधव बाग, बम्बई

●

श्री मानस साधना शिविरके शुभावसर पर मुझे यह जानकर अधिक प्रसन्नता हुई कि आयोजक महानुभावोंने उन्हीं तीन बातों को लक्ष्य में रखा है, जिन तीनों की इस कालमें परम आवश्यकता है। सन्त शिरोमणि श्री तुलसीदास जीने जनता की निकटतम भाषा में भक्ति-सरिता जन-कल्याणार्थ प्रवाहित की । आज की आवश्यकताओं की पूर्ति मानव द्वारा प्रतिपादित करना मानो भक्ति-सरिता के मनोहर घाट बनाना है । जिसकी पूर्व भूमिकाका दर्शन साधकों को शिविर में होना है। वे कथित तीन मार्ग ये हैं :– १–मितव्ययिता–थोड़े में जीवनयापन का सिद्धान्त। २–समय दान। ३–उपार्जित से वितरण। इन तीनों सिद्धांतों के व्यापक प्रचार से देशके उज्ज्वल भविष्य की पूर्ण आशा की जा सकती है। मुझे तो विश्वास है कि उपार्जितके वितरण से और आवश्यकता पड़ने पर अमूल्य समय निकालने से तथा धर्म से प्राप्त द्वारा निर्वाह करने से हमें रामराज्य बुलाना न पड़ेगा किन्तु वह स्वयं भारत-वासियों का दरवाजा खटखटाएगा।

आयोजकों को मेरी शुभकामनाएँ हैं। लक्ष्य-प्राप्ति के लिए प्रभु राम शक्ति प्रदान करें।

स्वामी कृष्णानन्द जी आचार्य

तुलसी निवास––बम्बई

●

'मो ते अधिक संत करि लेखा' यह भगवान राम का आदेश है, और आप लोग सदा अपनी मानस गोष्ठी संतों का स्मरण करके आरंभ करते हैं. अतः सफलता तो आपकी होनीं ही है। मानस 'सजीवन मूरी' है। मानस कल्पतरु है। दैहिक दैविक भौतिक तापों का विनाश उससे होकर सब प्रकार की वाञ्छनीय कामनाओं की सिद्धि अवश्यम्भावी है। प्रभु से हमारी प्रार्थना है कि आगामी नवरात्रि पर होने वाली आपकी गोष्ठी को बहुमुखी सफलता मिले और उसमें भाग लेने वालों का कल्याण हो। ''रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि।। ताहि भजहि मन तजि कुटिलाई। राम भजे गति केहि नहिं पाई।।''

माता जी

(धर्मपत्नी संत प्रवर पं० बदरी नारायण त्रिपाठी) पूना

●

रामचरित मानसका नित्य पाठ गांधीजीकी सायं प्रार्थनामें होता था। सन् ४० से ४२ के बीच जब जब मुझे वहां जाने और रहने को मिला, पूज्य बापूजीकी पवित्र सन्निधिमें मानसका पारायण भी करता रहा। उसके बाद कई बार जीवन में ऐसे प्रसंग आये हैं, जब निराशा या अनुत्साहका अनुभव किया है, तो पुनः प्राचीन श्रेष्ठ ग्रंथोंकी शरणमें गया हूं और उनसे मुझे प्रेरणा मिली है। उपनिषद, ज्ञानेश्वरी कबीर बचनावली, तुकाराम की गाथा की तरह तुलसी-रामायण भी ऐसा ही अखंड शक्ति और उत्साह देने वाला ग्रन्थ है। उसमें साहित्यिक गुणोंके साथ साथ आध्यात्मिक शांति देने के भी गुण हैं।

मैंने कई रामायणें पढ़ी हैं: वाल्मीकि, कम्बन, कृत्तिवास, रंगनाथ, एकनाथ, भास्कर आदि के साथ साथ हिन्दी में केशवदास, मैथिलीशरण गुप्त, निराला और अन्य अनेक कवियोंकी कृतियां कई भाषाओंमें पढ़ी हैं। राम कथाका काव्यरूप अगाध अर्णवकी तरह है। पर गोस्वामी तुलसीदासजीके मानसकी विशेषता कुछ ओर ही है । वह जन मानसमें बस गया है। उत्तर भारत का वह जन ग्रन्थ है । हर ग्रामीणकी जिह्वा पर बस गया है, अन्तर

में उतर गया है। यह इसलिये संभव हुआ कि तुलसीदासजीकी जीवन साधना उसमें एक सारके रूपमें अवतरित हुई।

गांधीजीने अपने रामराज्यकी कल्पना तुलसीके मानससे ली। दैहिक, दैविक, भौतिक, तापोंसे भारतको दूर करना हो तो निरे पारायण और मंत्र नाम जाप से काम नहीं चलेगा। करना कुछ उससे अधिक होगा। साधना का अर्थ है उसका जीवनमें अनुवाद।

डा० प्रभाकर माचवे
नई दिल्ली

●

साधारणतया, लोगों में यह धारणा बनी रहती है कि हम जितना अधिक खाएँगे उतने अधिक बलवान बनेंगे परंतु बात कुछ और ही है। सत्य तो यह है कि जितना अधिक हम खाएँगे, उतने ही हम बलहीन होते जाएँगे। अतिरिक्त खान-पान से बहुधा मनुष्य 'मोटा' हो जाता है, परंतु यह स्थूलपन उसके जीवन में अनेक रूपों में प्रकट होता है। यदि आप किसी कुशाग्र बुद्धिमान की मानसिक कुशाग्रता को कुण्ठित करना चाहते हैं, तो आप उसे कुछ अधिक भोजन दीजिए। तत्पश्चात्, उसके परिणाम को देखिए। इसी भांति, यदि आप किसी व्यक्ति की रचनात्मक शक्ति को क्षीण करना चाहते हैं, तो उसे अतिरिक्त भोजन दीजिए; यदि आप किसी तार्किक बुद्धि संपन्न व्यक्ति को विपरीत दिशा में मोड़ना चाहते हैं, तो उसे अत्यधिक खिलाइए। यदि आपकिसी धर्म-भीरू को धर्म से विमुख करना चाहते हों, तो उसे खूब खिलाइये-पिलाइये तथा यदि आप किसी अभिमानी तथा दुराग्रही को और अधिक अभिमानी तथा हठी बनाना चाहते हैं, तो उसे अत्यधिक भोजन दीजिए।

डीशेन

●

जीवन का लक्ष्य केवल संसारकी झंझटों में आसक्त रहना या वैषयिक प्रपञ्चों में लिप्त रहकर उन्हें जुटाते रहना ही नहीं है। यह तो वास्तवमें पशु–धर्म है। मानव को अपने मानवत्व की स्थिति को स्पष्ट करने के लिए इससे विलक्षण आचरण करना होता है। इन्हीं विवेकयुक्त आचरणों को साधना तपस्या आदि नामों से कहा जाता है। इस साधना में वह ज्यों–ज्यों आगे बढ़ता है, उसमें मानवत्व अधिकाधिक विकसित होता है और एक दिन ब्रह्मत्व की उपलब्धि होती है, जो साधना की अन्तिम स्थिति है।

आजके इस भौतिक तत्वों से प्रभावित जगतमें कुछ संस्कारी जन ही भगवत्कृपासे इस मार्ग पर चलते हैं और सौभाग्यतः अपने लक्ष्य की दिशामें अग्रसर होते हैं।

मानस साधना मंडल के प्रभावी एवं संस्कारी कार्यकर्ता प्राचीन भारतके निगूढ़ तत्वोंको जन–समक्ष सरल उपायों से सुबोध भाषा में सर्व सुलभ एवं सर्व सुकर बना रहे हैं, जिससे अनन्त जनताका लाभ हो रहा है।

कलकत्तावासी मंडलके कार्यकलापों का आनन्द ले चुके हैं। भगवान की महती कृपा से अब वह आनन्द बंबईवासियों को भी प्राप्त होता रहेगा।

क. श्रीनिवास शास्त्री, कलकत्ता

●

हर्ष का विषय है कि मानस साधना मंडल के ग्यारहवें अखिल भारतीय सम्मेलन के अवसर पर "साधना रहस्य" का एक विशेषांक प्रकाशित किया जा रहा है।

मानस में भारतीय चिन्तन तथा भक्तिका अद्‌भुत सम्मिश्रण हुआ है। भक्त यदि भाव-विभोर होकर इसका पाठ करते हैं तो साहित्य-रसिकों को अपने रसास्वादन के लिए इसमें बहुत कुछ मिलता है। समाजशास्त्री, कूटनीतिज्ञ तथा राजनय विशारद इसका यदि गहराई तथा बारीकी से अध्ययन करें तो मानसमें उनके लिए भी बहुत कुछ है। वास्तव में मानसका इस दृष्टि से अध्ययन किया ही नहीं गया है।

मेरी कामना है कि इस दिशा में भी मानस साधना मंडल कुछ प्रयास कराये।

राम सुभग सिंह
रेलमंत्री, भारत सरकार

•

यह जानकर हर्ष हुआ कि मानस साधना मंडल का ग्यारहवाँ सम्मेलन बम्बई में १६ से १९ अक्तूबर तक आयोजित किया जा रहा है, तथा मंडल इस अवसर पर एक स्मरणिका भी प्रकाशित कर रहा है। मुझे आशा है, स्मरणिका में प्रस्तुत सामग्री से लोगों में आपसी प्रेम तथा उच्च आचरण की भावना फैलेगी। आपके कार्यक्रम की सफलता के लिए मेरी शुभकामनाएँ।

विद्या चरण शुक्ल
गृहराज्य मंत्री, भारत सरकार

•

मानस चतुश्शती भारतवर्ष के प्रत्येक नागरिकके लिए चिन्तन और मननका समय है। श्री रामचरित मानस म संत तुलसीदासजीने जिन मूल्योंकी व्याख्या की है, वे मानव-समाज के चिरंतन मूल्य हैं। आज हमें फिर से विचार करना है कि उन मूल्योंको आजके संदर्भ में किस प्रकार जन-जीवनमें स्फुरित किया जा सकता है। हम सबको उसी दिशामें कर्तव्य-निष्ठा से कार्य करना है।

मानस साधना मंडल इस दिशा में जो कार्य करेगा, वह सराहनीय होगा, ऐसी आशा है। मैं उसके प्रयास और अभियान की सफलता की कामना करता हूं।

सिद्धेश्वर प्रसाद
बिजली व सिंचाई उपमंत्री, भारत सरकार

•

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मानस साधना मंडल की एक बृहद् गोष्ठी शीघ्र ही बंबई में आयोजित हो रही है। चरम भौतिकता की इस विशालकाय नगरी में आध्यात्मिकता की इस स्फूर्तिदायिनी गोष्ठी की मैं अभ्यर्थना करता हूं।

मानस साधना मंडल के कार्यों तथा कार्यकलापों के प्रति मैं सदव जिज्ञासु रहा हूं। राजनैतिक जीवन की व्यस्तता के कारण मंडल के आयोजनों में मैं पर्याप्त रूप से कभी सक्रिय भाग नहीं ले सका हूं फिर भी उसकी विचार धारा, उद्देश्य तथा साधना के प्रति मेरी निष्ठा है तथा मानव जीवन को सुखद, लोकोपयोगी तथा सर्वांगीण बनाने के उसके प्रयासों की मैंने सदैव सराहना भी की है।

बंबई में आयोजित होने वाली यह गोष्ठी मंडल के प्रयासों को नया बल तथा प्रेरणा प्रदान करेगी, ऐसा मेरा विश्वास है तथा इस अवसर पर प्रकाशित होनेवाला 'साधना रहस्य' का विशेषांक तद्‌विषयक सामग्री से आपूर्ण होगा इसके प्रति मैं आशान्वित हूं।

मैं गोष्ठी की सफलता के लिए अपनी मंगलकामना प्रेषित करता हूं।

चतुर्भुज शर्मा
अध्यक्ष, तुलसी शोध संस्थान तथा राजस्व मंत्री, उ० प्र०

●

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मानस साधना मंडल के ग्यारहवें अखिल भारतीय अधिवेशन के अवसर पर "साधना रहस्य" का एक विशेषांक निकालने का आयोजन किया जा रहा है। मानस साधना मंडल अपनी सीमित सामर्थ्यानुसार जो लोकोपयोगी कार्य कर रहा है वह व्यक्ति, देश और समाज के लिये उपयोगी है।

मुझे आशा है कि साधना रहस्य का यह विशेषांक इस दिशा में उपयोगी सिद्ध होगा। मैं इसकी सफलता हेतु अपनी शुभकामनाएं भेजता हूं।

गिरधारी लाल
सार्वजनिक निर्माण मंत्री, उ० प्र०

●

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि बंबई में होने वाली मानस साधना मंडल की ग्यारहवीं अखिल भारतीय गोष्ठी के अवसर पर 'साधना रहस्य' का एक विशेषांक प्रकाशित किया जा रहा है।

'साधना रहस्य' केवल एक धार्मिक पत्र मात्र नहीं है, जो केवल पारमार्थिक उपलब्धियोंकी दृष्टिसे सामग्री प्रस्तुत करता हो। इसमें मानव मात्र के दैनिक जीवन की महत्वपूर्ण समस्याओं पर वैज्ञानिक ढंग से व्यावहारिक सामग्री प्रस्तुत की जाती है।

मुझे आशा है कि इस विशेषांक की सामग्री भी उपयोगी और व्यावहारिक होगी। मैं इसकी सफलता की कामना करता हूं।

रामजी लाल सहायक
शिक्षामंत्री, उ० प्र०

●

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्री मानस साधना मंडल पूज्य योगीजी के निर्देशन में श्री रामचरितमानस के आध्यात्मिक सिद्धांतों का प्रतिपादन कर रहा है। आजकल के अशांत वातावरण में मानव के मन को किसी भी रूप में शांति मिल सके ऐसे सरल उपाय श्री रामचरितमानस में हैं, केवल उनके व्यापक प्रचार की आवश्यकता है। विज्ञान और अध्यात्मवाद के समन्वय की आवश्यकता है। सच्चे सुख की प्राप्ति के लिए प्रभु की भक्ति उपासना ही एकमात्र उपाय है जिससे मानव सांसारिक सुखों का उपभोग करते हुए भी परम आनंद को प्राप्त कर सकता है।

सात्विक आहार, सत्यभाषण, संयम और सत्संग से उपासना बलवती होती है। इन चारों साधनों से साधक का मन निर्मल हो जाता है। किसी भी उपासना-मार्ग का निष्ठापूर्वक, दीर्घकाल और निरंतर अवलंबन करने पर वह साधक को क्रमशः आध्यात्मिक विकास कराते हुए अंतिम ध्येय—भगवत्प्राप्ति तक पहुंचा देता है। भगवद्-अर्पण बुद्धि और भगवत्सेवा की भावना से किया हुआ कर्म तत्काल और शीघ्र फलदायी होता है। भगवत् तत्व की सच्चे हृदय से उपासना भगवत्प्राप्ति का श्रेष्ठ और सुलभ साधन तो है ही, साथ ही वह स्वयं साध्य भी है। उपासना के माध्यम के द्वारा भगवत् तत्व के स्पर्श के फलस्वरूप हमारे जीवन में आमूल परिवर्तन होने लगता है। अज्ञान अंधकारमय हमारा जीवन ज्योतिमय, आलोकमय होने लगता है। हमें जीते जी अमरत्व का अनुभव होने लगता है और मृत्यु का भय दूर हो जाता है।

श्री रामचरितमानस में शाश्वत कल्याण की साधना के अनेक उपाय वर्णित हैं जिनसे सात्विक विचार और आध्यात्मिक भावना में वृद्धि होती है। इसका उपाय स्वयं भगवान ने बताया है।

'प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।' क्योंकि
'बिनु सत्संग विवेक न होई।'

सत्संग से विवेक की प्राप्ति होती है चाहे वह साधु महात्माओं का हो या इसके अभाव में सद्ग्रंथों का। सत्संग से प्रभु की लीला जानने का अवसर मिलता है ——

'सुनिअ तहां हरि कथा सुहाई। नाना भांति मुनिन्ह जो गाई॥' क्योंकि
'हरि अनंत हरि कथा अनंता।'

हरिकथा सुनने से या करने से प्रभु के चरणों में प्रेम उत्पन्न होता है। शंकर भगवान ने भी श्री रामचरितमानस में कहा है—

'बिनु सत्संग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गए बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग॥'

लोकनायक गोस्वामी तुलसीदासजी व उनके एवं सबके आराध्यदेव भगवान श्रीराम के चरणों में मेरा कोटि कोटि प्रणाम।

गजाधर सोमानी
श्री निवास हाउस, बम्बई

●

मंडल के अखंड शक्ति, आनंद, ज्ञान, स्वास्थ्य तथा प्रेम के आधार पर स्थित उद्देश्यों को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

आजके अशान्त वातावरण में भारतवर्ष में इन उद्देश्यों के प्रचार की अत्यंत आवश्यकता है।

उद्देश्यपूर्ति से समाज तथा राष्ट्र का बहुत कल्याण होगा ऐसी हमारी आशा है।

इस सम्मेलनकी सफलता के लिये हमारी मंगलकामना है।

नागेन्द्र पति त्रिपाठी
प्रधानमंत्री, बिहार संस्कृत संजीवन समाज, पटना

●

"Best wishes for the success of the 11th All India Manas Sadhana Mandal Convention.

(Dr.) S. Radhakrishnan

•

I am glad to note that you are holding the 11th All India Convention of Manas Sadhana Mandal in Bombay during the Navratra days.

I wish the Convention every success.

With regards,

K. M. Munshi,
Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay.

•

I am in receipt of your kind letter and glad to hear that your Organisation is going to hold the 11th All India Convention based on the fundamental tenets of Shri Ramcharit Manas at Bombay from 16th to 19th October 1969. May God bless the function to a grand success is my prayer.

May God bless you !

Swami Krishnanand Acharya,
President,
The Divine Life Society.

•

" On the occasion of your auspicious convention, we send you all our good wishes, blessings and loving greetings.

" We are sure, you will be able to indicate a right path to all towards the great goal of Satya-Siva-Sundara-Truth-Beauty-Goodness.

May the blessings of the Divine Mother be showered on you for ever and for ever; and fill your lives with perfect peace and bliss."

(Dr.) Roma Chaudhuri
Vice-Chancellor,
Rabindra Bharati.
Calcutta

•

I am glad to know that the Manas Sadhana Mandal is holding its 11th All India Convention in Bombay. The Mandal is encouraging people to lead a meaningful life based on higher values. It is thus doing a commendable service to the society in its own humble way. I send my best wishes for the success of its Bombay Convention.

S. Nijalingappa,
President,
All India Congress Committee, New Delhi.

•

The publication of the Special Number of the 'Sadhana Rahasya' by the Manas Sadhana Mandal on the occasion of its Eleventh All India Convention should help to educate the public about the aims and objects of the 'Sadhaks' who seek to achieve integrated development of personality on the basis of the fundamental tenets of Shri Ramcharit Manas.

I wish it all success.

K. K. Shah,
Minister for Health, Family
Planning, Works, Housing and Urban
Development, India.

•

I am glad to know that a Special Number of the 'Sadhana Rahasya' is being brought out on the occasion of the Eleventh All India Convention of the Manas Sadhana Mandal Scheduled to be held at Bombay in October 1969.

I wish this venture all success.

Triguna Sen,
Minister,
Petroleum and Chemicals and Mines and
Metals, Government of India.

"Harmonious blending of science with philosophy is the need of the hour. For therein lies the salvation of humanity. I am happy to know that the MANAS SADHANA MANDAL has been working at this. I wish its 11th All India Convention to be held at Bombay in the middle of October 1969, a grand success."

B. M. Bharaskar,
Minister for Social Welfare,
Maharashtra.

•

I am glad to learn that the 11th All India Manas Sadhana Mandal Convention is going to be held in Bombay in the middle of the next month and that a souvenir is going to be published on the occasion.

As the Convention that you are proposing to hold has got a very noble objective before it and as it may help in spreading the cause of real Dharma in that area. I send my greetings and best wishes to you and all the friends associated with this Convention for its happy and fruitful session. I hope that your efforts will be crowned with success and the souvenir that you are bringing out on this occasion will be appreciated by all.

Bhakt Darshan,
Minister of State for Education,
India.

•

I am glad to learn that the 11th All India Manas Sadhana Mandal Convention is being held at Bombay from the 16th to the 19th October 1969. I send you my best wishes for the success of your Convention.

B. S. Murthy,
Minister of State,
For Health, Family Planning ,Works, Housing and Urban Development, India.

•

Thank you for your kind letter dated 17th September 1969 regarding your request to preside over the 11th All India Convention of Manas Sadhana Mandal in Bombay and inaugural function of the Convention on 16th October in the morning and evening.

I regret my inability to preside over the said function due to previous engagements.

I wish every success to the function as well as to the Souvenir to be published on that occasion.

V. S. Page,
President.
Maharashtra Legislative Council.

•

" I wish the Convention every success."

S. V. Sohoni, I.C.S,
Chief Secretary,
Bihar Govt.

•

I am very much happy to know that you are holding 11th All India Convention. Contributions of Science and Techonology have made astonishingly rapid progress, but they have not been correlated to the subjective development of the human being. To this end our scientists, litterateurs, musicians and artists can make a very significant contribution, particularly in view of the fact that techonology has already suffered its first defeats in west in the form of youthful rebellion against the mechanised life with all physical comforts. It is now appreciated all over the world that we do not live by techonology alone. We want something more by which we can communicate with our real self.

Dr. B. R. Seth,
Vice- Chancellor,
Dibrugarh University,
Dibrugarh, Assam.

•

"Please accept my hearty good wishes for the success of your cause."

Kumar Ganganand Sinha
Vice Chancellor,
Kameshwarsingh Darbhanga Sanskrit
Vishwavidyalaya.

•

I am glad to note that this organisation of aspirants and Sadhaks are seeking to achieve the goal of integrated human development and to propogate the highest ideals of life.

I wish your convention all success.

R. P. Padhi,
Vice-Chancellor,
Berhampur University (Orissa).

•

"I wish the Convention full success."

(Dr.) K. L. Sahal,
Secretary,
Birla Education Trust.

•

I am glad to learn that MANAS SADHANA MANDAL has devoted itself to the propagation of the ideals of Goswami Tulsidasji as set forth in RAM CHARIT MANAS. Since my health is indifferent and programme uncertain, I regret it would not be possible for me to preside over a session of the Convention in Bombay. I wish your efforts and the function the best of success.

Rama Jain,
Sahujain Nilay, Calcutta.

•

I thank you very much for your kind letter. I am very happy that you are having celebrations on 'Ramayan'. Ramayan helps us greatly in our life.

I will not be in Bombay and therefore, deny myself the pleasure of witnessing your function. You have my best wishes.

S. P. Jain,
11, Clive Row, Calcutta.

•

I am glad to learn that Manas Sadhana Mandal is holding its 11th All India Convention from the 16th October, 1969 at Bombay.

Shri Ram Charit Manas has enunciated five-fold path of Sadhana for attainment of the highest ideals of life and the integrate religious philosophy and scientific technique. Shri Ram, as we hold him to day, as unapproachable was a peak of moral purity and ethical grandeur. How great must have been the man who could become unquestionably supreme in this kind that Shri Ram was and he could not be that unless he were what he professed often to be, the guardian and the embodiment in himself of Dharma.

I hope that the convention will help to foster a feeling of righteousness among the aspirants or Sadhaks.

I wish all success to the Convention.

Padampat Singhania,
Kamla Tower, Kanpur (India).

•

Your efforts in holding the 11th All India Convention at Bombay from 16th October to 19th October 1969 is praiseworthy.

The propagation of Manas through Sadhana is a valuable contribution to our religion and culture.

I wish all success to the Convention.

Durga Prasad Nathany,
President,
Calcutta Paper Traders Association.

•

There could not be a better cause than this as we require such spiritual feasts in the humdrum of present day life.

My best wishes are with you.

S. B. Saxena,
Secretary General,
Maharashtra United Nations Association.

•

संपादकीय

—१-

पूज्य 'योगीजी' का सत्संग गत कई वर्षों से बम्बई में श्री सी. बी. असीजा द्वारा आयोजित होता था पर इस वर्षसे सर्वश्री हरिकिशन दासजी अग्रवाल, व बाचू भाई (श्री हरि लालजी ड्रेसवाला) की प्रेरणासे प्रेम-कुटीर, भारतीय विद्याभवन, बम्बई स्प्रिचुअल सेन्टर इत्यादि में बड़े पैमाने पर हुआ। बातचीत में मानस साधना मंडल की अगली अखिल भारतवर्षीय गोष्ठी व शिबिर की चर्चा चली तो सबने यहाँ गोष्ठी करने के लिए मुझे उत्साहित व प्रेरित किया। तदनुसार मैंने परमपूज्य 'योगीजी' से जुलाई, ६९ में निवेदन किया और उन्होंने उसे कृपापूर्वक स्वीकार कर लिया और आज जो भी आयोजन हम कर पाये हैं वह उक्त दोनों तथा अन्य कृपालुओं के आशीर्वाद, सहयोग से ही संभव हुआ है। इसके पश्चात् अनेक सन्त-महात्माओं का आशीर्वाद एवं प्रेरणा भी मिली। गोष्ठी के लिए आयोजन-समिति बनी विभिन्न उपसमितियों का निर्माण हुआ और कार्य प्रारंभ हो गया। मैं उन सभी सदस्योंका हृदय से आभारी हूँ व अपनी तथा मंडलकी ओर से उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ और विनम्रभाव से निवेदन करता हूँ कि वे उदारमना भविष्यमें भी इसी प्रकार अपना प्रेम प्रदान करते रहें जिससे हमें प्रेरणा व उत्साह मिलता रहे।

इस अवसर पर मैं सभी सन्त–महापुरुषों के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। पूज्य 'योगीजी' के प्रवचनों की व्यापकता व उनके साहित्यकी देशकी विभिन्न भाषाओं में मांग के कारण इस विशेषांक को हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी, गुजराती और मराठी में भी प्रकाशित करना उपयोगी लगा। इस (अनुवाद) कार्य में गुजराती लेख श्री लालभाई र० मेहता तथा मराठी लेख श्री गणेश निलकंठ पुरंदरे ने बहुत परिश्रम से व अपने अन्य कामों व असुविधाओं का ध्यान न रखकर सहयोग दिया है इसके लिए हम उनके विशेष आभारी हैं। डा० कन्हैया लाल माणिकलाल मुंशी व श्रीमती लीलावती मुंशी का भी मंडल बहुत आभारी है जिनके पथ–प्रदर्शन, प्रेरणा और प्रेमने हमें इस कार्य में बल प्रदान किया है।

यद्यपि यह गोष्ठी बम्बई में हो रही है पर इसकी व्याकता का अंदाज इसीसे लगाया जा सकता है कि इसमें भारतवर्षके कोने-कोने से सन्तगण, साधक पधार रहे हैं तथा इसकी सफलता के लिए अनेकानेक विशिष्ट विभूतियों के आशीर्वचन एवं शुभकामनाओं के साथसाथ बंबई के अतिरिक्त कोटा, दिल्ली, कलकत्ता, मद्रास, हुबली, बेलगाँव, बीजापुर, बागलकोट, मारगाँव, पांजिम, पेरनेम इत्यादि स्थानों से आर्थिक सहयोग एवं विज्ञापन भी प्राप्त हुए हैं। इस लोककल्याण के धार्मिक कार्य में आर्थिक सहयोग देने के लिए हम सभी सहायकों एवं विज्ञापनदाताओं के आभारी हैं।

इस गोष्ठीकी एक प्रमुख विशेषता कत्थक नृत्य-सम्राट श्री गोपीकृष्णजीकी नृत्य–नाटिका 'संपूर्ण रामायण' भी है, जिसके लिए हम उनके भी आभारी हैं।

गोष्ठीके कार्यक्रमों के लिए भारतीय विद्याभवन, पाटकर हाल, माड़वाड़ी पंचायत बाड़ी आदि के अधिकारियों एवं व्यवस्थापकोंके भी हम ऋणी है, जिन्होंने स्थान देकर तथा अन्य प्रकार से भी सहयोग देकर गोष्ठी को सफल बनानेमें महत्वपूर्ण योग दिया है। अपने कार्यलयके सभी सह–कार्यकर्त्ताओंका व अन्य सभी सहयोगियों व स्वयं-सेवकों का मैं आभार मानता हूं, जिन्होंने सेवा-भावसे प्रेमपूर्वक अथक परिश्रम किया और मुझे सहयोग दिया है।

मानस साधना मंडल, जिसकी यह गोष्ठी है, के उद्देश्य निम्न प्रकार हैं—

१–उन स्वर्ण सिद्धांतों की खोज तथा उनका प्रचार एवं प्रसार, जो मनुष्य के व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन से अशांति और अभाव मिटाकर शक्ति, आनंद और ज्ञानयुक्त मानव तथा धन-धान्य से संपन्न समाज का निर्माण करने में सहायक हो सकें। तथा

२–उन व्यक्तियों एवं संस्थाओं से परामर्श तथा सहयोग का आदान-प्रदान जो मानव को सुखी बनाने के उद्देश्य से सचेष्ट हैं।

उक्त उद्देश्योंको ध्यान में रखकर हमने अन्य अनेक सन्त–महात्माओं एवं विशिष्ट विद्वानोंके लेख, उद्धरण, आप्तवचन आदि से इस अंक को अलंकृत किया, जिससे इसकी उपयोगिता बढ़ेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। इसके लिए मैं 'डिवाइन लाइफ़ सोसाइटी', भारतीय विद्याभवन, सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट, 'हेराल्ड आफ़ हेल्थ' आदिके विशेष कृतज्ञ हूं जिन्होंने इसकी अनुमति दी है साथ ही हम उनके प्रति क्षमाप्रार्थी भी हैं कि शीघ्रता तथा अन्य कठिनाइयोंके कारण हम आभार प्रदर्शन का उल्लेख अंक में यथास्थान नहीं कर पाये।

इसी अवसर पर हम श्री वेंकटेश्वर प्रेस के अध्यक्ष, व्यवस्थापक तथा उन सभी कर्मचारियोंका हृदय से आभार मानते हैं, जिन्होंने हमारी ओर से अनेक त्रुटियाँ तथा असुविधा होने पर भी पूर्ण मनोयोगसे इसे यथासंभव अति-शीघ्र प्रकाशित कर देनेकी कृपा की है। वैसे भारतवर्ष के इस प्राचीनतम प्रेसमें छपने से 'साधना-रहस्य' का गौरव बढ़ा ही है।

अपना बहुमूल्य समय निकालकर, मार्ग-व्यय पर काफी धन व्यय करके तथा यहाँ की असुविधाओं का तनिक भी ध्यान न कर देशके विभिन्न भागों से जो साधक पधारे हैं उनके प्रति मैं कैसे आभार प्रकट करूँ? वे तो मेरे अपने ही रूप हैं। हाँ, बम्बई-वासियों के साथ मैं अवश्य उनका कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने उन्हें अपनी उपस्थिति एवं अनुभवों को प्रस्तुत कर लाभान्वित करनेका सुयोग दिया है। यदि बम्बई में कुछ थोड़े से व्यक्ति भी इस गोष्ठीसे कुछ लाभ उठा सके और मानसके स्वर्ण सिद्धान्तों को जीवनमें उतार सके तो वे निश्चय ही भावी पथ-प्रदर्शक बन सकेंगे, राष्ट्र और युग-निर्माता बन सकेंगे, जिनकी आज नितान्त आवश्यकता है तथा यह गोष्ठी पूर्ण रूपसे सफल रही, यह भी कहा जा सकेगा।

इस आयोजन की सफलता का सारा श्रेय भगवान की कृपा, परमपूज्य 'योगीजी' के आशीर्वाद एवं यहाँ के सभी सहयोगियों को है, जिनमें अनेक मेरे आदरणीय, अनेक मेरे सखातुल्य तथा अनेक सहकर्मी सहयोगी हैं। साथ ही जाने-अनजाने में मेरे से कहीं किसी के प्रति किसी प्रकार का अपराध बन पड़ा हो तो उसके लिए मैं विनम्र भावसे उन सभी से क्षमा प्रार्थी हूँ। इस आयोजन की सभी कमियों का दायित्व मेरे ही ऊपर है।

अन्त में मैं सभी सन्तों, गुरुजनों एवं परम पूज्य 'योगीजी' के चरणोंकी वन्दना करता हूँ व मुहुर्मुहुः प्रणाम करता हूँ, जिनकी कृपा से ही यह सब संभव हुआ। परमपिता परमात्मा की अहैतुकी कृपाका यह एक नगण्य सा उदाहरण है। कामना है यह हमें प्रेरणा प्रदान करता रहे।

—२—

संवत् २०३१ की चैत्र सुदी रामनवमीको श्री रामचरित मानसके प्रणयनके चार सौ वर्ष हो जायेंगे। सभी मानस–प्रेमियोंका यह कर्तव्य हो जाता है कि वे इस मानस चतुश्शती को रामचरित मानसकी गरिमा और उपादेयताके अनुरूप मनायें। इस अवसर पर ऐसे कार्यक्रम बनाकर पूरे किये जाँय, जिनसे मानस का प्रचार घर-घर तक हो जाय, इतना ही नहीं- क्योंकि वह तो आज भी घर-घर प्रवेश पा चुका है-बल्कि वह व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्वके लिए अपना मंगलमय संदेश प्रस्फुटित करे और वह संदेश व्यावहारिक रूप प्राप्त कर अपनी उपयोगिता को भी मूर्तिमान करे।

अभी तो स्थिति यह है और दुखपूर्ण स्थिति है कि मानसके पठन-पाठन करने वालों के जीवनमें सभी प्रकार के दुःख बने हुए हैं जबकि मानसका डंकेकी चोट यह दावा है कि इसके प्रेमपूर्वक पढ़ने वाले, समझने वाले तथा चित्तमें धारण करने वाले (क्रियात्मक रूप देनेवाले) के जीवनमें किसी प्रकार का दुख नहीं रहेगा और वह सब प्रकार से सुखी हो जायेगा। यह स्थिति मानसके प्रति जनमानस की आस्था भले ही कम न करे पर इतना तो निश्चित है ही कि गोस्वामीजीका इसके प्रणयनका जो उद्देश्य था वह पूरा नहीं होगा और मनुष्य ऐसी कल्याण कारी पुस्तकके होते हुए, उसे पढ़ते हुए और उसके प्रति अगाध श्रद्धा रखते हुए भी उससे लाभ नहीं उठा सकेगा।

यह भी सही है कि मानसके संपूर्ण अथवा किसी कांड विशेष या किसी चौपाई या दोहा-छन्द विशेष के पाठसे बहुत से लोगों के कष्टोंका निवारण हुआ है अथवा उनकी मनोकामनाएं पूरी हुई हैं परंतु ऐसा अनुकूल परिणाम केवल उस प्रकार के पाठोंके ही फलस्वरूप हुआ है, ऐसा असंदिग्ध रूपसे नहीं कहा जा सकता क्योंकि इस प्रकारका परिणाम प्राप्त करने वाले उसी विधि से दूसरों को भी वैसा ही परिणाम प्राप्त करा सकें, ऐसा नहीं देखा जाता।

साथ ही यह बात भी महत्वपूर्ण है कि यदि हम मानसके दावों को आजके युगके प्रत्येक स्थितिके मानवके जीवनमें उतारने की विधि न प्राप्त कर सके तो वह समय दूर नहीं है जब मनुष्य मानससे उदासीन होने लगेगा और कालक्रमसे उसके लुप्त हो जाने की संभावना ही नहीं बल्कि आशंका भी की जा सकती है।

मानस साधना मंडल मानव-जीवनको हर प्रकार से सुखी करने की वैज्ञानिक एवं सटीक पद्धति की खोज एवं उनपर प्रयोग करता है। हमें यह कहते हुए प्रसन्नता और संतोष है कि मानस में मानव जीवनको हर प्रकार सुखी करने के जो दावे किये गये हैं, वे शतप्रतिशत सही हैं और आज भी सर्वथा व्यावहारिक पद्धति से उसमें वर्णित सिद्धांतों को जीवनमें उतार कर हर प्रकारके दुखों से सदा के लिए छुटकारा पाया जा सकता है।

मानस साधना मंडलने मानस में वर्णित सिद्धांतोंका वैज्ञानिक विवेचन और उनको जीवनमें उतारने की व्यावहारिक प्रविधि (टेक्नीक) प्रस्तुत की है जिनके अनुसार प्रयोग कर अनेकानेक (दुखी एवं जीवन से निराश) व्यक्तियोंका जीवन सर्वांश में सुखी हो गया है। उनके जीवनमें दवाओंके बिना अखंड स्वास्थ्य, भोजनके अभाव में भी शक्ति बनी रहना, सांसारिक पदार्थों (धन आदि) की अपेक्षा बिना अखंड आनंद और पुस्तकीय अध्ययनके बिना ज्ञान (निर्भयता) प्रस्फुटित हो रही है। इसकी वैज्ञानिताके बारे में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि अब तक के सभी प्रयोग सफल रहे हैं तथा व्यावहारिकता के बारेमें यह कहना यथेष्ट होगा कि साधकों में गरीब–अमीर, पढ़े–बेपढ़े तथा अनेक प्रकार के व्यवसायोंमें लगे लोग हैं।

मानस चतुश्शती के अवसर पर ऐसे साहित्यका प्रकाशन, पुस्तकालयोंकी स्थापना, गोष्ठियों का आयोजन, पत्रोंके विशेषांकोंका प्रकाशन अधिकाधिक होना चाहिए जो मानसके उस लोकोपयोगी पक्षको जो आजके लोकजीवन के लिए कल्याणकर है, न केवल प्रस्तुत किया जाय बल्कि उसे वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक स्वरूप भी प्रदान किया जाय।

इस कार्य में मानस साधना मंडल सचेष्ट है, पं० चतुर्भुज शर्माकी अध्यक्षता में स्थापित तुलसी शोध संस्थान एक प्रगतिपूर्ण कदम है। हम देशमें तुलसी एवं तुलसी साहित्य से संबंधित संस्थाओं, संगठनों तथा प्रत्येक मानस-प्रेमी से करबद्ध निवेदन करते हैं कि वे इस अवसर की महत्ता, गुरुता और सार्वजनिक उपयोगिता को ध्यान में रखकर मानस चतुश्शतीका कार्यक्रम बनावें और उसमें भगवानका नाम लेकर जुट जाँय।

टी. पी. गोयल

कुबेर प्रसाद गुप्त

मानस साधना मण्डल

११ वीं अखिल भारतवर्षीय गोष्ठी

अक्तूबर, १९६९ की आयोजन समिति

श्री आत्माराम गोयल	कोषाध्यक्ष	श्री मोती क. अदवानी	संरक्षक एवं परामर्शदाता
श्री गजाधर सोमानी	अध्यक्ष	श्री रामेश्वरदास साबू	,, ,,
श्री गणेश नीलकंठ पुरंदरे	उपाध्यक्ष	श्री लक्ष्मीनारायण कोठारी	,, ,,
श्री गिरीश शाह	संयुक्त मंत्री	श्री लालभाई र. मेहता	,, ,,
श्री गोपी कृष्ण	संरक्षक एवं परामर्शदाता	श्री वेदप्रकाश आहलूवालिया	,, ,,
श्री गोविन्दलाल ग. महादेविया	,, ,,	श्री विश्राम जी गोपाल जी सोलंकी	,, ,,
श्री गोविन्दलाल स. मनासावाला	,, ,,	श्री शमशेर बहादुर सक्सेना	,, ,,
श्री चरणदास मेगजी	,, ,,	श्री शान्तिभाई मेहता	,, ,,
श्री जगदीश प्रसाद सक्सेना	,, ,,	श्री सोमदत्त प. मदन	,, ,,
श्री जोगीन्द्र सिंह	,, ,,	श्री हरभगवान आहूजा	,, ,,
श्री दौलतराम सोमानी	,, ,,	श्री हरिकिशनदास अग्रवाल	सभापति
श्री नारायणदास गिदवानी	,, ,,	श्री हरिप्रसाद केडिया	संरक्षक एवं परामर्शदाता
श्री नवीन टी. खांडवाला	,, ,,	श्री हरिलाल बी. ड्रेसवाला	उपाध्क्ष
श्री नित्यानन्द पांडे	,, ,,	श्री हरीश नि. त्रिवेदी	संरक्षक एवं परामदर्शदाता
श्री महावीर कौशिक	संयुक्त मंत्री	श्री त्रिभुवन पाल गोयल	मंत्री

●

गोष्ठी का कार्यक्रम

दिनांक	समय	स्थान	विषय
१६ से १९ अक्टूबर प्रातः	५ से ६	पंचायतवाड़ी (माधवबाग)	ध्यान व प्रार्थना
१६ से १९ ,, ,,	७।। से ९	गीता मंदिर (भारतीय विद्या भवन)	योगीजी व सन्तों के प्रवचन
१६ अक्टूबर रात्रि	८ से ११	पाटकर हाल (प्रवेश कार्ड द्वारा)	नृत्य नाटिका 'संपूर्ण रामायण' श्री गोपीकृष्ण द्वारा
१६ से १९ अक्टूबर अपरान्ह	३ से ४।।	पंचायतवाड़ी	गोष्ठी, प्रश्नोत्तर, शंका समाधान
१७ से १९ ,, रात्रि	८।। से १०	पंचायतवाड़ी	योगीजी व प्रमुख व्यक्तियों के प्रवचन

विषय सूची

विभाग 'क' हिन्दी

विनय का पद—एक व्याख्या	—गोस्वामी तुलसीदास	१
रामचरित मानस के मौलिक सिद्धांत और तदनुकूल		२
साधन प्रणाली	—परमपूज्य योगीजी	४
भक्त की रीति	—डा० बलदेव प्रसाद मिश्र	११
विज्ञान और धर्म	—डा० मुंशीराम शर्मा	१३
एशिया में रामकथा—प्रसार	—श्री उदयनारायण सिंह	१५
रामनाम	—महात्मा गाँधी	१८
गांधी मुस्करा रहा	—रामनाथ द्विवेदी 'स्वजन'	१९
मानस में साधना का स्वरूप	—डा० चंद्र दीप सिंह	२०
मानस साधना मंडल	—	२४
आहार	—श्री हरिकिशनदास अग्रवाल	२६
मानस की पंचसूत्री साधना	—श्री कुबेर प्रसाद गुप्त	२८
मूर्ति पूजा	—श्री जी. एस. मनासावाला, एडवोकेट	३३
मुझे नई दृष्टि मिली	—श्री दुर्गाप्रसाद गुप्त, बलिया	३७
शाश्वत आस्था का संदेश	—डा० टी. एन सिंह	४०
कल्याणकारी सत्पथ	—श्री ओमप्रकाश मिश्र	४२
लंदन के एक साधक की डायरी से		४३
रामनाम की महत्ता	—कु० उमेश माथुर	४८
मेरे अनुभव	—श्री वशिष्ट नारायण	५०
रामनाम और सर्पदंश	—श्री सोमेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव	५३
मैं अब सब प्रकार सुखी हूँ	—बाबा सियाराम	५५
गोस्वामी तुलसीदास (कविताएँ)	—	५७
अद्‌भुत प्रकाश	—श्री धनीराम शास्त्री	५८
रामचरित मानस में रामभक्ति	—श्रीमती शाँति सहाय	६०
अहंकार का शीर्षासन	—श्री हरिकिशनदास अग्रवाल	६३
आकांक्षा का आकाश; प्रयास की परिधि	—श्री चतुर्भुज शर्मा	६५
मानस का लोकोपयोगी पक्ष	—श्री त्रिभुवन पाल गोयल	७१
प्रार्थना	—साधुवेश में एक पथिक	७४
हर पंक्ति एक मंत्र	—श्री शिव शंकर मिश्र	७५

विभाग 'ख' अंग्रेजी

ए क्लेरियन काल	—श्री टी. पी. गोयल	१
योगीजी ऐण्ड आई	—श्री एम. एम. सहाय	३
दि एसोटेरिक मीनिंग आफ् दी टेन अवताराज़	—स्वामी चिदानन्द	५
वे टु गाड	—श्री शिवानंद शास्त्री	८
हिन्दुइज्म, इट्स फंडामेंटल केरेक्टर ऐण्ड गोल	—श्री सी. परमेश्वरन	९

हाऊ ओल्ड आर यू ?	—श्री थोमस ए. डेविस	११
प्रेअर ऐण्ड डिवोशन	—परमहंस रामकृष्ण	१२
दी बेसिक कंसेप्शन आफ् हेल्थ ऐण्ड वाइटेलिटी	—डा० सी. डी. सिंह	१३
हाऊ एबाउट टी ?	—श्री रोनाल्द डब्ल. स्पॉल्डिग	१७
राम दहिनसिंह विद्यालय		२०
लाइट्स आफ् योग	—श्री अरविंद	२२
साइकोलौजिकल ऐस्पेक्ट आफ् योग	—श्री जी. एन. पुरंदरे	२३
हेल्प योरसेल्फ बाइ फौरगेटिंग योरसेल्फ	—श्री कॉस्टेंस कुइनले स्टिल्स	२५
दि राशनल ऐण्ड टेकनीक आफ् फ़ास्टिंग	—डा० सी. डी. सिंह	२६
चिन्मय लहरी	—स्वामी चिन्मयानंद	२७
कीज़ टु ए हैप्पी लाइफ़	—श्री नार्मन नोरिस	२८
दि कंटेजियन आफ् चियरफुलनेस	—श्री विलियम जी. रिथ	३०
लार्ड गणेश ऐण्ड हिज़ वर्शिप	—स्वामी शिवानंद	३१
तुलसीदास	—डा० के. एम. मुंशी	३४

विभाग 'ग' गुजराती

मन शुद्धि	—श्री जी. जी. महादेविया	२
परमपूज्य श्री हृदयनारायण जी (योगीजी) नो टुंक परिचय		३
मानस नुं उद्देश्य तथा रचना शैली	—परमपूज्य श्री हृदयनारायण (योगी जी)	६
रामचरित मानस नो मौलिक सिद्धान्त अने तेने अनुकूल साधन-प्रणाली	—परमपूज्य योगी जी	१२
मानवना सर्वांगीण विकास नी रूपरेखा	—परमपूज्य योगी जी	२०
सात्विक आहार	—श्री बेसराम भाई सोलंकी	२४
मानस मां श्रद्धा अने विश्वास नुं स्वरूप	—परमपूज्य योगी जी	२५
उपवास नुं दर्शन अने तंत्र	—श्री कुबेर प्रसाद गुप्त	३०
चित्त शाँतिना उपायो	—आचार्य भाई शंकर पुरोहित	३६

विभाग 'घ' मराठी

परमपूज्य श्री हृदयनारायण (योगीजी) संक्षिप्त परिचय.		१
मानस या ग्रंथाचे उद्दिष्ट व त्याची रचना-शैली	—परम पूज्य श्री हृदयनारायण (योगी जी)	४
रामचरित मानसमधील मूल सिद्धाँत व तदनुषंगिक साधन-प्रणाली	—परमपूज्य श्री हृदयनारायण (योगी जी)	१०
मनुष्याच्या सर्वांगीण विकासाची रूपरेखा	—परमपूज्य श्री हृदयनारायण (योगी जी)	१८
रामचरित मानस ग्रंथामध्ये श्रद्धा व विश्वास यांचे दर्शाविलेले स्वरूप	—परमपूज्य श्रीहृदयनारायण (योगी जी)	२३
उपवासाची मीमांसा व ते करण्याचे तंत्र	—श्री कुबेरप्रसाद गुप्त	२९

मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्

साधना-रहस्य

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वास रूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धा स्वान्तः स्थमीश्वरम् ॥

वर्ष ३] सितम्बर-अक्तूबर, १९६९ [अङ्क ९-१०

विनय का पद

यह बिनती रघुबीर गुसाईं ।
और आस-बिस्वास-भरोसो, हरो जीव जड़ताई ॥ १ ॥

चहौं न सुगति, सुमति, संपति कछु, रिधि-सिधि, बिपुल बड़ाई ।
हेतु-रहित अनुराग राम-पद बढ़ै अनुदिन अधिकाई ॥ २ ॥

कुटिल करम लै जाहिं मोहि जहं जहं अपनी बरिआई ।
तहं तहं जनि छिन छोह छांड़ियो, कमठ अंडकी नाई ॥ ३ ॥

या जगमें जहं लगि या तनुकी प्रीति-प्रतीति सगाई ।
ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होंहि सिमिटि इक ठाईं ॥ ४ ॥

—गोस्वामी तुलसीदास

विनय का पद --

एक व्याख्या

यह पद शरणागति-योग की सम्यक् व्याख्या करता है इसके अतिरिक्त कर्म-योग, ज्ञान-योग और भक्ति-योग भी हैं, जिन्हें मानव साधना-सोपान मानकर उनपर अग्रसर होता है।

इन चारों योगों को एक उदाहरण से समझा जा जा सकता है। पर्वत की तलहटीमें साधक एकत्र हैं। उनका लक्ष्य पर्वतकी ऊंची चोटी पर चढ़ना है। एक साधक अपने साथ पूर्व अर्जित साधन लेकर प्रस्तुत है। उसमें कुछ अनुकूल और कुछ प्रतिकूल योग देने वाले अस्त्र-शस्त्र हैं। वह आगे बढ़ता है और कर्म एवं कर्म-फल के जंगलमें जाकर खो जाता है। पर उसे यह ज्ञात नहीं है कि वह जिस साधन-संबल को लेकर आगे बढ़ रहा है, वह तो पर्वतकी चोटी पर पहुंचने (भगवत्-प्राप्ति) को लक्ष्य भी नहीं बना पाया है। किसी भी कर्मका फल अवश्य मेव भोगना पड़ता है और वह भोग-योगियों तक सीमित रहता है। ८४ लाख योनियाँ एवं स्वर्ग तथा नरक, ये सब भोग के क्षेत्रमें ही आते हैं इसलिए कर्म-योग का साधक पिछले जन्मोंके अच्छे-बुरे कर्मोंके भोग से तथा उनके अनुरूप निर्मित एवं प्रदत्त परिस्थितियों के प्रभावसे, अपनेको नहीं बचा पाता। कर्म क्षेत्रके झंझावातसे बचकर विरले ही पथपर आगे अग्रसर हो पाते हैं।

दूसरा साधक ज्ञान-मार्गी है। वह कुछ हथियार लेकर अपना पथ स्वयं बनाता हुआ ऊपर पहुंचनेका साहस रखता है। पहाड़ काटकर रास्ता बनाना, जंगलके हिंस्र पशुओंसे बचना, चढ़ाई की फिसलनसे बचना काफी कठिन एवं कष्ट-साध्य है। गोस्वामीजी ने 'ज्ञान-पंथ कृपान कै धारा' कहकर इसके लिए जिन साधनोंका उत्तर कांडमें वर्णन किया है, वे बड़े-बड़े साहसियों का भी दिल दहला देने वाले हैं।जिस कार्य में देवता, ऋद्धि-सिद्धि आदि भी बाधक हों, उसमें सफलता मिलना कितना दुस्तर है, समझा जा सकता है। ज्ञान-मार्ग में सफलता मिलने की कितनी कम संभावना है, इसे स्पष्ट करने के लिए कहा गया है –'होइ घुनाच्छर न्याय ज्यों'

तीसरा साधक भक्ति-मार्ग का है। उसने अपने को सब बिधि-दीन-हीन मानकर भगवान से मार्ग-दर्शन की प्रार्थना की है और भगवान स्वयं गुरु-रूपमें उसके सामने उपस्थित होते हैं। गुरु को तो चोटीपर चढ़नेका जो मार्ग है, वह मालूम है। इसलिए वह शिष्य (भक्त) का हाथ पकड़कर उस मार्गसे ले चलता है और भक्त मार्ग की बाधाओंको बिना प्रयास, मुदित मन पार करता चला जाता है। उसके लिए यह पर्वतीय यात्रा भय और कष्ट-प्रद न होकर आनंदमय और सुखकर हो जाती है ––

'सेवक सुमिरत नाम सप्रीती। बिनु श्रम प्रबल मोह दल जीती।।
'फिरत सनेह मगन सुख अपने। नाम प्रसाद सोच नहिं सपने।।'

और क्योंकि वह 'कहहु भगति पथ कवन प्रयासा" है।

चौथा साधक शरणागति के मार्ग को अपनाता है। वह अपना सब कुछ भगवान के सुपुर्द कर देता है। उसके पास अपना मान-अपमान भी नहीं है। वह संसार में केवल भगवानका ही सहारा करता है। उसका केवल भगवानके ही प्रति अनुराग है। भगवानके एकान्त सहारा का उदाहरण मानसमें नारद-मोहके प्रकरण में प्रस्तुत है, जिसमें राजा सीलनिधि की कन्याके प्रति आसक्ति होते हुए भी नारदको केवल भगवानका ही सहारा था –' मोरे हित हरि सम नहिं

कोऊ।' तथा धनुष-यज्ञके प्रकरण में माता जानकी का सहारा राजाजनक, दरबारियों, नगरवासियों, देवी-देवताओं यहाँ तक कि जड़ धनुष का भी था पर भगवान के प्रति उनका अनुराग अनन्य था। निष्कर्ष यह निकला कि भगवत् प्राप्ति के लिए भगवानके प्रति अटूट आश्रय अथवा अनन्य आसक्ति में से किसी एकका होना अनिवार्य है। ऐसा होने पर ही भगवान आश्रय वालेमें आसक्ति तथा आसक्ति वाले में आश्रय का भाव पैदा कर देता है।

शरणागति योगका साधक उस अबोध बच्चेके समान है जो आवश्यक होने पर केवल रोकर माँ को पुकार भर देता है और माँ, चाहे जिस या जितने महत्वपूर्ण कार्य में भी क्यों न लगी हो, उसे छोड़कर दौड़ पड़ती है और बालक चाहे जिस –स्वच्छ या अस्वच्छ अवस्था में होता है, उसे उठाकर गोदमें ले लेती है।

प्रस्तुत पदमें गोस्वामीजी शरणागति–योग के ही बारे में बतला रहे हैं। वे भगवानसे ही यह प्रार्थना करते हैं कि हे भगवान! मेरी यही विनती है कि हमारी बुद्धि की जड़ता (मूर्खता) दूर करो और दूसरों का सहारा भी समाप्त कर दो। मैं स्वर्ग, अच्छी बुद्धि, संपत्ति, रिद्धि-सिद्धि, मान-मर्यादा कुछ भी नहीं चाहता; क्योंकि शरणागत होने में ये बाधक हैं। मुझे तो तुम्हारे चरणों में स्वाभाविक प्रेम चाहिए। पिछले कर्म-भोगके फलस्वरूप मैं जिन-जिन परिस्थितियों में पड़ूँ, वहाँ तुम्हारा प्रेम हमारे ऊपर छाया रहे, हमारी रक्षा करता रहे। संसार में जितने भी नाते-रिश्ते हैं वे सब तुमसे ही हों —

'त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणम्, त्वमेव,
त्वमेव सर्वं ममदेव देव॥"

इसका अर्थ यह भी नहीं है कि हम सांसारिक नातोंके प्रति उदासीन हो जांय। नहीं। उनके प्रति अपना कर्त्तव्य पूर्ण रूपसे निभाना है। केवल उनके प्रति ममता (अपनत्व की भावना) नहीं रखनी है –

जननी जनक बंधु सुत दारा।
तनु, धनु, भवन, सुहृद् परिवारा॥
सब कर ममता ताग बटोरी।
मम पद मनहि बांधि बरडोरी॥

की भाँति मनमें उनपर ममता नहीं रखनी है उनमें अपनत्वकी भावना नहीं करनी है; बल्कि ऊपरसे कर्त्तव्य ठीक ठीक निभाना है।

इस प्रकार के शरणागति-योग के साधक के लिए चोटी पर पहुँचने हेतु जिस साधन की व्यवस्था की गयी है, उसकी तुलना आज कलके प्रचलित 'लिफ्ट' से की जा सकती है, जिसमें साधक को केवल चढ़ जाना मात्र है। उसके बाद वह कब कैसे चोटी पर पहुच गया यह उसे पता ही नहीं चलेगा।

गोस्वामीजी प्रस्तुत पद में इसी शरणागति योग का कुछ विवेचन प्रस्तुत करते हैं।

—oo—

बालकों के चरित्र-निर्माण तथा सर्वांगीण विकास के लिए
रंगीन, आकर्षक एवं प्रेरणाप्रद हिन्दी मासिक

बाल-जगत

वार्षिक मूल्य: सात रुपये। आजीवन १०१ रुपये।

डी-१२ / ४, राजेन्द्रनगर, लखनऊ-४

रामचरित मानस के मौलिक सिद्धान्त और तदनुकूल साधन-प्रणाली

— मानस किंकर श्री हृदयनारायण 'योगीजी'

श्री राम चरित मानस मानव की व्यक्तिगत और सामूहिक समस्त समस्याओं पर जो प्रकाश प्रस्तुत करता है वह युग-युगान्तर तक पथ-भ्रष्ट मानव का पथ-प्रदर्शन करने में पूर्ण रूप से समर्थ है, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। भगवान् शिव और माता पार्वती को साक्षी बनाकर मानसकार रामायण की फलश्रुति इन शब्दों में व्यक्त करते हैं :—

'सपनेहुं साचेहुँ मोहि पर जौ हर गौरि पसाउ ।
तौ फुर होउ जो कहेऊँ सब, भाषा भनिति प्रभाउ ।।'

अर्थात् जो व्यक्ति इस ग्रन्थ को मन लगा कर सुनेगा, बुद्धि लगा कर समझेगा और चित्त लगाकर उसके अनुसार आचरण करेगा, उसके जीवन में आमूल क्रान्तिकारी परिवर्तन होगा, उसके बाह्य-जीवन में सब प्रकार मङ्गल होगा—अभाव मिटेंगे, सुख मिलेगा। उसका आन्तरिक जीवन कलि-मल रहित होगा— दोषों की निवृत्ति होगी, शान्ति मिलेगी, और उसे राम के चरणों में अनुराग—प्रेम प्राप्त होगा, जो सुख और शान्ति, स्वर्ग और मोक्ष से परे की वस्तु है।

दूसरे स्थान पर गोस्वामी जी ने इस प्रकार लिखा है—

' सुनु खगपति यह कथा पावनी ।
त्रिविध ताप भव दोष-दावनी ।।'

अर्थात् भगवान् की यह पवित्र कथा तीनों तापों को दूर करने वाली है। शरीर से रोग, मन से चिन्ता और बुद्धि से भय को मिटाकर मनुष्य के जीवन में शक्ति, आनन्द और ज्ञान का संचार करने वाली है।

अब समझना यह है कि रामायण के इन दावों का आधार है क्या ? यद्यपि यह पवित्र ग्रन्थ, जिस में प्रभु की लीला का वर्णन है, उस प्रभु के समान ही अनन्त है और इसके रहस्य को प्रभु ही जानते हैं या जिसे वे जना दें वह भी किसी अंश में जान सकता है, फिर भी अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार जैसा कुछ गुरु-कृपा से और सन्तों के आशीर्वाद से मैं समझ सका हूँ उसे उन मित्रों के लिए व्यक्त करता हूँ जो रामचरित मानस में प्रतिपादित सिद्धान्तों के आधार पर कुछ साधना करके अपने जीवन में परिवर्तन लाना चाहते हैं।

मानस का सिद्धान्त यह है कि हम किसी भी दुःख के निवारण करने की चेष्टा करने के पहले उसके मूल कारण को जानने का प्रयास करें। जैसे जुकाम होने पर हम क्या औषधि सेवन करें यह न सोच कर हमें पहले सोचना यह चाहिए कि हमें जुकाम हुआ ही क्यों है। इस संबन्ध में मानस के उस प्रकरण में स्पष्ट संकेत मिलता है जिसमें श्री लखनलाल जी ने भगवान् राम से प्रश्न किया था और दुःख की निवृत्ति का साधन ज्ञान और वैराग्य समझकर उसके सम्बन्ध में ही पहले जानना चाहा था — (**'कहहु ग्यान विराग अरु माया। कहहु सो भगति करहु जेहि दाया ।।'**)

'ईश्वर जीवहि भेद प्रभु सकल कहहु समुझाइ ।
जाते होइ चरन रति, सोक मोह भ्रम जाइ ।।'

इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् राम ने दुःख का मूल कारण माया बतलाकर उसके ही सम्बन्ध में सबसे पहले प्रकाश डाला उसके बाद उसकी निवृत्ति के साधन ज्ञान, वैराग्य को समझाने का प्रयत्न किया। उनके वचन हैं :—

'थोरेहि महँ सब कहउँ बुझाई। सुनहु तात मन मति चितलाई।।
मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हें जीव निकाया ।।
गो गोचर जँह लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई ।।'

यहां भगवान् ने माया के दो रूप बताए हैं। एक "मैं-मेरा" जिसके कारण प्राणी संसार में दुःख भोग रहा है और दूसरा "प्रपंच"। जहाँ तक इन्द्रियाँ और मन का व्यापार है यह सब माया है।

माया का शाब्दिक अर्थ है (मा=नहीं, या=जो) जो नहीं है फिर भी प्रतीत होता है। अँधेरे में पड़ी हुई रस्सी

में सर्प की प्रतीति होती है, यद्यपि कहीं सर्प है नहीं। इसमें दो पक्ष हैं—(१) जो है सो मालूम नहीं हो रहा है, (२) जो नहीं है सो मालूम हो रहा है, अर्थात् रस्सी है पर मालूम नहीं होती और सर्प नहीं है जो मालूम होता है। यही श्रुति-प्रतिपादित सिद्धांत है—

'ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या'

अर्थात् ब्रह्म यथार्थ सत्य है यद्यपि (मोह के कारण) उसकी प्रतीति नहीं हो रही है और प्रपंच (जगत्) प्रातीतिक सत्य मात्र है, यथार्थ नहीं—जैसा दिखाई देता है वैसा नहीं है।

यही मानस का दर्शन है जिसे मैं प्रकाशवाद और विकारवाद कहता हूँ और इसी दर्शन को जीवन में उपलब्ध करने की प्रणाली की मानस में विशद विवेचना है जिसे 'विश्वास' और 'श्रद्धा' का मार्ग कहा गया है।

मेरा विश्वास है कि यदि मानस के इस जीवन-दर्शन प्रकाशवाद और विकारवाद को मानव समझ सका तो उसके जीवनमें दुःख का आत्यन्तिक विनाश हो सकता है। प्रकाशवाद, भावना-प्रधान साधकों के लिये भक्ति या शरणागति का मार्ग है और विकारवाद विश्लेषण का मार्ग है जो विचार-प्रधान साधकों के लिये है। एक में सरल अन्तःकरण वाले साधक सत्संग द्वारा अदृश्य प्रभु में अटूट विश्वास करके भगवद्दर्शन करते हैं और उनका प्रेम प्राप्त करके, समस्त दुःखों से मुक्त हो जाते हैं। दूसरे में बुद्धि-प्रधान साधक दृश्य जगत् का अबाधित ज्ञान प्राप्त करके तप का मार्ग अपनाते हैं और आत्म-दर्शन करके समस्त दुःखों से मुक्त हो जाते हैं। दोनों मार्गों से दुःखों का विनाश होता है।*

'उभय हरहिं भव सम्भव खेदा'

प्रकाशवाद का सिद्धान्त निम्नलिखित पंक्तियों में प्रतिपादित है—

"यहि मंह आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना"

इससे स्पष्ट है कि मानस के प्रारंभ में, बीच में और अन्त में अर्थात् आदि से अन्त तक भगवान् राम ही प्रतिपादित हैं जिनके विषय में कहा गया है—

'सहज प्रकाश रूप भगवाना।'

अर्थात् भगवान् सहज प्रकाशरूप है। मानस में दो प्रकार के प्रकाशकों का वर्णन है, एक पराश्रित प्रकाशक जैसे चिराग, जो दिया, घी और बत्ती के सहारे ही प्रकाश देता है और बत्ती के जल जाने, घी के समाप्त हो जाने या दिया के टूट जाने पर बुझ जाता है और दूसरा है सहज प्रकाशक, जिसे किसी वाह्य सहारे की अपेक्षा नहीं रहती, जो स्वतः ही प्रकाशरूप हैं। इस प्रकाशक की उपमा मणि से दी गई है जो दिन और रात बिना किसी बाह्य उपकरण के प्रकाशित रहता है। मानस में प्रतिपादित भगवान् मणि के समान ही प्रकाशक है जो सहज प्रकाश रूप है, दिन-रात प्रकाश देता है तथा भीतर और बाहर प्रकाश करता है। "सहज प्रकाश रूप दिन राती। नहि तँह चहिय दिया घृत बाती।"

रामायण में इस सहज प्रकाशरूप भगवान् के एक रूप और एक स्वरूप का वर्णन पाया जाता है। स्वरूप प्रकृति से परे है जहां मन वाणी नहीं पहुंच सकती—

"राम सरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह॥"

एवम्

"मन समेत जेहि जान न बानी।
तरकि न सकहिं सकल अनुमानी॥
महिमा निगम नेति करि कहई।
जो तिहुँ काल एक रस अहई॥"

यही वेदों में आत्म-तत्व के संबंध में कहा गया है—
'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।'

(तैत्तिरीय उपनिषद् २।४)

इसी प्रकार रामायण में भगवान् का एक रूप भी बताया गया है। वह घट-घट बासी है—

"सीय राम मय सब जग जानी
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥"

"जड़ चेतन जग जीव जत, सकल राममय जानि।
बँदउँ सबके पद कमल, सदा जोरि जुग पानि॥"

***भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।**
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्॥

इसी को वेदों में इन शब्दों में कहा गया है—

'ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किंचिज्जगत्यां जगत् ।'

(ईशावास्य उपनिषद्-१) अर्थात् प्रभु जड़ और चेतन सब में व्याप्त है

मानस ऐसा मानता है कि जो व्यक्ति भगवान् के स्वरूप का चिन्तन करेगा उसके सारे दुःख मिट जायेंगे। मानस में चिन्तन के लिये सुमिरन और सेवा के लिये भजन शब्द का प्रयोग किया गया है। साधक को सदा ही भगवान् का सुमिरन और भजन करना चाहिए। क्योंकि मानस के शब्दों में विपत्ति तभी तक है जब तक मनुष्य सुमिरन और भजन नहीं करता। इस तथ्य को निम्नलिखित पंक्तियां सिद्ध करती हैं—

"कह हनुमन्त बिपति प्रभु सोई ।
जब तव सुमिरन भजन न होई ।।"

सुमिरन की प्रणाली नारद जी एवं मनु-शतरूपा के प्रकरण में पायी जाती है। सुमिरन में मन को भगवान् के किसी भी नाम-रूप के सहारे एक बिन्दु पर केंद्रित किया जाता है —

"निरखि सैल सर बिपिन बिभागा ।
भयेउ रमापति पद अनुरागा ।।
सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी ।
सहज बिमल मन लागि समाधी ।।"

अथवा

" द्वादश अक्षर मन्त्रवर, जपहिं सहित अनुराग ।
वासुदेव पद पंकरुह, दंपति मन अति लाग ।।"

"करहिं अहार साक फल कन्दा ।
सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानन्दा ।।"

सुमिरन की इस प्रक्रिया में मन को सब ओर से हटाकर एक बिन्दु पर केंद्रित किया जाता है जिसे एकाग्रता कहते हैं और इसके बाद एकाग्रता की एक ऐसी सघन अवस्था आती है जिसमें यदि मन में लय और विक्षेप की अवस्थायें बाधक न हों, तो वह बिन्दु भी हट जाता है और मन निर्विषय हो जाता है। यही सुमिरन की अवस्था है जिसे चिन्तन या ध्यान भी कहते हैं और जिसकी परिभाषा इस प्रकार है—

'ध्यानं निर्विषयम् मनः" (सांख्य-सूत्र ६।२५)

सुमिरन की साधना में मन कभी बिन्दु से हटकर इधर-उधर भागता है जिसे विक्षेप कहते हैं और कभी नींद आ जाती है जिसे लय की संज्ञा दी गयी है। मन के यही दो मल हैं और यदि मन इन दो मलों से रहित हो जाय तो—

"सहज विमल मन लागि समाधी"

की अवस्था प्राप्त होगी अर्थात् अहंकार का विलय हो जायगा और ऐसी स्थिति में मन, बुद्धि, चित्त और अहं सबके सब विलीन हो जायेंगे। यह अवस्था साधना से प्राप्त की जाती है जैसा नारद, मनु महाराज अथवा शिवजी के प्रकरण में पाया जाता है।

"शंकर सहज सरूप सम्हारा ।
लागि समाधि अखंड अपारा ।।"

प्रेम के अतिरेक में भी समाधि की यही अवस्था बिना प्रयास के ही प्राप्त हो जाती है। जैसे—

'परम प्रेम पूरन दोउ भाई। मन बुद्धि चितअहमिति बिसराई।।'

माता शबरी ने इस अवस्था को सहज ही प्राप्त कर लिया था—

'स्याम गौर सुन्दर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई।।
पुनि पुनि पद-सरोज सिर नावा ।
प्रेम मगन मुख बचन न आवा ।।'

यही दशा सुतीक्षण जी की भी स्वतः ही हो जाती है—

'दिसि अरु विदिसि पंथ नहिं सूझा ।
को में चलेउँ कहां नहिं बूझा ।।

कोल-भीलों के संबंध में भी कुछ ऐसी ही बात है—

"करहिं जुहार भेंट धरि आगे ।
प्रभुहि विलोकहि अति अनुरागे ।।
चित्र लिखे जनु जँह तँह ठाढ़े ।
पुलक शरीर नयन जल बाढ़े ।।
राम सनेह मगन सब जाने ।
कहि प्रिय वचन सकल मनमाने ।।"

इस अवस्था के प्राप्त होते ही भक्त अपनी बुद्धि में एक अपूर्व प्रकाश का अनुभव करता है। जिससे द्वैत-

भावना मिट जाती है और सर्वत्र एक ही सत्ता विद्यमान दीखती है और तब भय नाम की वस्तु रह ही नहीं जाती। साथ ही कर्तृत्व भी मिट जाता है, और इसीलिये बन्धन अर्थात् आवागमन भी मिट जाता है क्योंकि बन्धन का कारण कर्म नहीं कर्तृत्व है —

'तत्र को मोहः कश्शोकः एकत्वमनुपश्यतः।' (ईशावास्य उ०)

मन में एक अद्भुत आनन्द समा जाता है जिससे भारी से भारी दुःख में भी भक्त विचिलित नहीं होता— **'यस्मिन् स्थितौ न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।'** (भगवद्गीता)

और ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है कि दुःख का कारण परिस्थिति नहीं बल्कि आसक्ति है, जो उस आनंद में स्वतः ही मिट जाती है। शरीर में भी अथक शक्ति का संचार होता है और साधक ऐसा अनुभव करता है कि शक्ति का केंद्र भगवान् है न कि भोजन। आंतरिक शक्ति के जागरण से ही उसके सारे रोग मिट जाते हैं। इसीलिये तीनों ताप मिटने की बात मानस में भगवान् के अनुराग से संबंधित की गयी है और भगवान् के चरणों के निरादर से (उनके चरणों में प्रेम न होने के कारण) रोग, वियोग, दीनता, मलिनता और आवागमन होता है, यह बात शिव जी ने भगवान् राम की स्तुति करते समय स्पष्ट कर दी है —

'बहु रोग बियोगन्हि लोग हए। भवदंघ्रि निरादर के फल ये।।
अति दीन मलीन दुखी नित ही। जिनके पद-पंकज प्रेम नहीं।।
भव-सिन्धु अगाध परे नर ते। पद-पंकज प्रेम न जे करते।।'

अहंकार के विलय की इस अवस्था को सूफ़ी संतों और कवियों ने भी बड़े सुन्दर शब्दों में चित्रित किया है :—

'वह सिज्दा क्या रहे एहसास जिसमें सर उठाने का।
इबादत और बक़ैदे होश तौहीने इबाबत है।।'

अथवा

'बेखुदी छा जाये ऐसी दिल से मिट जाये खुदी।
उसके मिलने का तरीका अपने खो जाने है।।'

एक दूसरे कवि ने इसी भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है —

'झलक होश की है अभी बेखुदी में,
बड़ी खामियां हैं मेरी बन्दगी में।
कैसे कहूं कि खत्म हुई मंजिले फना,
इतनी तो खबर है कि मुझे कुछ खबर नहीं।।'

सच है अहंकार का बना रहना उपासना के मार्ग में प्रथम और अंतिम रुकावट है।

'चश्म बन्दो गोश बन्दो लब बे बन्द।
गर नबीनी रुये हक बर मा बेखंद।।'

भजन के संबंध में भी मानस की यही विचार धारा है कि भगवान सब में व्याप्त है ऐसा जानकर जो सबकी सेवा और सब से प्रेम किया जाता है वही भजन है। भगवान श्री राम ने अपने श्रीमुख से अपने मित्रोंको बिदा करते समय स्पष्ट कहा :—

'अब गृह जाहु सखा सब, भजेहु मोहि दृढ़ नेम।
सदा सर्वगत सर्वहित जानि, करेहु अति प्रेम।।'

अर्थात् प्रभु की व्यापकता को ध्यान में रखते हुए स्वार्थपरता को छोड़कर प्रभु के नाते सबकी सेवा की जाय।

सेवा भगवान के व्यापकत्व का क्रियात्मक आदर और साधना की आधारशिला है। पर हमें एक बात से सावधान रहना है। हम जो सेवा कर रहे हैं उससे उल्टे हमारे अहंकार की पुष्टि तो नहीं हो रही है। क्या हम भूखों को इसलिए तो नहीं खिला रहे हैं कि हम समाज में बड़े दानी समझे जांय? लोगों द्वारा दानी कहलाकर हम प्रसन्नता से फूल तो नहीं जाते? यहां जिस सेवा की चर्चा है उसका रूप ऊपर से भले ही दरिद्र को भोजन देना है पर भीतर की भावना कुछ और होती है।

इस भावना को बाइबिल में ईसा मसीह और उनके शिष्यों के बीच एक वार्तालाप में बड़े स्पष्ट शब्दों में दिखाया गया है। ईसा अपने शिष्यों पर अति प्रसन्न होकर कहते हैं कि जब मैं भूखा था तुमने मुझे भोजन दिया, जब मुझे प्यास लगी तुमने मुझे पानी पिलाया, जब मैं नंगा था तुमने मुझे वस्त्र दिये। शिष्यों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने ईसा को भोजन वस्त्र आदि तो दिये न थे। जब उन्होंने पूछा कि कब उन्हें (ईसाको) उनसे

भोजन वस्त्र आदि मिले तो ईसा ने उत्तर दिया– यदि तुमने मेरे किसी भी छोटे से छोटे भाई के लिए ऐसा किया तो वह मेरे लिए ही किया । सेवा का यह रूप वह नहीं है जो संसार में समझा जाता है। साधक को दूसरे की सहायता यह समझ कर नहीं करनी है कि वह दरिद्र, भूखा अथवा नंगा है। उसे तो अपने में वह भावना लानी है जो भरतजी के वन में पधारने पर कोल-भीलों की अयोध्यावासियों के प्रति थी –

'तुम प्रिय पाहुन वन पगु धारे । सेवा जोग न भाग हमारे ।।'

ऐसे सेवा के अवसर के लिए साधक भगवान को धन्यवाद देता है। साधक रोगी, गन्दे, दरिद्र को चिथड़ों में देखकर पीछे को नहीं हटता क्योंकि

'जबसे सुना है यार लिबासे बशर में है ।
अब आदमी कुछ और हमारी नजर में है ।।'

ऐसी ही नजर बन जाने से गांधीजी ने अपने हाथों से प्रेम से एक कुष्ट रोगी की सेवा की थी। कुष्ट रोगी के रूप में प्रभु को हमारी सेवा की जरूरत नहीं है । उल्टे हमें जरूरत है उसकी सेवा करने का अवसर अथवा सौभाग्य प्राप्त करने का ।

इस प्रकार की सेवा "भजन"– के फलस्वरूप मनुष्य के जीवन में किसी प्रकार का अभाव नहीं रहता क्योंकि सेवक ही सेव्य बन जाता है । अतः सुमिरन और भजन से मनुष्य की अशांति और अभाव मिट सकते हैं । इस सिद्धान्त का जो साधक अपने जीवन में प्रत्यक्ष अनुभव करना चाहे उसे चाहिए कि प्रतिदिन २४ घंटे में आधा घंटा किसी एकान्त स्थान में सूर्योदय से पहले पूर्वाभिमुख या भगवान की कोई मूर्ति हो तो उस तरफ मुख करके बैठे और भगवान् के किसी भी नाम या रूप का सहारा लेकर अपने मन को एकाग्र करने की चेष्टा करे । बहुत दिनों के निरंतर अभ्यास के बाद मन के दोनों दोष लय और विक्षेप मिट जाते हैं और अहंकार के विलय की अवस्था आने लगती है । इस साधन के दो अंग हैं । सेवा और तप । सेवा का अर्थ है अपने धन का कम से कम दसांश और समय, शक्ति को यथासंभव जनता-जनार्दन की सेवा में निस्वार्थ भाव से लगाना। दस इंद्रियों से मनुष्य सुख चाहता है इसीलिए दसांश का नियम है । तप में भोजन को और विशेषकर अन्न को कम करने की आवश्यकता है । अपने भोजन में कुछ शाक, फल, कन्द का समावेश करना इस साधन में विशेष सहायक सिद्ध होता है ।

इस संबंध में उल्लेखनीय है कि मेरे बहुत से मित्रों ने अपनी योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार साधनत्रिक्–चिन्तन सेवा और तप का अभ्यास किया है । इन्हीं को बाइबिल में Prayer, Charity and Fasting तथा कुरान शरीफ में नमाज, जकात और रोजा एवं गीता में यज्ञ, दान और तप तथा मानस में सुमिरन, अभोग और उपवास कहा गया है। तथा मित्रों की प्रत्यक्ष अनुभूति है कि उनके जीवन से रोग, दुःख और भय बिना औषधि सेवन, परिस्थिति–परिवर्तन आदि के मिट गये हैं और उनके मन परिस्थिति से अतीत होते जा रहे हैं । साधना के पहले जो घटनाएँ उनके मन को विचलित कर देती थीं, अब उन पर कोई प्रभाव नहीं डालतीं और जिन बातों का उन्हें भय बना रहा करता था अब उन्हें उनका भय नहीं सताता । इस संबंध में यह निवेदन कर देना अत्यावश्यक है कि हम लोग रामचरित मानस में प्रतिपादित केवल भगवान् के सुमिरन और भजन की ही बात करते हैं। और किसी प्रकार की गुप्त साधना अथवा सांप्रदायिकता आदि से संबंध नहीं रखते और न ऐसी साधना ही करते या कराते हैं जो सर्व साधारण न कर सके । मेरे मित्रों का प्रत्यक्ष अनुभव है कि उनके शरीर में शक्ति, मन में आनंद और बुद्धि में ज्ञान का संचार हो रहा है ।

इंद्रियों में कमजोरी, मन में दुःख और बुद्धि में भय काम के ही कारण होता है यानी त्रिताप का कारण काम है । काम नाश के फलस्वरूप मनुष्य त्रिताप से मुक्त हो जाता है । उसके सब रोग, दुःख और भय मिट जाते हैं । मानस में सब दुःखों का मूल कारण मोह बताया जाता है ––

"मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला ।"

मोह का अर्थ अंधकार है । जिस प्रकार अँधेरे में पड़ी हुई रस्सी साँप मालूम होती है और इस गलत धारणा के कारण कि वह साँप है यह गलत मान्यता हो जाती है कि वह काट खायेगा और इसके फलस्वरूप यह गलत क्रिया होती है कि वह मनुष्य डर कर भागता है जिससे उसके दिल की धड़कन बढ़ जाती है और वह लड़खड़ा कर गिर जाता है । इस प्रकार मोह रूपी अंधकार के कारण गलत जानने, गलत मानने और गलत क्रिया के क्रम से उसे दुख की प्राप्ति होती है । इन सबका मूल कारण मोह अर्थात् अंधकार ही

है। इसी मोह के कारण मनुष्य की धारणा में शक्ति का संबंध भोजन से है और भोजन जितना ही पौष्टिक होगा उतनी ही शक्ति बढ़ेगी ऐसी मान्यता होती है जिससे स्वभावत: अधिक भोजन की क्रिया होती है और परिणाम स्वरूप शरीर में मल का संचय होता रहता है जो कालान्तर में रोग के रूप में प्रकट होता है। इसी तरह मोह के कारण ही धन एवं धन द्वारा संग्रहीत वस्तुओं में सुख है ऐसी धारणा होती है और धन बटोरने से सुख मिलेगा ऐसी मान्यता होती है और धन-संग्रह करने की क्रिया होती है जिसके फलस्वरूप मन में विक्षेप आ जाता है जो चिन्ता के रूप में प्रकट होता है। ऐसे ही पढ़ने-सुनने से ज्ञान होता है इस धारणा के आधार पर जितना पढ़ेंगे-सुनेंगे उतना ही ज्ञान होगा ऐसी मान्यता के कारण अधिक अध्ययन किया जाता है जिसके कारण बुद्धि में ज्ञान के स्थान पर अहंकार संचित होता है जो आवागमन का मूल कारण है। इसी को शरीर में मल, मन में विक्षेप और बुद्धि में आवरण कहा गया है जिसके फलस्वरूप रोग, दु:ख और भय नामक त्रिताप होते हैं। अत: त्रिताप से मुक्त होने का साधन यह है कि हम भोजन, धन और अध्ययन के संबंध में गहराई से विचार करें। खोज करने से हमें संसार में ऐसे व्यक्ति मिलेंगे जो अधिक भोजन के द्वारा अपने शरीर में किसी अंश में पशुबल का समावेश तो कर पाते हैं परंतु भयानक रोगों से ग्रस्त रहते हैं और बिना पूरी आयु भोगे ही स्वर्ग सिधार जाते हैं। इसके विपरीत कुछ लोग ऐसे भी मिलेंगे, चाहे वे गिनती में बहुत थोड़े ही क्यों न हों, जो शक्ति का संबंध भोजन से न मानकर भोजन संयम की ओर अग्रसर होते हैं और उसके द्वारा शरीर में एक आंतरिक शक्ति के जागरण का अनुभव करते हैं–जिसके परिणाम स्वरूप वे वेद के इस वाक्य –– 'अदीनास्यां शरद:शतम्' के अनुसार नीरोग रहकर सौ वर्ष की पूरी आयु भोगते हैं। हम लोगों के बीच इसी संसार में डाक्टर बारबरा मूर, एम० डी०, एक रूसी महिला हैं जो आज से (१९६२ से) लग-२८ वर्ष पहिले भारतवर्ष आयी थीं और हिमालय पर्वत में कुछ महात्माओं से मिलकर उनकी बताई हुई बातों को, जिनका एक अंश भोजन का क्रमिक परित्याग भी है, अपने जीवन में प्रयोग किया है। उन्होंने लिखा है कि वे पहले तीन बार खाती थीं, जिसको उन्होंने क्रमश: ३ से २ और २ से १ किया और उसके बाद अन्न छोड़ तरकारियाँ तथा फल एवं कुछ पत्तियों का सेवन किया। अन्त में केवल रस या कुछ शहद का थोड़ी मात्रा में सेवन करना प्रारंभ किया और २६ वर्षों के इस प्रकार के प्रयोग के बाद उनका कहना है कि अब वे केवल जल पर ही महीनों रह लेती हैं और स्वीटजरलैंड तथा इटली में वर्फ तथा वर्फ के पानी पर रहकर नित्य ४०–५० मील चलती हैं, ८००० फीट ऊँचे पहाड़ पर चढ़ती और उतरती हैं फिर भी उन्हें कभी थकावट नहीं महसूस होती। उनका यह भी कहना है कि उन्होंने अपने ऊपर प्रयोग करके यह भलीभाँति अनुभव कर लिया है कि शक्ति या शरीर की गर्मी का संबंध भोजन से नहीं है। उन्होंने इस तथ्य का वैज्ञानिक निरूपण करते हुए बतलाया है कि हवा तथा सूर्य की रश्मियों में कुछ ऐसे तत्व हैं जो वैज्ञानिक यंत्रों द्वारा नहीं जाने जा सकते परंतु मानव-शरीर उन्हें ग्रहण करके शक्तिशाली और परिश्रमी बन सकता है और वृद्धावस्था में भी युवा रह सकता है। डाक्टर बारबरा मूर इस समय स्वयं ६० वर्ष की हैं फिर भी उनकी आयु ३० से अधिक नहीं मालूम पड़ती और इस उम्र में भी नित्य ४०–५० मील चलती हैं। अभी कुछ ही दिन हुये उन्होंने अमेरिका में सैनफ्रेंसिसको से न्यूयार्क की ३३५७ मील की यात्रा पैदल की है।

मैंने भी इस संबंध में जो प्रयोग किये हैं उनसे मालूम होता है कि कुछ दिनों के लिए हवा पर, कुछ हफ्तों के लिए पानी पर और वर्षों फल तथा सब्जियों पर आसानी से रहा जा सकता है। इससे शरीर में आरोग्य, अथवा परिश्रम करने की सामर्थ्य और वृद्धावथा में भी युवापन का अनुभव किया जा सकता है। मेरे कुछ मित्र तो कुछ न खाकर भी ९ दिनों तक लगातार अपने सारे काम करते रहते हैं और कभी भी किसी प्रकार की शक्तिहीनता (कमजोरी) नहीं महसूस करते। मानस के सिद्धांतों को यदि जनता ठीक से समझकर इस प्रकार प्रयोग कर सके तो व्यक्ति, कुटुम्ब, समाज, देश, तथा विश्व का भी कल्याण हो सकता है।

खोज करने वालों को ऐसे भी व्यक्ति आसानी से मिल जायेंगे जो बहुत धनी होने पर भी मन से अशांत और चिन्ताग्रस्त हैं और इसके विपरीत ऐसे भी लोग हैं, चाहे उनकी संख्या कम ही हो, जो निर्धन होने पर भी सर्वथा चिन्तामुक्त हैं और एक आंतरिक आनंद का सतत अनुभव करते रहते हैं और उनके संपर्क में आने

वाल लोग कम से कम थोड़ी देर के लिए शांति का अनुभव करते हैं।

इस संबंध में भी हम लोगों ने जो प्रयोग किए हैं उनका परिणाम यह हुआ कि अपने समय, शक्ति और धन का आंशिक रूप (दसांश) भी निस्वार्थ भाव से प्रभु के नाते जनता-जनार्दन की, विशेष रूप से बालक, दीन और साधुजनों की, सेवा में अर्पित करने से मन परिस्थिति से अतीत होने लगता है और विषम परिस्थितियों के उपस्थित होने पर भी मन में शांति बनी रहती है साथ ही जीवन से अभाव भी मिटता है और किसी न किसी प्रकार प्रभु आवश्यकताओं की पूर्ति भी करते हैं। यह अनुभव उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है।

इसी प्रकार खोज करने वालों को ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं होगी जो शास्त्रीय शिक्षा (Academic Education) किताबी ज्ञान से वंचित होने पर भी प्रकाश अथवा ज्ञान के केंद्र हैं। बहुत से साधु-महात्मा जिनकी गणना ज्ञानियों में है अधिकतर अशिक्षित ही थे। स्वामी शरणानन्द जी महाराज ऐसे ही ज्ञानी और उच्चकोटि के व्यक्तियोंमें से एक है। उनकी स्कूली शिक्षा कुल दर्जा ४ तक ही हुई है परंतु उनकी बुद्धि में एक अपूर्व प्रकाश है। महर्षि रमण, जिनका शरीर कुछ ही वर्षों पूर्व पूरा हो चुका है, इस युग के महान् ज्ञानियों में थे परंतु उनकी स्कूली शिक्षा प्रायः नहीं के बराबर थी। परमहंस रामकृष्ण, जो जगत प्रसिद्ध स्वामी विवेकानन्द जी के गुरुदेव थे, इसी कोटि में आते हैं। इनसे यह निष्कर्ष निकलता है कि शक्ति, ज्ञान और आनंद का संबंध भोजन, अध्ययन और धन से वैसा नहीं हैं जैसा कि आज का मनुष्य समझ रहा है और इस अज्ञान के कारण ही वह रोग, दुःख और भय से ग्रस्त है। इनका संबंध किसी ऐसी सत्ता से है जो प्रत्येक मानव के अन्तर में विद्यमान है। हम अपने दैनिक जीवन में प्रायः देखते हैं कि जब रात्रि में हम चारपाई पर शिथिल होकर लेट जाते हैं (पैर से चलना, हाथ से पकड़ना बन्द कर देते हैं तथा निद्रा में प्रवेश करते हैं वाह्य नेत्र, श्रवण आदि इन्द्रियों का कार्य बन्द कर देते हैं) और स्वप्नावस्था में बुद्धि से कार्य लेने के बाद गहरी नींद में सो जाते हैं तब अपने शरीर की थकावट खोकर हम नई शक्ति और ताजगी का अनुभव करते हैं तथा मन की चिन्ता खोकर 'हम खूब आनंद से सोये', ऐसा कहते हैं। ऐसी अवस्था में उसी केंद्र से स्पर्श होने के कारण ही हमारे शरीर और मन में शक्ति और आनंद आ जाते हैं। जिस प्रकार गहरी निद्रा में प्रवेश होने पर शरीर, मन और बुद्धि की गति रुक जाती है उसी प्रकार ऐसी निष्क्रियता की स्थिति जाग्रत अवस्था में भी अभ्यास के द्वारा लायी जा सकती है और जो व्यक्ति इस साधना का अभ्यास करेगा उसका भीतर के केन्द्र से संस्पर्श स्थापित हो सकेगा जिसके फलस्वरून उसे शक्ति, ज्ञान और आनंद मिलने लगेगा। मानस में ऐसे तप को साधना कहा गया है—

"उर धरि उमा प्रानपति चरना।
जाइ बिपिन लागीं तप करना।।
अति सुकुमार न तनु तप जोगू।
पति पद सुमिरि तजेउ सब भोगू।।
नित नव चरन उपज अनुरागा।
बिसरी देह तपहिं मनु लागा।।
सम्वत् सहस मूल फल खाये।
सागु खाइ सत बरष गँवाये।।
कछु दिन भोजन बारि बतासा।
किए कठिन कछु दिन उपवासा।।"

इस तप के तीन निम्नलिखित अङ्ग हैं—

१. चित्तवृत्ति का निरोध (सुमिरन), २. इंद्रियों का संयम (अभोग). ३. भोजन का क्रमिक परित्याग (उपवास)।

इस साधना के परिणाम स्वरूप मानव के सब मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं—"भए मनोरथ सुफल तव सुनु गिरिराज कुमारि।" और उसके शरीर में अखंड शक्ति, मन में अखंड आनंद और बुद्धि में अखंड ज्ञान का संचार होने लगता है, और जीवन-काल में सब प्रकार से शांति लाभ तथा शरीर छोड़ने पर उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है।

संक्षेप में मानस प्रतिपादित ऊपर बताये हुए दोनों मार्गों द्वारा (१) सुमिरन और भजन तथा (२) तप से मनुष्य के दुःख की आत्यंतिक निवृत्ति और सुख की उपलब्धि होती है और उसका शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास होता है। तप के द्वारा मानव की व्यक्तिगत समस्यायें और सेवा से अभाव निवृत्ति के कारण सामूहिक समस्यायें हल हो जाती हैं और उसके जीवन में किसी तरह का कोई दुःख नहीं रह जाता। ★

भक्त की रीति

—डा. बलदेव प्रसाद मिश्र

प्रातः स्मरणीय गोस्वामी तुलसी दासजी ने एक दोहा लिखा है :—

"प्रीति राम सों, नीति पथ चलिय, राग रिस जीति।
तुलसी संतन के मतें इहै भगत की रीति ।"

इस दोहे के अनुसार भक्त की रीति अथवा भक्ति के पन्थ में तीन तत्वों पर जोर दिया गया है। पहिला तत्व है राम से प्रीति, दूसरा तत्व है नीतियुक्त व्यवहार और तीसरा तत्व है राग और रिस अर्थात् रागद्वेष या काम-क्रोध पर विजय। भक्ति की रीति में राम से प्रीति तो सब से अधिक आवश्यक तत्व होगा ही। अतएव उसका दर्जा पहिला है। परंतु गोस्वामी जी के राम न केवल अखण्ड अनन्त सच्चिदानंद हैं न केवल अगजगमय सब रहित विरागी हैं, किन्तु अखिल कल्याण गुण गणाकर और मर्यादा पुरुषोत्तम भी हैं। संपूर्ण सौंदर्य, चाहे वह बाहर का हो अर्थात् रूप संबंधी हो चाहे भीतर का हो अर्थात् गुण संबंधी हो या क्रिया संबंधी हो, उनमें पूर्णरूप से समाहित हैं। उनके रूप का इतना आकर्षण है कि " जिनहिं निरखि मग सांपिनि बीछी। तजहिं विसम विष तामस तीछी।।" प्रीति के लिये इससे बढ़कर और कौन सौंदर्य चाहिये। उनके गुण का इतना आकर्षण है कि 'बैरिहु राम बड़ाई करहीं।" संसार में जो भी कोई प्रिय या पूजनीय होता है वह जगदात्मा राम के नाते ही तो प्रिय या पूजनीय होता है, "पूजनीय प्रिय परम जहां ते। सब मानियहि राम के नाते।।" और यह निश्चय है कि संसार की जितनी उपादेय वस्तुएं हैं वे या तो प्रिय होंगी या पूज्य (श्रद्धास्पद) होंगी। उनकी यह उपादेयता उनमें विद्यमान जगदात्मतत्व के कारण ही है। वही तत्व तो गोस्वामी जी का राम है जिसकी बन्दना वेद " जय सगुण निर्गुण रूप रूप अनूप भूप शिरोमने" कहकर करते हैं। उन राम की प्रीति पर गोस्वामी जी का पहिला जोर है।

यों तो संसार के पदार्थों पर जो प्रीति रहती है वह भी प्रकारान्तर से राम ही की प्रीति है क्योंकि समग्र संसार ही राममय है परंतु हम संसार के पदार्थ का ध्यान करके उस प्रीति को उसी पदार्थ की सीमा में बांधकर उसकी व्यापकता भुला बैठते हैं इसी लिये कष्ट उठाते हैं। वह पदार्थ अनर्थकारी हो तब तो और भी बुरा है। नश्वर तो वह रहेगा ही क्योंकि संसार स्वतः नश्वर है। अतएव यदि किसी साकार को प्रीतिपात्र बनाना है तो वह ऐसा साकार तो हो जो अनश्वर हो, कल्याणकारी हो, जिसकी सीमाएं असीमता की ओर ले जाने वाली हों। गोस्वामी जी का दोहा " कामिहिं नारि पियारि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम। तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहि राम।।" इस दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है।

"राम से प्रीति" और "जगत् से प्रीति" को परस्पर विरोधी मानकर चलने में ही दुःख है। 'सियाराम मय सब जग जानी। करउं प्रनाम जोरि जुग पानी।।' की भावना में ही सुख है, सन्तोष है, आनंद है। पहिली बात तो यह है कि प्रीतिपात्र राम को जगत्-पदार्थ के रूप में नहीं किन्तु रामरूप में देखिये। दूसरी बात यह है कि उसकी इस या उस पदार्थ के रूपमें अर्थात् खंड खंड रूपमें नहीं किन्तु अखंड रूपमें देखिये। तभी आपको प्रियता अथवा भक्ति की परिपूर्णता का रस मिलेगा।

अब भक्त की रीति का दूसरा तत्व देखिये। नीतिपथ चलिय। आदेश है कि नीति के पथ पर ही चला जाय। नीति शब्द नय् धातु से संबंधित है। नीति वह प्रक्रिया हुई जो जीवन को विषमताओं की चट्टानों से बचाती हुई आगे बढ़ा ले चलती है। नीति का पथ है कल्याण का पथ, संरक्षण का पथ वास्तविक जीवनधारण का पथ। व्यापक अर्थ में वही है धर्म का पथ। और धर्म के संबंध में गोस्वामी जीने कहा है —" परहित सरिस धरमु नहिं भाई, पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।" अधमता और अधर्मता एक ही बात है। इसी प्रकार परसेवा और प्रभुसेवा को एक ही बात समझिये क्योंकि न तो पर कुछ प्रभु से बाहर की वस्तु है न सेवा कुछ हित से बाहर की वस्तु। वस्तुतः नीति के पथ में स्व और पर का भेद भी क्यों हो। परंतु जब तक यह भेद हमारे

विचारों में बना हुआ है हमें स्व में स्वार्थ की गंध और पर में परमार्थ की सुगन्ध का आभास देखते हुए परहितव्रत ही को नीतिपथ का सार समझना चाहिये।

नीति कोरमकोर वैदिक विषय नहीं है। उसका संबंध हमारे हृदय की उदात्त भावनाओं से है। सहृदयता, सहानुभूति, कारुण्य, परदुःख कातरता, सत्यप्रियता, अहिंसा, महत्पूजा, सुरुचिसंपन्नता, इत्यादि इत्यादि मनुष्य के ऐसे गुण हैं जो प्रायः जन्मजात होते और उसकी दैवी संपत्ति कहाते हैं। उनसे युक्त मनुष्य को नीति पथ पर चलने के लिये सोचना नहीं पड़ता। वह तो नीति पथ पर चलेगा ही। संसार की व्यवस्था नीतिपथ पर चलनेवालों के बल पर ही टिकी हुई है। सन्तों के लिये जिस प्रकार अध्यात्म प्रेम (प्रीति राम सों) स्वाभाविक है उसी प्रकार धर्माचरण (नीति पथ चलिय) स्वाभाविक है। परंतु प्रीति तो अन्तःकरण की भावना है जिसका नैरन्तर्य कांक्ष्य माना गया है, और नीति बाह्य आचरण से विशेष संबंधित है अतएव उसके आचरण की बात कही गई है। नीतिपथ चलिये कहा गया है। नीति पथ पर चलने का आदेश सा दिया गया है।

भक्त की रीति का तीसरा तत्व है रागरिस की जीत का। प्रत्येक जीव के साथ आकर्षण और विकर्षण अथवा राग और द्वेष जन्मजात है। गाय का बच्चा पैदा होते ही, बिना किसी के सिखाये हुए, थन की ओर आकृष्ट होगा और खाईं खन्दकों से अपने को हटाकर रखेगा। जबतक संसार है तब तक राग-द्वेष या राग-रिस न तो समूल नष्ट हो सकते हैं न इन्हें समूल नष्ट करने की आवश्यकता ही है। आवश्यकता इतनी ही है कि इनकी प्रवृत्तियों को पहिचान कर इनका उपयोग विवेक के साथ किया जाय। राग किन वस्तुओं पर किस दृष्टि से किस हद तक रहे और रिस किन वस्तुओं अथवा विचारों अथवा भावों पर किस दृष्टिसे किस हद तक रहे यह बताना विवेक का काम है। पाप से द्वेष हो किन्तु, पापी की अन्तरात्मा से राग हो, कामिनी और कांचन सरीखी वस्तुओं की आसक्ति से विरक्ति हो किन्तु उस आसक्ति के भीतर जो अनुरागतत्व है उसकी विशुद्धता और प्रभविष्णुता पर राग हो, यही राग-रिस का सम्यक् उपयोग समझिये। राग और द्वेष एक दूसरे के विरोधी भाव हैं। आप रागका विस्तार करते जाइये तो द्वेष की सीमाएं आपही आप दबती जायंगी। विश्व प्रेमी के लिये द्वेष का ठौर ही कहां रहता है। और, आप राग को केवल एक व्यक्ति पर इस प्रकार केंद्रित कर दीजिये कि वह विश्व प्रेम का अपवाद दिखाई पड़ने लगे तो आपके विपरीत द्वेष की सीमाएं बढ़ती ही चली जायंगी। आप संसार के वैरी हो जायंगे और संसार आपका वैरी हो जायगा। राम का राग यदि सीतापर केंद्रित हुआ, तो विश्वप्रेम का ही एक विशिष्ट अंग मानकर। रावण का राग यदि सीता पर केन्द्रित हुआ तो विश्वप्रेम की भावना को ताक पर रखकर अधर्म को प्रश्रय देकर, लोकमर्यादा को कुचल कर। इसी लिये राम के राग का विस्तार देखिये और रावण की रिस का विस्तार देखिये, राम की वन्दनीयता का विस्तार देखिये और रावण की निन्दनीयता का विस्तार देखिये। उपादेयता की ओर राग रहे और हेयताकी ओर रिस रहे तभी नीतिपथ पर चलना ठीक ढंग से हो सकता है। इसीलिये गोस्वामी जीने राग और रिस को नष्ट करने की बात न कहकर केवल इन्हें जीतने की बात कही है, इन्हें अपना वशवर्ती बना रखने की बात कही है और इन्हें वशवर्ती बनाकर नीतिपथ पर चलने की सलाह देने के उद्देश्य से ही "जीति" (अर्थात् जीतकर) क्रिया के इस रूप का प्रयोग किया है। रागरिस जीतकर नीति पथ पर चला जाय, यह गोस्वामी जी का अभिप्राय है।

राग रिस जीतना क्रियासाध्य भी है और कृपासाध्य भी। मनुष्य क्रियाशील प्राणी है। क्रिया ही के लिये वह इस संसार में जीवित है। क्रिया न करने का अर्थ है ईश्वरदत्त क्रिया-शक्तियों का निरादर। यह अपनी कृतघ्नता होगी। परंतु क्रिया में सिद्धि देना उस परमात्मा-उस राम के हाथ है जो संपूर्ण क्रियाओं का प्रेरणा-स्रोत है। यदि उस राम में प्रीति हुई तो रागरिस जीत लेना सहजसाध्य समझिये क्योंकि विश्वभर का राग उसकी प्रीति के अन्तर्भूत है ही और जहाँ राग का यह विस्तार है वहाँ द्वेष के लिये – रिस के लिये – स्थान ही कहां। राम प्रेमी के राग-रिस आप ही आप निखर उठेंगे इसमें कोई संदेह ही नहीं है।

अतएव भक्ति की रीति में सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ तत्व हुआ राम-प्रीति। इसका परिणाम होगा चित्त शुद्धि अर्थात् रागद्वेष विजय। इसका परिणाम होगा जगन्मङ्गल अर्थात् नीतिमय आचार। प्रीतिराम सों (करि), रागरस जीति, नीति पथ चलिय। संतों के मत से यहीं भक्त की रीति है।

विज्ञान और धर्म

–डॉ० मुंशीराम शर्मा

जब से मानव ने चन्द्र के धरातल पर पैर रक्खे हैं, तबसे कतिपय धार्मिक मान्यताओं को ठेस पहुँची है। वैज्ञानिक और उनके पक्षधर, जिन्हें धर्म में अभिरुचि नहीं है तथा जो धार्मिक विश्वासों को मिथ्या, रूढ़िग्रस्त और अनावश्यक समझते हैं, ऐसा कहने लगे हैं कि हिन्दू और मुसलमान चन्द्र को जो महत्व देते थे, वह निरर्थक सिद्ध हो गया। पौराणिकता चाहे ग्रीस की हो या अरब की, मिश्र की या रोमकी आज के वैज्ञानिक युग में मान्यता प्राप्त नहीं कर सकती। जिस मत का आधार वैज्ञानिक सिद्धियों के प्रतिकूल है, वह अमान्य है। मुसलमान जिस ईदके चाँद को देखकर त्यौहार मनाते हैं और हिन्दू स्त्रियाँ करवा चौथके दिन दिन भर व्रत रखकर रात्रिके लगभग ९ बजे उदय होते हुये चन्द्र को अर्घ्य देकर अपना व्रत समापन करती हैं, उसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। वह ढकोसला मात्र है। बुद्धि ऐसे ढकोसलों को स्वीकार नहीं कर सकती। आइये वैज्ञानिकों की इस तथ्यपरक नीतिपर विचार करें।

वैज्ञानिकों ने जो परीक्षण किये हैं, वे वस्तुगत हैं। उनकी परिधि शरीर या आकृति मात्र तक सीमित है। शरीर के भीतर जो मानसिकता का सूक्ष्म रूप है, उसकी ओर इन वैज्ञानिकों का ध्यान नहीं जाता है। मनोविज्ञान अपने को दार्शनिक क्षेत्र से निकालकर वैज्ञानिक क्षेत्र में रखने लगा है, मनकी गतिविधियों पर विचार करता है, परंतु भावना का जगत् उसकी भी पहुँच से परे है। वह उद्वेगों का निरूपण कर सकता है, सुख और दुख के कारणोंकी मीमांसा कर सकता है, जागरण और स्वप्न की दशाओं का विश्लेषण कर सकता है, परंतु भावभूमि उसके लिये अग्राह्य रहती है। विज्ञान की कई शाखायें हैं–यथा भौतिकी रसायन, जीवविज्ञान, वनस्पति विज्ञान, भूविज्ञान, नक्षत्र विज्ञान आदि। अब राजनीति भी अपने को पोलिटिकल साइंस कहने लगी है। समाज शास्त्र के रूप में कतिपय सामाजिक विज्ञान (शोशल साइन्सेज) पनपने लगे हैं। इनका भी संबंध भावना जगत् से नहीं है। तो क्या भावना अपना अस्तित्व नहीं रखती? क्या उसका मानव विकास में कोई स्थान नहीं है? जिसे हम तत्त्व–दर्शन या मेटाफिजिक्स कहते हैं, विज्ञान का उससे कोई संबंध नहीं है? यद्यपि फिजिक्स या भौतिकी शब्द ही ऐसी स्थिति की ओर संकेत कर सकती है, जो भौतिकता से परे हो। प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्सटाइन ने जिस विश्वास को वैज्ञानिक के लिये अपरिहार्य माना है, वह भौतिकता की सीमा से परे भी कुछ है, ऐसा संकेत देता रहा है। कैनेथवाकर जैसे कतिपय विद्वान कल्पना को भी वैज्ञानिक अन्वेषण में स्थान देने लगे हैं। विश्वास भावना पर अवलंबित है। कल्पना भी भावना की पोषक है। अतः भावना और कल्पना का जगत् वैज्ञानिकों को भले ही ढकोसला मात्र प्रतीत हो, उसका अस्तित्व अवश्य है और इस अस्तित्व ने मानवता को आगे बढ़ाया है, इसमें भी संदेह नहीं है। विज्ञान शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, तो भावना सूक्ष्म जगत् का आहार है और उसका परिष्कार-कर्ता भी।

लोकोक्ति है–"जैसा खाये अन्न वसा बने मन!" इसी के साथ में यह लोकोक्ति भी चलती है –"As a man thinketh so is he" अथवा "यो यच्छ्द्धः स एव सः" मनुष्य जैसा विचार करता है अथवा जैसी उसकी श्रद्धा होती है, वैसा ही वह बन जाता है। इतिहास इस मान्यता के उदाहरणों से भरा पड़ा है। इस्लाम मजहब विश्वास को ही महत्व देता है। ईसाई मतवाले तथा अन्य धार्मिक संप्रदाय भी विश्वास को जीवन-विकास के लिए आवश्यक मानते हैं। वैज्ञानिक इन्हें अंधविश्वास कह सकता है, लेकिन यह Blind believe (अंधविश्वास) भी किस प्रकार मानव तथा जातियों को उन्नत करता है, उन्हें समृद्धिशाली बनाता है, तेज और यश देता है, इसे इतिहास के तथ्यवादी स्वर्ण अक्षरों में आज भी पढ़ा जा सकता है।

सूर्य को लें। उसका वैज्ञानिक रूप भी है और दार्शनिक रूप भी है। अपने वैज्ञानिक रूप में वह अग्नि का दहकता हुआ गोला है जिसकी किरणें करोड़ों मील चल कर नाना लोक-लोकान्तरों को प्रकाश एवं ऊष्मा पहुँचाती हैं और जीवनी शक्ति की उत्पादिका एवं संव-

धिका बनती हैं। अपने दार्शनिक रूपमें वह किसी अन्य शक्ति के द्वारा प्रकाश ग्रहण करता है। जैसे सूर्य का प्रकाश चंद्र के माध्यम से हम सब पर प्रतिच्छायित होकर अपनी ऊष्मा का परित्याग कर देता है और हमारे मन के लिए आह्लादकारी सिद्ध होता है, वैसे ही कोई अनन्त जीवन-स्रोत है, प्रकाश का कोष है अथवा साक्षात प्रकाश स्वरूप है, जिसके प्रकाश से यह सूर्य प्रकाशित होता है और उस प्रकाश को हम तक पहुँचाता है। जो वीर चंद्रयान से चन्द्रमा में उतरे, उन्हें वहाँ से पृथ्वी भी वैसी ही चमकती दिखाई दी, जैसा हम सब चंद्रको यहाँ से देखते हैं। चंद्र स्वतः प्रकाश-रहित है। पृथ्वी भी प्रकाश-रहित है। संभव है कि सूर्य भी स्वतः प्रकाश-रहित हो। पर जैसे उस प्रकाश से अन्य ग्रह और उपग्रह प्रकाशित होते हैं, वैसे ही वह स्वयं भी दूसरे के प्रकाश से प्रकाशित हो सकता है। धार्मिक विश्वास ऐसा ही कहता है —

"तमेव भान्तमनुभाति सर्वां तस्य भासा सर्बमिदम् विभाति"

विज्ञान ने चंद्रलोक तक पहुँचा दिया, परंतु सूर्य अभी पहुँच से बहुत दूर है। संभव है, वहाँ पहुँच न भी हो सके। तब वैज्ञानिक को कौन बता सकेगा कि सूर्य अपना प्रकाश कहाँ से ग्रहण कर रहा है? दर्शन और विज्ञान की बात जाने दीजिए, मानवता के स्वरूप का आकलन कीजिए, तो आप देखेंगे कि सूर्य जैसे शरीर में प्राणों का संचार करता है, चंद्रमा वैसे ही मन को आह्लादित करता है। वैज्ञानिकों का चंद्र उन्हें गीली मिट्टी दे देगा जिसके कण हमारे वातावरण में आते ही बाष्प का रूप धारण करके उड़ जायंगे। वह अपनी चट्टानों से संभव है कुछ मोती भी दे सके; पर अनन्त काल से चन्द्र अपनी ज्योत्स्ना द्वारा मानव मनको जो आल्हाद देता आया है उसे कोई कैसे झुठला सकता है? अष्टमी और पूर्णिमा के चंद्र को देखते ही जड़ सागर के अन्दर लहरों का ज्वार उठ सकता है। यदि चेतन मानव के मन में भी उसे देखकर भावनाओं का सागर उमड़े तो वैज्ञानिक को उसपर क्यों आपत्ति करनी चाहिये?

यजुर्वेद का पुरुष सूक्त चंद्रमा को यज्ञ पुरुषके मनसे उत्पन्न कहता है। सूर्य की उत्पत्ति उसके अनुसार यज्ञ-पुरुष के चक्षु से है। चक्षु और सूर्य का सम्बन्ध वैज्ञानिक भी मानने लगे हैं। मनका और चन्द्र का भी संबंध है इसे साहित्यिक अथवा कवि तो स्वीकार करते ही हैं, मनोविज्ञानी भी स्वीकार करेंगे। चन्द्र के धरातल की वैज्ञानिक प्रक्रिया चाहे जो भी हो, परंतु उसकी कौमुदी विश्व भर के लिये मोहनी बनी हुई है। औषधियों में वही रस का संचार करती है, प्रेम पुलकावली उसी के द्वारा उठकर न जाने कितने प्राणियों को तृप्ति प्रदान करती है। शुक्ल पक्ष में क्रमशः बढ़ती हुई वह कतिपय लताओं को पर्णदान देती है, तो कृष्णपक्ष में वह क्रमशः उन्हें पर्णविहीन भी करती जाती है। सूर्य दिन के समय पुष्पों में रंग भरता है, जो मानव मन पर अपने आकर्षणक का जादू डालता रहता है, तो संध्या के समय उन्हें फीका भी कर देता है। चन्द्र रात्रि के समय चकोर को जहां आप्यायित करता है, वहां चकवा-चकवी को वियुक्त भी करता है। सुख-दुख की मीमांसा मनोवैज्ञानिक क्षेत्र के अन्तर्गत है, पर मन किसी वस्तु की अनुकूलता और प्रतिकूलता का वरण क्यों करता है इसे वैज्ञानिक नहीं बता सकेगा। समस्त वैज्ञानिक विश्लेषण के उपरान्त भी यदि भावना का जगत अविख्यात रहता है, तो इसमें किसका दोष है? चन्द्र मन को अथवा सूक्ष्म जगत् को अपनी चाँदनी द्वारा प्रभावित करता है और प्रभावित करता रहेगा, इसका प्रत्याख्यान कोई भी वैज्ञानिक नहीं कर सकता।

विज्ञान का क्षेत्र धर्म क्षेत्र से भिन्न है। एकका आधार बुद्धि है तो दूसरे का आधार विश्वास है। एक वस्तु-परीक्षण करेगा तो दूसरा भाव-परक विधाओं का विन्यास। मानव को दोनों की आवश्यकता है। उसे बुद्धि द्वारा भौतिक जगत् में प्रगति करनी है, तो धर्म द्वारा आत्मोत्थान भी करना है। एक अभ्युदय का संपादन करता है तो दूसरा निःश्रेयस की सिद्धि। वैसे धर्म व्यापक है; वह विज्ञान को भी अपने गर्भ में धारण किये हुये है। यदि विज्ञान भी धर्म को साथ लेकर चले, तो सोने में सुहागे की कहावत चरितार्थ होने लगेगी।

एशिया में राम कथा-प्रसार

—श्री उदयनारायण सिंह

मर्यादा पुरुषोत्तम राम का चरित प्राचीनकाल से भारतीय जन-मानस में रमा हुआ है। शताब्दियों से वह जनता के लिए सतपथ तथा सदाचार पर दृढ़ रहने की प्रेरणा प्रदान करता रहा है। सती साध्वी सीता भी नारी समाज के लिए आदर्श महिला के रूप में पूज्य हैं। भारत के विभिन्न भागों में राम और सीता के जीवन से सम्बन्धित घटनाएँ चिरकाल से ही जनमन-रंजन के साथ आदर्श जीवन व्यतीत करने का एक महान एवं पुनीत संदेश देती आ रही हैं। संस्कृत से लेकर हिन्दी तथा अन्य प्रादेशिक भाषाओं के कवियों एवं लेखकों ने अपनी रचनाओं में राम और सीता का यशोगान किया है। राम तथा सीता जैसे लोकप्रिय आदर्श व्यक्तियों के बारे में अपनी रचना करके न केवल उन्होंने अमर साहित्य की ही सृष्टि की है वरन् वे स्वतः अमर हो गये। वाल्मीकि, गोस्वामी तुलसीदास, केशवदास तथा अन्य कवि आज इसलिए जनता में श्रेय एवं प्रेय हैं कि उन्होंने अपनी रचना का आधार एक ऐसे महापुरुष की जीवन-गाथा को बनाया जो स्वतः काफी लोकप्रिय है। ऐसे सुप्रसिद्ध तथा लोकप्रिय महामानव राम की जीवन-गाथा को अपने देश की सीमाओं तक बाँध सकना असम्भव था। इन का आदर्श चरित श्रीलंका, वर्मा, इंदोनेशिया, चीन नेपाल जैसे एशियाई देशों में भी फैल गया। राम और सीता के जीवन तथा उनके आदर्शों को भगवान बुद्ध के सिद्धातों की तरह प्रसारित अथवा प्रचलित करने के लिए भिक्षु-भिक्षुणियों की आवश्यकता नहीं पड़ी। उनकी कीर्ति ही ऐसी थी जो श्रवणमात्र से सर्वदा के लिए जनता के मन-पटल पर अंकित हो जाती थी। एशियाई देशों की जनता आज भी न केवल उनकी गाथा के श्रवण मात्र से संतोष करती है वरन उनकी लीलाओं को नाटक के रूप में अभिनीत कर उससे प्रेरणा भी प्राप्त करती है।

नेपाल तथा तिब्बत

तिब्बत तथा नेपाल भारत के निकटतम पड़ोसी देश हैं। इनकी सीमाएँ भारत से मिली हुई हैं। अतः यह स्वाभाविक है कि भारत में घटित घटनाओं का प्रभाव इन देशों पर पड़े। तिब्बत में रामकथा का प्रचलन आठवीं तथा नवीं शताब्दी से अवश्य हो गया था क्योंकि इस काल की तिब्बती रामायण की हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध होती हैं। नेपाल में तो संभवतः इससे भी पूर्व रामकथा जनता में लोकप्रिय हो गयी होगी। नेपाल में विजयादशमी का विशेष महत्व है। यह पर्व वहाँ राष्ट्रीय समारोह के रूप में मनाया जाता है। रामकथा वहाँ यथेष्ट लोकप्रिय है। तिब्बती रामायण के अनुसार राजा दशरथ की दो पत्नियाँ थीं, जिनमें ज्येष्ठ से लक्ष्मण पैदा हुए थे। राजा दशरथ ने इन्हीं को राजा बनाकर संन्यास ले लिया। इसमें सीता हरण भी होता है लेकिन रावण सीता का अंग तक स्पर्श नहीं करता। लव-कुश का जन्म भी सीता को राम द्वारा त्याग देने से पूर्व होता है।

श्री लंका

रामकथा से श्रीलंका का प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहा है। अतः यह स्वाभाबिक है कि यहाँ भी वह किसी न किसी रूप में जरूर प्रचलित हो। यहाँ की जनता में प्रचलित कथानक के अनुसार बालि श्रीलंका दहन के पश्चात सीता को राम के पास पहुँचा देता है। रावण का चित्र रखने के कारण राम ने सीता का त्याग किया था। यहाँ की रामायण के अनुसार सीता पुत्रों के लव-कुश को बाल्मीकीने कमल तथा कुश रख कर पैदा किया था। सिंहली भाषामें यहाँ "रामायण पद्मचरित" नामक एक पुस्तक है, जिसमें वर्णित रामकथा का आधार जैन रामायण है।

बर्मा

बर्मा की सीमा यद्यपि भारत से मिली हुई है लेकिन यहाँ १८ वीं शताब्दी में रामकथा का विकास हुआ। यहाँ यह 'राममत' के नाम से प्रसिद्ध है और यहाँ की जनता वर्तमान समय में इस कथा को 'यामप्वे' कहकर संबोधित करती हैं। प्रचलित कथा के अनुसार सीता हरण यहाँ के अभिनय का एक प्रिय विषय है। जनता आज भी नाटक के रूप में राम की लीलाओं का स्मरण करती है।

मलय तथा हिन्दचीन

मलय तथा हिन्दचीन के साथ भारत का सम्बन्ध प्रथम शताब्दी के लगभग हो गया था। हिंदचीन स्थित कम्बोडिया (कम्बुज) के अंगकोरवाट नामक मंदिर के एक भाग में रामायण के चित्र अंकित हैं जिससे रामलीला का दिग्दर्शन होता है। इस मंदिर का निर्माण सन १९१३ ईसवी के लगभग राजा जयवर्मा पंचम ने किया था। इसके शिलापदों पर श्री राम-जन्म, सीता-स्वयंवर, वनवास, अपहरण, रावण युद्ध आदि की घटना को बड़ी सुन्दरता के साथ चित्रित किया गया है। यद्यपि यहाँ प्रथम शताब्दी में ही भारतीय बस्ती कायम हो गयी थी, लेकिन रामायण का प्रचार सातवीं शताब्दी में होने का उल्लेख मिलता है। इस काल के मंदिर में वाल्मीकि की एक प्रतिमा मिलती है। कम्बोडिया की भाषा खमेर मेँ लिखित, रे राम केर (राम कीर्ति) रामायण मिलती है। इसके अनुसार सीता जनक की दत्तक पुत्री हैं। कथा मामूली हेर-फेरके साथ यहाँ प्रचलित है। अनाम राज्य में प्राप्त रामायण की कथा वाल्मीकि रामायण पर आधारित है।

मलय की रामायण में भी राम-सीता तथा रावण के चरित्रचित्रण अंकित है। यहाँ सन १९३३ ईसवी की एक हस्तलिखित पुस्तक में राम-सीता तथा रावण का जीवन दिया गया है। इसमें कतिपय मनगढ़ंत बातें भी दी गयी हैं जैसे रावण मंदोदरी के गर्भ से पैदा हुआ था। यहाँ राम से संबंधित 'हिकायतसे री' पुस्तक मिलती है, जिससे पता चलता है कि यहाँ की जनता राम के प्रति कितनी श्रद्धा रखती है।

इन्दोनेशिया

सुमात्रा, जावा, बोर्नियो आदि अनेक द्वीपों को सम्मिलित कर इंदोनेशिया की रचना हुई है। पहले ये द्वीप एक ही केन्द्रीय प्रशासन के अन्तर्गत नहीं थे। इस सम्पूर्ण भाग में हिन्दू संस्कृति का पूरा प्रभाव दिखायी पड़ता है। सन् १९५० में प्राप्त जावा के एक शिलालेख में राम और कृष्ण के जीवन पर प्रकाश डाला गया है। जावा में नवीं शताब्दी के हिन्दू शिलालेख मिले हैं। यहाँ के मन्दिरों की दीवालों पर रामायण की कथा अंकित है। यहाँ की राम-कथा वाल्मीकि रामायण पर आधारित है। जावा की रामायण में राम के राज्याभिषेक से लेकर दशरथ की पुत्री शांता तक का जिक्र मिलता है, जो भारत में प्रचलित राम-कथा में नहीं है। मध्य जावा स्थित 'परम वन' नामक स्थान पर एक शिव मंदिर है, उस पर भी राम-कथा अंकित है। यहाँ पर ब्रह्मा और विष्णु के मंदिर हैं। यहाँ की राम सम्बन्धी साहित्यिक रचना बारहवीं शताब्दी की है, जिसके प्रणेता योगीश्वर कवि हैं। इसका नाम "रामायण का काविन" है। इस रामायण में भी कुछ ऐसी बातें मिलती हैं जो भारतीय रामकथा से भिन्न हैं। बताया जाता है कि जावा (यव) द्वीप में रामायण का अनुवाद पाँचवीं शताब्दी में हो गया था।

बाली में भारतीय प्राचीन संस्कृति के वास्तविक रूप में हमें दर्शन होते हैं। यहाँ की रामायण में राम की मृत्यु के पश्चात उनके वंशजों का भी उल्लेख किया गया है। राम ने भी अपनी वृद्धावस्था में वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण कर लिया। जावा तथा पीली आदि में हमारे देश के समान रामलीला का आयोजन नहीं किया जाता है। यहाँ का 'रियाय कियारा' नामक एक ग्रंथ है, जिसमें राम की कथाओं का वर्णन है। इस तरह यहाँ रामायण के दो भिन्न रूप मिलते हैं। प्रथम वाल्मीकि पर आधारित तथा द्वितीय उससे कुछ भिन्न।

थाइलैंड

किसी समय स्याम अथवा थाइलैंण्ड में रामायण का काफी प्रचार था। बताया जाता हैकि सन् ११६७ के लगभग बर्मा का कोई राजा थाइलैण्ड पर विजय करके जिन लोगों को दासभाव से बर्मा लाया उन्होंने थाइलन्ड में सीखे राम-चरित का अभिनय किया था। इससे मालूम होता है कि थाइलैंड में भी रामायण का प्रचार पहले से हो चुका था। यहाँ की रामायण को 'रामकियेन' कहते हैं जो अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्धमें दो भिन्न-भिन्न संस्करणों में प्रकाशित हो चुकी है। यहाँ की रामायण के अनुसार राम-कथा में जो परिवर्त्तन हुआ है वह तो हुआ ही है सब से विचित्रता यह है कि इसके हनुमान वीर तथा साहसी न रहकर प्रेम व्यापार में संलग्न रहनेवाले हैं। अन्य स्त्रियों के साथ वे मन्दोदरी का भी आलिंगन करते हैं। इसके अतिरिक्त १६ वीं शताब्दी में लाओ भाषामें 'रामजातक' नामक रामायण की रचना की गयी। इसके अनुसार राम ने सीता की खोज करते समय दो और विवाह कर लिये। इसी तरह की कतिपय अप्रासांगिक बातें कही गयी हैं। थाइलैंडकी प्राचीन राजधानी पुरुलिया का नाम किसी समय अयोध्या भी था, जिससे वहाँ की जनतामें हिंदू संस्कृति के प्रचार होने का पता चलता है।

चीन और मंगोलियां

तिब्बत के निकट होने के कारण प्राचीन समय में मंगोलिया और चीन में भी बौद्धधर्म का प्रचार एवं प्रसार यहीं से हुआ। बताया जाता है कि तीसरी शताब्दी में बौद्धग्रंथ 'अनामक जातकम्' का भी चीनी भाषा में अनुवाद हो गया है। बौद्धोंके दूसरे जातक 'दशरथ जातकम्' का भी चीनी भाषा में अनुवाद हो गया है। इसमें राम और लक्ष्मण का तो उल्लेख है किन्तु राम की पत्नी सीता का बिलकुल उल्लेख नहीं है। बताया जाता है कि चीनी यात्री ह्वेनसांगने भी रामायण की कथा का चीनी भाषा में अनुवाद किया था।

अन्य देशों की भाषाओं के अतिरिक्त रामायण का जापान, ईरान, मालद्वीप तथा अफगानिस्तान की भाषाओं में भी अनुवाद हो चुका है और वहाँ की जनता में रामकथा किसी न किसी रूप में अवश्य प्रचलित है। वर्त्तमान समय में तो विश्व की प्रायः सभी समुन्नत भाषाओं में रामायण के अनुवाद हो चुके हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत के अतिरिक्त एशिया के अन्य देशों में रामकथा का वर्णन किसी न किसी रूप में जरूर मिलता है। जिस प्रकार हमारे लोकगीतों में रामकथा को जनता ने अपनी इच्छा के अनुसार परिवर्तित एवं संशोधित कर अपने जीवन के निकट बनाया है उसी प्रकार इन देशोंकी जनता ने भी इसमें परिवर्त्तन किया है। वहाँ की जनता ने इस कथा में कतिपय ऐसी बातों को भी सम्मिलिति कर दिया है जो श्रवण मात्र से ही हास्यास्पद सी प्रतीत होती है। जो भी हो, इतनी बात तो स्पष्ट है कि उन्होंने सहृदयता के साथ रामकथा को देश और सीमाओं से परे समझकर अपनाया है। यह स्वतः राम की अलौकिकता को प्रकट करता है।

रामायण के जीवनोपयोगी सिद्धान्तों को सरल रूप में, कथा कहानियों के रूप में बताने बाली मासिक पत्रिका "**बाल जगत**" अपने बच्चों को अवश्य पढ़ावें। वार्षिक मूल्य—सात रुपये।

प्राप्ति स्थान : – **मानस साधना मण्डल,** डी–१२।४, राजेन्द्रनगर, लखनऊ-४

राम नाम

—महात्मा गांधी

इन्सान को सताने वाली हर तरह की बीमारियों के लिये अकेले राम नाम को ही रामबाण इलाज बनाया जा सकता है। इसकी पहली शर्त तो यह है कि राम-नाम दिल के अन्दरसे निकलना चाहिये। लेकिन इसका मतलब क्या? लोग अपनी जिस्मानी बीमारियोंका इलाज खोजनेके लिए दुनियाके आखिरी छोर तक जानेसे भी नहीं थकते, जबकि मन और आत्माको बीमारियोंके मुकाबले ये जिस्मानी बीमारियां बहुत कम अहमियत रखती हैं। उन्होंने कहा "मनुष्यका भौतिक शरीर तो आखिर एक दिन मिटने वाला ही है। उसका स्वभाव ही है कि वह हमेशाके लिए रह ही नहीं सकता। ऐसा समझकर अपने अन्दर रहनेवाली अमर आत्माको रखने वाला आदमी अपने शरीरको ऐसे झूठे लाड़ नहीं लड़ायेगा, बल्कि उसे ईश्वरकी सेवा करने का एक जरिया भर समझेगा। उसको इस तरह का माकूल जरिया बनाने के लिए रामनामसे बढ़कर दूसरी कोई चीज नहीं। राम नामको हृदयमें अंकित करनेके लिए अनन्त धीरजकी, बे-इन्तिहा सब्रकी जरूरत है। इसमें जुगके जुग लग सकते हैं, लेकिन यह कोशिश करने जैसी हैं। इसमें कामयाबी भी भगवानकी कृपासे ही मिल सकती है।

जब तक आदमी अपने अन्दर और बाहर सच्चाई, ईमानदारी और पाकीजगी या पवित्रताके गुणोंको नहीं बढ़ाता, उसके दिलसे राम नाम नहीं निकल सकता। हम लोग रोज शामकी प्रार्थनामें स्थितप्रज्ञका यानी साबित अक्ल इन्सानका बयान करनेवाले श्लोक पढ़ते हैं। हममें से हर एक आदमी साबित–अक्ल या स्थित-प्रज्ञ बन सकता है, बशर्ते कि वह अपनी इंद्रियोंको अपने काबूमें रखे और जीवनको सेवामय बनाने के लिए ही खाये, पीये और मौज शौक या हंसी-विनोद करे। मस-लन अगर अपने विचारोंपर आपका कोई काबू नहीं है और अगर आप एक तंग अंधेरी कोठरीमें उसकी तमाम खिड़कियां और दरवाजे बन्द करके सोने में कोई हर्ज नहीं महसूस करते और गंदी हवा लेते हैं या गन्दा पानी पीते हैं, तो मैं कहूंगा कि आपका रामनाम लेना बेकार है।

लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि चूंकि आप जितने चाहिये उतने पवित्र नहीं हैं, इसलिये आपको राम नाम लेना छोड़ देना चाहिए। क्योंकि पवित्रता या पाकीजगी हासिल करने के लिए भी रामनाम लेना मुफीद है। जो आदमी दिलसे रामनाम लेता है, वह आसानी से अपने आप पर काबू रख सकता है और 'डिसिप्लिन' या अनुशासनमें रह सकता है। उसके लिए तन्दुरुस्ती और सफाईके कानूनोंका पालन करना सहल हो जायेगा। उसकी जिंदगी सहज भावसे बीत सकेगी, उसमें कोई विषमता न होगी। वह किसीको सताना या दुख पहुं-चाना पसंदनहीं करेगा। दूसरोंके दुखों को मिटाने के लिए, उन्हें राहत पहुंचानेके लिए, खुद तकलीफ उठा लेना उसकी आदतमें आ जायगा और उसको हमेशा के लिए एक अमिट सुखका लाभ मिलेगा, उसका मन एक शाश्वत और अमर सुखसे भर जायगा। इसलिए मैं कहता हूं कि आप लगे रहिये और जब तक काम करते हैं, तब तक सारा समय मन ही में राम नाम लेते रहिए। इस तरह करने से एक दिन ऐसा भी आयेगा कि जब राम-नाम आपका सोते जागते साथी बन जायेगा और उस हालत में आप ईश्वरकी कृपासे तन-मन और आत्मा से पूरे पूरे स्वस्थ और तन्दुरुस्त बन जायेंगे।"

गांधी मुस्करा रहा

कौन मुस्करा रहा ?
मौन मुस्करा रहा, लेखनी चला रहा,
एक नये रंगकी रंगत दिखा रहा ।
शब्द ढंढ़–ढूंढ़ कर भावके भरे हुए
गीतकी लड़ी–लड़ी, कड़ी–कड़ी सजा रहा ।।

प्रेम–वारुणि पिये, ज्ञान का दिया लिये;
इस अंधेरी रातमें रास्ता दिखा रहा ।
साहसी किसान सा, देशके निशान सा;
गगन चूमता हुआ, खूब झूमता हुआ;
हाथ में कपास लिए चरखा चला रहा ।।

दोनों हाथ जोड़कर, भेद–भाव छोड़कर;
नम्रता लिये हुए, पुष्प-सा खिले हुए;
मन्द–मन्द भावमें सुगन्ध बिखरा रहा ।
मिट्टी के मकान में, ज्ञान की दूकान में;
खादी की दूकान पर, गांधी मुस्करा रहा ।।

–रामनाथ द्विवेदी 'स्वजन'

मानस में साधना का स्वरूप

--डॉ. चन्द्रदीप सिंह

मानव जीवन में साधना की आवश्यकता अपने साध्य की उपलब्धि के लिये ही होती है। साध्य मनुष्य की मंज़िल है और साधना उसका मार्ग। अपने साध्य अर्थात् लक्ष्य की प्राप्ति के लिये जो साधना अपनाता है उसे साधक कहते हैं और साध्य की प्राप्ति अर्थात् उसकी सिद्धि हो जाने पर वह व्यक्ति सिद्ध कहलाता है। इस पृष्ठभूमि में श्री राम चरितमानस में प्रतिपादित साधना पर कुछ विचार करने के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि हम सबसे पहले मानस के साध्य और साधन से भली भाँति परिचित हों। कारण साध्य और साधन का घनिष्ट संबंध है। साध्य को जाने बिना साधना निर्धारित नहीं की जा सकती और सही साधना को अपनाये बिना मनुष्य को अपने साध्य की प्राप्ति नहीं हो पाती।

इस बात से प्रायः सभी सहमत होंगे कि मानस का साध्य तो उसका प्रतिपाद्य विषय ही हो सकता है और खोज करने पर निम्नलिखित पंक्तियों से यह पता चलता है कि श्रीराम चरित मानस का प्रतिपाद्य विषय भगवान राम ही हैं :–

" येहि महँ आदि मध्य अवसाना।
प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना ॥ "

यह विदित होने पर भी कि मानस में भगवान राम ही प्रतिपादित हैं हमें यह जानना शेष रह जाता है कि भगवान राम कौन हैं और उनका स्वरूप क्या है? इसका रहस्योद्घाटन तो निम्नलिखित पंक्तियों से ही संभव है :–

"राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा॥
सहज प्रकाश रूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि विज्ञान विहाना॥"

उपरोक्त पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि मानस के भगवान अखंड शक्ति ज्ञान और आनंद के श्रोत हैं। मानस के इस राम के सच्चे स्वरूप की पहिचान तो निम्नलिखित उद्धरणों से की जा सकती है :–

"राम स्वरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धि पर
राम ब्रह्म चिन्मय अबिनासी। सर्ब रहित सब उर पुर बासी॥
प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी "

इस तरह यह तथ्य प्रकट होता है कि जिस राम की चर्चा मानस में की गई है वह सब में रमा रहने के साथ सबसे परे भी है और सच पूछिये तो राम का शाब्दिक अर्थ भी तो यही है – जो सबमें रमा हो वही राम है – इससे यह विदित होता है कि उस प्रेरक तथा व्यापक दैवी सत्ता को ही गोस्वामी तुलसीदास ने अपने इष्ट देव अर्थात् श्री राम के रूप में प्रतिपादित किया है।

इस वैज्ञानिक विवेचन के द्वारा यह निष्कर्ष निकलता है कि मानस के साध्य राम हैं (जो शक्ति, ज्ञान तथा आनन्द के श्रोत हैं) और वे उस सत्ता के प्रतीक हैं जो चराचर में व्याप्त ही नहीं है बल्कि सब की प्रेरक भी है। अतः मानस के अध्ययन का उद्देश्य उसके साध्य (श्री राम) की प्राप्ति अर्थात् अपने जीवन में अखंड शक्ति, अखंड ज्ञान और अखंड आनंद की अनुभूति ही है। परंतु अपना निश्चित लक्ष्य, उद्देश्य अथवा साध्य का पता लगाना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उसकी उपलब्धि करना इससे ज्यादा ज़रूरी है और यह तभी संभव हो सकता है जब कि हमें उस मंज़िल का सही मार्ग मालूम हो। इसलिये साध्य और उसकी साधना की सही जानकारी के बिना मनुष्य को सिद्धि नहीं मिल सकती। मानस के साध्य की सिद्धि किस प्रकार संभव है अर्थात् वह कौन सा मार्ग है जिससे मनुष्य उस साध्य को अपने जीवन में प्राप्त कर सकता है यदि इस दृष्टिकोण से आप तुलसीदास के रामायण का अध्ययन करें तो उस पुस्तक की प्रारंभिक पंक्तियों में आप को इन शब्दों द्वारा स्पष्ट संकेत मिल जायेगा :—

"भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमश्वीरम्॥

जिसका अर्थ यही है कि साधक को भवानी और शंकर (जो क्रमशः श्रद्धा और विश्वास के प्रतीक हैं)

का सहारा लिये बिना अपने अन्त:करण में स्थित ईश्वर (अखंड शक्ति, ज्ञान और आनंद के स्वरूप) सत्यं शिवं सुन्दरम् की अनुभूति नहीं हो सकती । इससे यह विदित होता है कि भवानी और शंकर अर्थात् श्रद्धा और विश्वास या विचार और भावना या धारणा और मान्यता पर ही वह साधना आधारित है जिससे मानस के साध्य (श्री राम) जिन्हें शक्ति, ज्ञान और आनंद के रूप में प्रतिपादित किया गया है, की सिद्धि संभव है । इस तथ्य से जहाँ एक ओर मानस की सही साधना का संकेत है वहीं पर दूसरी ओर यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि मानस की साधना कोई क्रिया प्रधान साधना नहीं है उसका तो सीधा संबंध श्रद्धा (विचार) और विश्वास (भावना) अर्थात् मनुष्य की धारणा और मान्यता या दूसरे शब्दों में उसकी बुद्धि और हृदय से ही है। मानस की साधना के द्वारा मनुष्य को अपनी अवांछित अनुभूति में परिवर्तन लाने के लिये केवल अपनी वर्तमान धारणा और मान्यता में ही सत्संग एवं सम्वाद से परिवर्तन लाना होता है क्योंकि धारणा की भ्रान्ति और मान्यता भी अपूर्णता ही उसके दुःख अथवा अवांछित अनुभव के मूल कारण हैं।

किसी भी व्यक्ति की धारणा की भ्रान्ति या उसकी मान्यता की अपूर्णता तभी दूर हो सकती है जब उसकी वर्तमान् धारणा या मान्यता पर आधारित सभी शंकायें दूर हो जायँ और यह तभी संभव है जब वह खुले हृदय और सच्चे जिज्ञासु की भावना से किसी श्रेष्ठ पुरुष के साथ सम्वाद (बातचीत) करके अपनी शंकायें दूर करके अपनी धारणा और मान्यता में परिवर्तन लाये और तदनुकूल साधन-प्रणाली अपनाकर सही अनुभूति प्राप्त करे। कारण धारणा और मान्यता के परिवर्तन द्वारा ही मनुष्य की क्रिया में स्थायी परिवर्तन आ सकता है और इसके फलस्वरूप उसके जीवन में वांछित अनुभूति प्राप्त हो सकती है। इसी तथ्य के आधार पर गोस्वामीजी श्री राचरितमानस को सम्वाद का वह ग्रन्थ मानते हैं जिसमें सब प्रकार के दुःखों को दूर कर मनुष्य के जीवन को सुखमय बनाने की क्षमता है जैसा कि निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट है :—

'यह सुभ संभु उमा संबादा । सुख संपादन समन बिषादा ।।'

मनुष्य भावना एवं विचार प्रधान प्राणी है जिसकी क्रियाओं का आधार उसकी भावना और विचार ही हैं और बिना सम्वाद (बातचीत) के मनुष्य की धारणा या मान्यता में परिवर्त्तन संभव नहीं है। शायद यही कारण है कि प्रायः हिन्दुओं के धर्म-ग्रन्थों, विशेषकर गीता और मानस की रचना सम्वाद के रूप में ही की गई है जिनमें श्रोता के जीवन की ज्वलन्त समस्या का समाधान वक्ता से विस्तृत बातचीत (सम्वाद) द्वारा ही किया गया है और यह सम्वाद उस समय तक दोनों में चलता रहता है जब तक श्रोता की सभी शंकायें दूर नहीं हो जातीं और उसकी धारणा और मान्यता में आमूल परिवर्तन नहीं हो जाता । मानस के बालकाण्ड में ही हम देखते हैं कि कुंभज ऋषि के आश्रम में जो सत्संग हुआ उसमें सती को आनंद नहीं आया क्योंकि उनकी यह धारणा थी कि चराचर में व्याप्त सत्ता का मानव के रूप में अवतरण नहीं हो सकता :—

''ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद ।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद ।।''

अपनी वर्त्तमान धारणा और मान्यता में इस प्रकार के संदेह के द्वारा ही सती की साधना का श्रीगणेश हो पाया जिससे उनकी धारणा बदल सकी और अन्ततोगत्वा उनके जीवन की अनुभूति में भी परिवर्तन संभव हो सका । इसी प्रकार हम श्री मद्भागवद्गीता में देखते हैं कि अर्जुन के जीवन की समस्या का भी समुचित समाधान श्रीकृष्ण से विस्तृत बातचीत द्वारा ही संभव हो पाया है। जिस धारणा और मान्यता के आधार पर अर्जुन रण से विमुख होकर निष्क्रिय हो गए थे भगवान् श्रीकृष्ण से प्रश्नोत्तर द्वारा सही बात समझ लेने के पश्चात् उसी अर्जुन की धारणा और मान्यता में आमूल परिवर्तन हो गया और वे पुनः क्रियाशील हो उठे ।

आज का मानव भोजन से जीवनीशक्ति, पुस्तकों से ज्ञान और पैसे से आनन्द की प्राप्ति मानकर ही सुबह से शाम तक भोजन, अध्ययन और धन के संग्रह पर बल देता है जब कि वास्तविकता यह है कि शक्ति, ज्ञान और आनन्द के स्रोत एकमात्र भगवान् ही हैं और वे प्रत्येक प्राणी में विद्यमान हैं :—

''व्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी । सत चेतन घन आनंद रासी ।।''

परन्तु इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि मनुष्य के जीवन में भोजन, अध्ययन और धन की आवश्यकता ही नहीं है। सच तो यह है कि भोजन मनुष्य के शरीर के

पोषण के लिये, धन सांसारिक साधनों को जुटाने के लिये तथा पुस्तकों का अध्ययन हर प्रकार की सूचनायें प्राप्त करने के लिये नितान्त आवश्यक हैं। इस मूल तथ्य को जब तक मनुष्य अपने दिल और दिमाग में भली भाँति नहीं बैठा लेता तब तक कोरी क्रिया में परिवर्तन लाने से उसके जीवन की अनुभूति में वाँछित और स्थायी परिवर्तन लाना संभव नहीं हो सकता। जो मनुष्य इस बात को जानकर अपनी धारणा और मान्यता बदल सकेगा उसकी क्रिया में उसके विचारों के अनुरूप स्वत: परिवर्तन होने लगेगा क्योंकि क्रिया तो मनुष्य के विचारों की चेरी है। वस्तुत: मनुष्य के विचार ही उसको क्रिया करने की प्रेरणा प्रदान करते हैं और जैसे उसके विचार होंगे वैसी ही क्रिया करने के लिये वह मजबूर हो जायेगा। सच तो यह है कि अपने विचारों के अनुकूल क्रिया किये बिना मनुष्य रह ही नहीं सकता। कारण क्रिया का उसके विचारों से पृथक अस्तित्व ही नहीं होता। चूंकि आज का मनुष्य भोजन, धन और अध्ययन से क्रमश: शक्ति, आनन्द और ज्ञान का संबंध मानता है इसीलिये वह शक्ति के लिये भोजन, आनन्द के लिये धन और ज्ञान के लिये पुस्तकों का सहारा पकड़े हुए है।

जो व्यक्ति भोजन से शक्ति का संबंध मानेगा वह निश्चय ही श्रम के पूर्व ही भोजन की तलाश करेगा क्योंकि श्रम के लिये शक्ति की जरूरत होती है परन्तु जो भोजन को केवल शरीर के पोषण के लिये आवश्यक समझेगा वह श्रम के पहले पौष्टिक भोजन करने भी सोच भी न सकेगा। यही साधक और विषयी के विचारों में बुनियादी अन्तर है जिससे प्रत्यक्षत: समान क्रिया होते हुए भी दोनों के जीवन की अनुभूति में ज़मीन – आसमान का अन्तर हो जाता है। वस्तुत: साधक और विषयी की क्रियाओं में कोई विशेष अन्तर नहीं होता। विषयी भोजन करता है, धन कमाता है, खर्च करता है और पुस्तकें पढ़ता है और साधक भी प्राय: यही करता है परन्तु वास्तविक अन्तर तो दोनों के विचारों में ही होता है। एक ओर जहाँ विषयी शक्ति के लिये भोजन का सहारा लेता है, आनन्द के लिये धन संग्रह करता है और ज्ञान के लिये अध्ययनशील होता है, वहीं पर दूसरी ओर साधक भोजन को अपने शरीर का पोषक तत्व मानकर श्रम के बाद पौष्टिक भोजन करता है, पैसों को वह सांसारिक वस्तुओं को क्रय करने का साधन मानकर धन अर्जित करता है और उसे दिल खोलकर उचित रूप से खर्च भी करता है और पुस्तकों को वह सूचनाओं का साधन मानकर अपने जीवन को सफल बनाने के लिये उन्हें पढ़ कर हर प्रकार की जानकारी प्राप्त करने की चेष्टा करता है। इसके अतिरिक्त साधक यह भी अच्छी तरह समझता है कि उसके भगवान् प्रकृति के पार और सब में व्याप्त हैं इसलिये वह उनसे संस्पर्श प्राप्त करने के लिये कुछ देर तक उनकी याद में अपने को भूलने की कोशिश करता है अर्थात् वह प्रकृति के पार जाने की चेष्टा करता है (इसी क्रिया को मानसमें सुमिरन और गीता में यज्ञ कहा गया है) और अपने व्यापक प्रभु की क्रियात्मक सेवा की भावना से वह अपने प्रत्येक काम में उन्हें शामिल करने के लिये अपने समय, शक्ति, धन और भोजन को उपभोग के पूर्व आंशिक रूप में अर्पित करता है। दूसरे शब्दों में साधक अपने प्रभु को खिलाकर खाता है, पहनाकर पहनता है और प्रत्येक वस्तु को प्रभु समर्पित करके प्रसाद रूप में ग्रहण करता है। इसी को मानस में भजन और गीता में दान की संज्ञा दी गई गई है। यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना अनुपयुक्त न होगा कि साधारणतया प्रयुक्त शब्द 'दान' और प्रभु को सेवा की भावना से अर्पित समय, शक्ति, धन और भोजन में एक सूक्ष्म अन्तर है। धनवान् जहाँ यह समझता है कि अपने दान द्वारा वह दूसरों का उपकार या उनकी सहायता करता है वहीं साधक उस दरिद्र को नारायण के रूप में, बाल को गोपाल के रूप में, जनता को जनार्दन के रूप में और संत को भगवंत के रूप में देखता है और यह मानता है कि उसके प्रभु ने ही दरिद्र या अन्य रूप में उसकी सेवायें स्वीकार कर उसे कृतार्थ करने की कृपा की है, क्योंकि प्रभुका कोई निश्चित रूप नहीं है वे तो सभी रूप में इस संसार में विद्यमान हैं और जो उन्हें जिस रूप में देखना चाहता है वे उसे उसी रूप में दिखाई देते हैं। दूसरी बात यह है कि दान या परोपकार करनेवाले के हृदय में यश-प्राप्ति तथा अहम् की भावना (चाहे वह कितनी ही सूक्ष्म या परोक्ष रूप में ही क्यों न हो) बनी रहती है परन्तु साधक की सेवा में सदा अपने प्रभु को समर्पण का ही भाव रहता है। यही दान और सेवा में अन्तर है। यह रही साधारण दान और दानी की बात। लेकिन जिस दान को गीता में सात्विक दान कहा है उसीका रूप मानस में प्रभु सेवा आया है।

वर्तमान युग में मनुष्य भोजन, धन और अध्ययन को ही साधन मान बैठा है और इन्हीं से ही वह अपने साध्य अर्थात्

अखंड शक्ति, अखंड आनन्द और अखंड ज्ञान की उपलब्धि करना चाहता है परन्तु आवश्यकता से अधिक भोजन, धन और अध्ययन के संग्रह के बावजूद भी वह अपने साध्य से दूर है क्योंकि जिस साधन (भोजन, धन और अध्ययन) का वह सहारा लिये हुए है उसका तो उसके साध्य से संबंध ही नहीं है। सच पूछिये तो भोजन, धन और अध्ययन को अपने जीवन में विशेष महत्व देने के कारण ही मनुष्य के शरीर, मन और बुद्धि में विकारों का संचय होता रहता है जो कालान्तर में रोग, दुःख (चिन्ता) और भय के रूप में प्रकट होकर उसे सताता रहता है।

भावना और विचार पर ही मनुष्य की क्रिया आधारित है इसीलिये मानस इनके द्वारा ही अपने इष्ट की सिद्धि संभव मानता है और इनका (श्रद्धा और विश्वास अर्थात् विचार और भावना) ही सहारा पकड़ने पर बल दिया है– किसी क्रिया विशेष पर नहीं। सच तो यह है कि संत प्रवर ने कोरी क्रिया को अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिये निरर्थक माना है और कड़े शब्दों में यह साफ लिखा है कि मनुष्य की क्रिया स्वतः चाहे कितनी भी पवित्र क्यों न हो उससे उसके दुःख कदापि दूर नहीं हो सकते :—

"नेम धर्म आचार तप जोग जग्य व्रत दान।
भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं हरिजान ॥"

उन्होंने दूसरे स्थल पर भी निम्नलिखित शब्दों के माध्यम से इसी बात को स्पष्ट किया है :—

"साधन करिय विचारहीन मन सुद्ध होइ नहि तैसे"

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर इसमें तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता कि मानस की साधना कोई क्रिया प्रधान साधना नहीं है। उसकी साधना का संबंध तो मनुष्य की भावना और विचार से ही है क्योंकि वह मानता है कि भावना और विचार में परिवर्तन लाये बिना कोरी क्रिया-परिवर्तन से मनुष्य की अनुभूति नहीं बदल सकती। यही कारण है कि मानस में पवित्र से पवित्र क्रिया मात्र को अपने साध्य की उपलब्धि के लिये निष्फल बताया गया है और अभीष्ट की सिद्धि के लिये विचार और भावना (श्रद्धा और विश्वास) का ही पल्ला पकड़ने का निर्देश दिया गया है। श्रद्धावान् (विचार प्रधान साधक) प्रायः ज्ञान मार्ग को अपने जीवन में अपनाते हैं और विश्वासी जन (सहज अन्तःकरण वाले धार्मिक लोग) भक्ति पंथ का अनुसरण करते हैं और दोनों ही रास्तों से मनुष्य अपने साध्य की प्राप्ति में सफल होता है। यह निम्न लिखित पंक्तियों से सिद्ध है :–

"भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव संभव खेदा ॥"

परन्तु यह किसी प्रकार की कोरी क्रिया (विचार हीन क्रिया) के अवलम्बन से कदापि संभव नहीं है क्योंकि साधना का संबंध ही मानस किसी क्रिया से नहीं मानता। वह तो डंके की चोट पर एलान करता है कि सिद्धि प्राप्ति के लिये अर्थात् अपने जीवन की अनुभूति में परिवर्तन लाने के लिये मनुष्य या तो विचार के द्वारा दृश्य का अबाधित ज्ञान प्राप्त कर ले अथवा अदृश्य पर पूर्ण विश्वास कर सर्व समर्थ प्रभु की शरण में अपने को समर्पित कर दे। कारण बिना इन दो में से एक रास्ते को अपनाये मनुष्य के जीवन की अनुभूति नहीं बदल सकती। इसलिये मानस की साधना का सही स्वरूप समझे बिना केवल क्रिया के सहारे मनुष्य अपनी इष्ट -सिद्धि में सफल नहीं हो सकता—यह ध्रुव सत्य है और इसका ज्वलन्त प्रमाण यह है कि आज लगभग ४०० वर्षों से तुलसीदास के रामायण की घर-घर में प्रचार और पूजा होते हुए भी मनुष्य के जीवन में और समाज में हर प्रकार का दुःख विद्यमान है।

प्रत्येक बुद्धिमान एवं धर्म-परायण मानस-प्रेमी को चाहिए कि वह तुलसीदास के श्रीराम चरित मानस का केवल पाठ या पारायण से ही सन्तुष्ट होकर न बैठ जाये बल्कि वह देखे कि भगवान् शिव और माता पार्वती को साक्षी देकर जो आश्वासन दिया गया है वह उसके जीवन में चरितार्थ हो रहा है या नहीं। वह आश्वासन ही मानस की सच्ची फलश्रुति है जिसे निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया गया है :—

"जे एहि कथहिं सनेह समेता।
कहिहहिं सुनहहिं समुझि सचेता ॥
होइहहिं राम चरन अनुरागी।
कलिमल रहित सुमङ्गल भागी ॥"

यदि वर्षों की उनकी क्रिया-प्रधान साधना से उनका जीवन अब तक हर प्रकार मंगलमय नहीं हो सका है अर्थात् उनके शरीर से रोग, मन से चिन्ता, बुद्धि से भय नहीं मिट पाया है तो वे अब मानस के वैज्ञानिक विवेचन द्वारा मानव विज्ञान के सिद्धान्तों को भलीभाँति समझने की चेष्टा करें और अपने जीवन में मानस की वह साधना अपनाने का प्रयत्न करें जिससे उनके विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन संभव हो और वे अपने जीवन काल में ही—लहहिं चारि फल अछत तनु'— मानस की इस फलश्रुति की उपलब्धि कर अपना जीवन सब प्रकार मंगलमय बनाने में सफल हों।

मानस साधन मंडल

मानस साधना मंडल श्री राम चरित मानस का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अध्ययन करने वाले साधकों का एक मंडल है । इसमें कोई सिद्ध नहीं है; सभी साधक हैं जो अपनी योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार मानस की साधना अपनाकर अपने व्यक्तिगत जीवन से आंतरिक अशांति और वाह्य अभाव मिटाकर समाज को भी सुखी और संपन्न बनाने की दिशा में अपनी सेवायें अर्पित करने के लिये सचेष्ट रहते हैं ।

इस संगठन का उद्देश्य उन स्वर्ण सिद्धांतो की खोज, उनपर प्रयोग तथा उनका प्रचार एवं प्रसार करना है जो मानव के व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन से अशांति और अभाव मिटाकर शक्ति, आनंद और ज्ञानयुक्त मानव तथा धन धान्य से संपन्न समाज का निर्माण करने में सहायक हो सकें ।

'मंडल' (जो मानस साधना मंडल का ही छोटा संबोधन है) उन व्यक्तियों और संस्थाओं से परामर्श तथा सहयोग का आदान-प्रदान करने में भी कभी पीछे नहीं रहता जो मानव को सब प्रकार से सुखी बनाने के लिये प्रयत्नशील हैं ।

'मंडल' मानव मात्र में किसी प्रकार का भेद नहीं मानता। उसके सदस्य श्री राम चरित मानस को मानव-विज्ञान (मनुष्य के व्यक्तित्व के समन्वित विकास का ज्ञान) की प्रामाणिक पुस्तक मानकर उसके वैज्ञानिक विवेचन तथा उसमें प्रतिपादित जीवनोपयोगी सिद्धांतों की खोज एवं प्रयोग पर ही बल देते हैं और उसकी फलश्रुति अपने जीवन काल में ही उपलब्ध करने की चेष्टा करते हैं और मानस की फलश्रुति क्या है यह तो निम्नलिखित पंक्तियों से ही स्पष्ट है :—

"जे एहि कथहिं सनेह समेता
कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता ।
होइहहिं रामचरन अनुरागी
कलिमल रहित सुमंगल भागी ।।"

और राम चरन अनुरागी होने का अर्थ श्री राम की भक्ति प्राप्त करना है जिसकी परिभाषा भी उस पुस्तक में इन शब्दों में दी गई हैं :—

"राम भगति मनि उर बस जाके ।
दुख लवलेस न सपनेहुँ ताके ।।"

यह संस्था सिर्फ इतना ही चाहती है कि धर्म में रुचि रखनेवाले रामायण के प्रेमी एवं सच्चे जिज्ञासु उस ग्रन्थ के जीवनोपयोगी सिद्धांतों और उनकी वैज्ञानिक प्रविधि की खोज करें तथा उन पर प्रयोग करके अपने जीवन को हर तरह सुखमय बनाने की चेष्टा करते हुए अन्य व्यक्तियों से भी वे अपने उपयोगी अनुभवों का आदान-प्रदान करें जिससे सुन्दर समाज का निर्माण हो सके । मानस साधना मंडल उन संस्थाओं में से एक है जो जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाकर अपने सदस्यों को मानस साधना की प्रेरणा प्रदान करता है ।

मानव के समन्वित विकास के लिये 'मंडल' सत्संग अनिवार्य मानता है । परंतु सत्संग का अर्थ किसी महात्मा का केवल प्रवचन सुनना या उनके दर्शन करना ही नहीं बल्कि सत्संग के लिये यह श्रवण, संवाद और संपर्क तीनों आवश्यक समझता है और इन तीनों में सम्वाद को विशेष महत्त्वपूर्ण मानता है कारण इसी के द्वारा मनुष्य उन गूढ़ सिद्धांतों को समझ सकता है जिससे उसके जीवन की अनुभूति में परिवर्तन संभव है । इस संबंध में यह जान लेना आवश्यक है कि सत्संग केवल मनोरंजन या समय काटने के लिये नहीं किया जाता बल्कि अपने जीवन में वांछित परिवर्तन लाने के लिये ही किया जाता है । मनुष्य के जीवन में परिवर्तन तभी संभव है जब उसकी धारणा और मान्यता में परिवर्तन हो और किसी की धारणा और मान्यता में तब तक परिवर्तन संभव नहीं हो सकता जब तक उसे अपनी वर्त्तमान धारणा और मान्यता में संदेह का जागरण न हो और धारणा एवं मान्यता में संदेह का उदय तो तभी हो सकेगा जब साधक के जीवन में कोई ऐसी समस्या उत्पन्न

हो जिसका समाधान उसकी वर्त्तमान धारणा और मान्यता के आधार पर असंभव हो जाय। यही तथ्य गीता में अर्जुन और श्रीकृष्ण तथा मानस में पार्वती और शिव अथवा गरुड़ और काग भुशुंडी के सम्वाद से प्रकट होता है। 'मण्डल' कोरे उपदेश की अपेक्षा सत्संग (श्रवण, सम्वाद और संपर्क) पर विशेष बल देकर मानस के जीवनोपयोगी सिद्धांतों के अनुरूप ठोस व्यक्तियों का निर्माण कर उस पुस्तक की वैज्ञानिक विचारधारा की सत्यता प्रमाणित करना अधिक पसंद करता है क्योंकि इसका उद्देश्य मानव का समन्वित विकास करना है न कि मानवता के गुणों की केवल चर्चा अथवा विज्ञापन करना।

मानस साधना मंडल की कार्य-प्रणाली की सब से बड़ी विशेषता तो यह है कि यह निन्दा, चन्दा और झंडा का प्रबल विरोधी है। श्री राम चरित मानस इसकी साधना का प्रामाणिक ग्रन्थ है, जिसमें-- "पर निन्दा सम अघ न गरीसा"--कहा गया है। निन्दा से मनुष्य में अनुचित विचार (negtative thoughts) उत्पन्न होते हैं और जिसकी निन्दा होती है उस तक केवल पहुंचते ही नहीं है बल्कि जिसके माध्यम से इस प्रकार के विचार चलते हैं उस वातावरण को भी वे दूषित कर देते हैं इसीलिये यह संस्था किसी की भी किसी प्रकार की निन्दा को उचित नहीं मानती। सच्ची बात तो यह है कि 'मंडल' की सारी कार्य-प्रणाली सर्व समरथ प्रभु के प्रेरकत्व और व्यापकत्व के ठोस सिद्धांतों पर ही आधारित है। किसी की निन्दा इसलिये भी यह उचित नहीं मानता कि जब एक ही प्रभु सब को प्रेरित करनेवाला है और वह सब में व्याप्त है तो किसकी निन्दा और क्यों की जाय ?

किसी भी संस्था के संचालन के लिये धन की आवश्यकता स्वाभाविक है और इसके लिये प्रायः सभी संस्थायें अनिवार्य रूप से नियमित चन्दा लेती हैं कुछ आदर्श संस्थाओं को अपवाद स्वरूप छोड़कर। परंतु मानस साधना मंडल एक ऐसी संस्था है जो चन्दा को भगवान के प्रेरकत्व का निरादर मानती है क्योंकि चन्दे में कुछ बंधन और कुछ दबाव की बात निहित है। इसका यह अर्थ नहीं है कि 'मंडल' को पैसे से परहेज है या बिना पैसों के ही इसका काम चलता है। सच तो यह है कि प्रभु की प्रेरणा पर स्वेच्छा और सेवा भाव से दिया गया धन ही इसे समाज की सेवा के लिये सहर्ष स्वीकार है। यह संस्था तो कबीर के इस विचार का कायल है :-

सहज मिले सो क्षीर सम माँगे मिले सो पानी।
कह कबीर सो रक्त सम जामे खींचा तानी॥

भगवान के प्रेरकत्व और व्यापकत्व में पूर्ण विश्वास तथा उसका आदर करने के कारण 'मंडल' किसी खास झंडे का भी हिमायती नहीं है। मानव के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास ही इसका मुख्य उद्देश्य है और इस उद्देश्य की पूर्ति में जो भी व्यक्ति अथवा संस्था प्रयत्नशील है उससे यह हर प्रकार के सहयोग के लिये तैयार है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये यदि 'मंडल' की विचारधारा से सुगम और व्यावहारिक कोई दूसरी विचारधारा प्रकाश में आ जाय तो उसे स्वीकार करने में अथवा अपनी कार्य-प्रणाली में परिवर्तन करने में इसे किसी प्रकार का संकोच नहीं होगा। मानस साधना मंडल हमारी संस्था अवश्य है परंतु हम कभी यह नहीं कहते कि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये यही एक मार्ग है। मार्ग तो अनेक हैं और जिसे जो पसंद आये वह उसे निष्ठापूर्वक अपनाये। हम किसी भी व्यक्ति पर अपनी विचारधारा लादना नहीं चाहते और इसीलिये हम किसी खास झंडे पर जोर न देकर केवल सर्व समरथ प्रभु के प्रेरकत्व तथा व्यापकत्व के आदर पर ही सदा बल देते हैं और निन्दा, चन्दा एवं झंडा से परहेज करने की चेष्टा करते हैं। हम तो मानव का संपूर्ण तथा समन्वित विकास चाहते हैं और समाज से रोग, दुःख एवं भय को उच्छिन्न देखना चाहते हैं इसलिये इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये जो व्यक्ति जिस प्रकार भी प्रयत्नशील है वह हमारे लिये पूज्य है चाहे वह मानस साधना मंडल की विचारधारा को मानता हो अथवा नहीं अथवा हमारी कार्य-प्रणाली से सहमत हो या नहीं।

---oo---

आहार

—श्री हरिकिशनदास अग्रवाल

मनुष्य का व्यक्तित्व उसके आहार पर आधारित है। "जैसा खाए अन्न वैसा हो मन" हमारा शरीर अन्न से ही बना व अन्न से ही पोषण पाता है। यदि हम सात्विक आहार करते हैं तो हमारा मन सात्विक और यदि हम राजसी आहार करते हैं तो हमारा स्वभाव राजसी और यदि तामसी आहार किया जाता है तो हम आलसी व प्रमादी हो जाते हैं।

फलसब्जी और अन्न इत्यादि सात्विक आहार से मन सात्विक बनता है। मिठाइयाँ—नमकीन व तले हुए क्लिष्ट पदार्थ यह राजस आहार हैं, जिनसे मन भोग-विलास तथा कामुकता की ओर अग्रसर होता है।

मांस इत्यादि तमोगुण प्रधान भोजन राजस आहार में ही आते हैं, इस के खाने से मनुष्य के अन्दर पशुवृत्तियों का उदय होता है।

जिस पशु का हम माँस खाएँगे, उसी की वृत्तियाँ हमारे अन्दर आनी शुरू हो जाती हैं। पशु को मारते समय यह आवश्यक है कि मारते समय उस में भय और क्रोध उदय हुए हों, किन्तु वह विवशता से कुछ नहीं कर पाया होगा, तथा जो भी उसका माँस खाएगा, उसके अन्दर भी भय-क्रोध की वृत्ति उदय होनी अनिवार्य है।

शाकाहारियों के दाँत तथा मांसाहारियों के दाँतों की रचना ईश्वर ने अलग-अलग की है, जैसे मांसाहारी पशु शेर-चीता आदि के दाँत मांस को भली प्रकार से चबा सकते हैं, परन्तु गाय-बकरी तथा मनुष्य के दाँत सीधे हैं, जोकि मांस के लिए नहीं किन्तु शाक-सब्जी-फल व अन्न खाने के अनुकूल हैं। किन्तु मनुष्य ने अपने स्वाद की पूर्ति के लिए पशुओं को मार उसे अपना आहार बना लिया। पशु मारने से हृदय में क्रूरता-कठोरता आती है।

जो मनुष्य पशु मार या मरवा कर खानेवाला होगा, इसके अन्दर नम्रता व द्रवता नहीं होगी, वह किसी के दुःख में दुःखी नहीं होगा। यदि उसे दुःखी होना होता तो घर में मुर्गी को मारते समय उसकी तड़पन देख उसे अवश्य दुःख हुआ होता।

जिस मनुष्य के अन्दर क्रूरता तथा कठोरता आ जाती है वह आध्यात्मिकता की ओर प्रगति नहीं कर सकता। क्योंकि उसके अन्दर पशुवृत्ति का उदय होता है। यही कारण है कि जब हम किसी को क्रोधी के रूप में देखते हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है, जैसे कोई मनुष्याकार में पशु ही हो। जब कोई मनुष्य किसी को मारता है, तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि मनुष्य की शक्ल में कोई हिंसक पशु हो। पशु के मांस के अन्दर पशुवृत्तियां—जैसे कि काम-क्रोध मारना-फाड़ना इत्यादि सभी छिपी रहती हैं जो कि मनुष्य के भीतर मांस के द्वारा प्रविष्ट होकर समय-समय पर उभरती रहती हैं और मनुष्य को भोगग्रस्त बना देती हैं।

मनुष्य जब अपने हाथ या पांव को काट कर नहीं खा सकता, ऐसे ही उसे कोई अधिकार नहीं है कि किसी को अपनी भोज्य सामग्री बनाए। पशुओं के मारने पर उन्हें वैसा ही दुःख होता है। अन्तर केवल इतना ही है, कि वह बेजुबान है, बोल नहीं सकता अथवा अपने दुःख की गाथा मनुष्य को तरह किसी को सुना नहीं सकता।

आज-कल स्कूल व कालेज के लड़कों व अन्य लोगों में मांस खाना एक प्रगति का चिन्ह तथा फैशन हो गया है। वे समझते हैं कि यदि हम मांस नहीं खाते तो हम पुराने ज़माने के पिछड़े हुए लोग कहलाएँगे। इसी प्रकार से शराब पीना भी आज-कल फैशन हो गया है। जब भी १०-२० मनुष्य आपस में मिले, या किसी पार्टी का आयोजन हुआ, तो उनमें बहुमत पीने वालों का ही होता है, उनमें यदि एकाध कोई न पीने वाला आ फंसे तो उसे भी जबर्दस्ती पिला देते हैं। पहले तो शराब कड़वी लगती है किन्तु फिर वही शराब जब मीठी लगने लगती है तो फिर उसके बिना रहा नहीं जाता।

शराबी उसे पीकर अपने आप को भूल जाना चाहता है। वह सचेत से अचेत हो जाता है, उसे देना, लेना नज़र

With best Compliments from :

THE PODAR MILLS LTD., BOMBAY

PODAR SPINNING MILLS, JAIPUR

PODAR PROCESSORS, BOMBAY

आता है। वास्तव में शराब के नशे में जो अपने को भूलना है, वह अचेत हो कर अपने को भूलना है। अगर मनुष्य सचेत होकर अपने अन्दर निरहंकारिता लाए, अपने परिच्छिन्न व्यक्तित्व को भूल जाए, तो वह जल्दी ही ऊपर उठ आध्यात्मिक प्रगति कर सकता है।

एक शराबी बेहोशी में स्वयं को भूलता है, किन्तु साधक होश रख कर अपने को भूलता है। बेहोशी में शराबी मनुष्य को स्त्री भी चाहिए, वह अपनी व पराई स्त्री का भेद भूल जाता है, वह जुआ भी खेलना चाहता है, जुए में उसे यह आशा बनी रहती है, कि बिना किसी परिश्रम से दाव लगाते ही पैसा आ जाएगा, किन्तु मनुष्य की यह आशा कभी पूरी नहीं होती, जिससे वह निराशावादी हो जाता है।

एक मनुष्य ने दूर से आते हुए एक व्यक्ति को देखा जिसके हाथ में झोली थी और तन से कपड़ा गायब था। उसे देखने वाले ने समझा कि यह कोई अवधूत साधू होगा। उसने उस साधू प्रतीत होने वाले व्यक्ति से पूछा कि इस झोली में क्या है? वह बोला :—मछलियां हैं, जिन्हें खाने के लिए मैं घर ले जा रहा हूं।

पहला व्यक्ति :—आप मछली खाते हैं?

वह :—मैं मछली तभी खाता हूं जब कि मुझे शराब पीना होता है।

पहला व्यक्ति :—क्या आप शराब भी पीते हैं?

वह :—रोज तो नहीं पीता पर जिस दिन वेश्यागमन करता हूं, पी लेता हूं।

पहला व्यक्ति :—क्या आप वेश्यागमन भी करते हैं?

वह :—हां जब कभी चोरी में अच्छा माल हाथ लग जाता है, उस दिन वहां भी चला जाता हूं। और यदि कभी कोई चोरी करने में बाधा पहुंचाए तो उसकी हत्या भी कर देता हूं।

यह है परिणाम गलत आहार का। मनुष्य गेंद की तरह सीढ़ी दर सीढ़ी गिरता ही चला जाता है। जिस मनुष्य का पतन होना शुरू हो जाता है, वह फिर एकदम नीचे पहुंचने पर ही रुकता है।

पतन से बचने का एकमात्र उपाय है कि हम जो भी आहार करें, वह सचेत हो कर करें। आहार का अर्थ केवल भोजन ही नहीं, किन्तु वह सब भी है जो हम आंखों कानों इत्यादि के द्वारा ग्रहण करते हैं। हमें सचेत रहना चाहिए कि हम गलत आहार न कर लें। जैसे कोई रूपवती स्त्री नजर आती है, तो वह आंख द्वारा सीढ़ी लगा हमारे हृदय में उतर जाती है, जो फिर बाहर निकालने पर भी नहीं निकलती। कानों द्वारा हम गीत सुनते हैं, जिनके द्वारा भी संस्कार अंदर जाते हैं।

जिस आदमी का आहार ठीक हो जायेगा वह मनुष्य जीवन की बगिया में विहार करेगा, इसके अतिरिक्त जिसका आहार ठीक नहीं, उसका संहार-प्रत्याहार व दुराचार करना ही मुख्य उद्देश्य हो जाता है, वह अपने जीवन को खण्डित ही नहीं करता अपितु दुःखी भी बना लेता है।

शुद्ध और पवित्र आहार का चुनाव होना चाहिए। हम विवेक द्वारा चुनाव करें कि हमारे लिए क्या उचित व क्या अनुचित है। हम अनुकूल आहार को चुनें, व प्रतिकूल को छोड़ें। हम आहार द्वारा सजगतापूर्वक जीवन व्यतीत करें, तो हम इसे लक्ष्य प्राप्ति का साधन बना सकते हैं।

★

With best Compliments from :

Messrs. Industrial Meters Pvt. Ltd.,
Advent Building (7th floor),
Near Sachivalaya, Bombay-32.

With best Compliments from :

NAVABHARAT TRADING CORPN.
Podar Chambers, 1st Floor,
Parsee Bazar Street, Bombay-1.

मानस की पञ्च-सूत्री साधना

–श्री कुबेरप्रसाद गुप्त

देश, जाति, धर्म, पद, आयु आदिकी विभिन्नताओं के बावजूद अखिल मानव की मौलिक माँगों को हम पाँच मुख्य वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। वे वर्ग हैं, शरीर में अखण्ड स्वास्थ्य, इन्द्रियों में अखण्ड शक्ति, मन में अखण्ड आनन्द, बुद्धि में अखण्ड ज्ञान और अहं में अखण्ड प्रेम।

मानस साधना मण्डल की मान्यता है कि संतुलित आहार द्वारा अखण्ड स्वास्थ्य, युक्तियुक्त उपवास द्वारा अखण्ड शक्ति, विवेकपूर्ण सेवा द्वारा अखण्ड आनन्द, विविवत् ध्यान द्वारा अखण्ड ज्ञान और सर्वभावेन् (प्रभु को) आत्मसमर्पण द्वारा अखण्ड प्रेम की प्राप्ति की जा सकती है।

संतुलित आहार व युक्तियुक्त उपवास

शरीर के रोगयुक्त होने का प्रमुख कारण है भोजन से शक्ति का सम्बन्ध मानकर असमय में आवश्यकता से अधिक मात्रा में विकृत और अयुक्त आहार का ग्रहण करना। अगर हम भोजन के उद्देश्य, भोजन के समय, भोजन की मात्रा और भोजन की वस्तु का सही विवेचन कर तदनुकल आरचण करें तो रोगी का शरीर स्वस्थ हो जायेगा और यह स्वास्थ्य अखण्ड बना रहेगा। वह कभी अस्वस्थ नहीं होगा।

साधारणतया भोजन का उद्देश्य उससे शक्ति प्राप्त करना होता है। अगर भोजन से शक्ति उत्पन्न होती तो यह सम्भव होता कि हम अच्छे से अच्छा पौष्टिक पदार्थ खाकर स्वस्थ बने रहते पर विश्व में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं खड़ा किया जा सकता है जो इस मान्यता पर इच्छानुकुल भोजन कर सदा स्वस्थ रह सके (सम्भवतः अभी तक किसी ने ऐसा दावा नहीं किया है)। परन्तु भोजन से शक्ति नहीं मिलती ऐसी मान्यता वाले मानस साधना मण्डल के अनेक साधक हैं जिनकी असाध्य बीमारियाँ बिना दवा अच्छी हो गई हैं और जो ऐसी मान्यता होने के बाद से (यह अवधि दशकों में है) बीमार नहीं पड़े हैं और जो गम्भीरता और दृढ़ता से दावा करते हैं कि इस जीवन में उन्हें कभी दवा का सेवन नहीं करना पडेगा, यह इस स्मारिकामें तथा मण्डल के प्रकाशनों में विस्तार से बताया गया है। तो पहली बात हुई कि हम जो कुछ भी भोजन करें यह समझ कर करें कि यह शरीर का निर्माण करता है, श्रम से हुई कोषों की टूट-फूट की पूर्ति करता है पर शक्ति नहीं देता।

अब भोजन के समय की बात लीजिए। कोई भी चिकित्साविज्ञान इस बात से इनकार नहीं करता कि रोगों का मूल कारण शरीर में मल का एकत्र होना है (ब्रिटेन में किए गये एक सर्वेक्षण से यह पता चला कि अस्पताल में विभिन्न रोगों से मरे रोगियों में से ९० प्रतिशत की आँतों में मल एकत्र होकर सूख गया था और वह इतना कड़ा था कि चाकू से भी नहीं कटता था)। हमारे शरीर को जितने पोषण की आवश्यकता है उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण पाचन के बाद बचे हुए मल को निकालना है। प्रातःकाल का समय सफाई का होता है। शौच, दातून, स्नान द्वारा हम शरीर के बाहर-भीतर की सफाई करते हैं। सफाई सम्बन्धी जो कार्य अन्दर होता है उसका समय विस्तार दोपहर तक माना जा सकता है। इसलिए इस बीच (दोपहर तक) कोई ऐसी चीज खा लेना जिसके लिए जीवनी शक्ति को सफाई का कार्य छोड़कर उसके पाचन में लग जाना पड़े, उचित नहीं है। भोजन के बाद आलस्य का अनुभव होना इसका द्योतक है तथा 'खाय के पर रह्यो' की लोकोक्ति भी इसकी पुष्टि करती है, जो दीर्घकालीन अनुभव के बाद प्रचलित होती है। मानस साधना मण्डल दोपहर के १२ बजे तक कुछ ठोस पदार्थ अथवा दूध पीना वर्ज्य मानता है। अधिक से अधिक रेचक गुण वाले (सफाई में मददगार) शहद, नींबू का पतला शर्बत, सब्जियों का जूस (रस) अथवा रात के भीगे १०, १५ मुनक्के या किशमिश लिए जा सकते हैं। भोजन के समय का महत्व भोजन के उद्देश्य के बाद का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है।

भोजन की मात्रा के सम्बन्ध में चिकित्सा विज्ञान ने जो मापदंड आयु, ऊँचाई और व्यवसाय के आधार पर बनाया है, वह नितांत भ्रमपूर्ण है। मानस साधना मण्डल

मार्च, १९६६ में राज भवन, लखनऊ में आयोजित प्रदर्शन-शिविर में निराहार व्रत करने वाले साधक खेतों में शारीरिक श्रम का कार्य कर रहे हैं ।

के साधकों ने तथा राज भवन, लखनऊ के मार्च ६६ के शिविर ने प्रमाणित कर दिया है कि इस मापदंड को संशोधित करने की आवश्यकता है । जब भोजन शक्ति नहीं देता तो भोजन की मात्रा का निर्धारण श्रम से हुई टूट-फूट की पूर्ति अथवा बच्चों के शरीर निर्माण (वृद्धि) की दृष्टि से होना चाहिए । अगर शरीर में मल न हो और पाचन यन्त्र ठीक काम कर रहा हो, तो भोजन की मात्रा वर्तमान की अपेक्षा बहुत अल्प होने से भी भलीभांति काम चल सकता है । यह मात्रा शरीर की शुद्धि तथा भोजन की श्रेष्ठता के साथ-साथ और भी घटती जाती है । क्योंकि तब शरीर में टूट-फूट भी कम होगी और ठीक पाचन से अपेक्षाकृत कम मात्रा का भोजन वांछित आवश्यकता की पूर्ति कर लेगा । इस प्रकार आरम्भ में हर वयस्क के लिए दोपहर में एक बार फल-सब्जी का साधारण जलपान और सायंकाल कार्य से निवृत्त होने पर एक बार अन्नमय भोजन पर्याप्त होगा । शारीरिक श्रम की दृष्टि से सायंकालीन भोजन की मात्रा कुछ कम-ज्यादा हो सकती है । मात्रा में इस बात का विशेष ध्यान रखना होगा कि भूख मिटाने के लिए आवश्यक मात्रा का तीन चौथाई मात्रा ही भोजन करना चाहिए ।

चौथी बात भोजन की वस्तु की है । यह स्थूल शरीर आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इन पाँच तत्वों से बना हुआ है । इसलिए शरीर की वृद्धि तथा वयस्क होने पर श्रम से हुई टूट-फूट की पूर्ति हेतु हमें इन्हीं तत्वों से काम लेना चाहिए । आकाश शून्य को कहते हैं, यह उपवास का (कुछ न खाने का) तत्व है । बाकी चार भोजन के तत्व हैं । इनमें वायु तत्व पत्तियों द्वारा तथा खुले स्थान में गहरी साँस लेकर, अग्नि तत्व फलों द्वारा तथा यथावसर धूप का सेवन कर, जल तत्व हरी सब्जियों द्वारा तथा जल पीकर और पृथ्वी तत्व अन्नमय भोजन तथा नंगे पैर पृथ्वी पर चल कर प्राप्त किया जा सकता है । इन पाँचों तत्वों को ग्रहण करने का समय भी निर्धारित करना आवश्यक है । प्रातः कुछ न

खाकर (जल भी न पीकर) कुछ समय तक आकाश तत्व ग्रहण करना चाहिए। दोपहर बाद कुछ कच्चे खाये जाने योग्य स्थानीय एवं मौसम के फल तथा हरी पत्तियों से युक्त सलाद खाकर अग्नि और वायु तत्व ग्रहण करना चाहिए और सायंकाल सब्जियां और रोटी, दाल, चावल खाकर शेष दोनों तत्व जल और पृथ्वी भी ग्रहण किये जा सकते हैं।

इस सम्बन्ध में एक बात और है। जो व्यक्ति दिन में थोड़ा आराम करने का समय निकाल सकते हैं जैसे डाक्टर या किसान आदि, वे चाहें तो दोपहर के सलाद और फल के भोजन के स्थान पर दोपहर को रोटी, दाल, चावल, सब्जी खा सकते हैं और सायंकाल कुछ फल आदि। क्योंकि अन्नमय भोजन के बाद निश्चित होकर कम से कम आधा घण्टा विश्राम करना अति आवश्यक है।

इस प्रकार भोजन का उद्देश्य, समय, मात्रा और वस्तु का ठीक विधि से ध्यान रखा जाय तो इस संतुलित आहार द्वारा अखंड स्वास्थ्य की प्राप्ति निश्चित है।

उपवास का अर्थ है पास बैठना। भगवान के पास बैठने के अर्थ में यह शब्द बना है। जिस प्रकार आग के पास बैठने से हमारी सर्दी दूर होकर आग के गुण गर्मी का अनुभव होता है उसी प्रकार उपवास द्वारा भगवान के पास बैठने से हमारे दोष दूर होकर हममें भगवान के गुण स्वास्थ्य, शक्ति, आनन्द, विवेक आदि गुण आने चाहिए। इसीलिए उपवास (जैसा कि समझा जाता है), केवल शारीरिक ही नहीं बल्कि मुख्य रूप से आध्यात्मिक विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। उपवास की प्रविधि (टेक्नीक) कुछ सूक्ष्म है इसलिए हम केवल उपवास न कहकर युक्तियुक्त उपवास की बात कहते हैं। शरीर को भोजन न देने से जीवनी शक्ति विकारों के निकालने का काम करती है जिससे हमारा शरीर शुद्ध होता है और रक्त की अम्लता कम होकर कार्यक्षमता बढ़ती है। 'जैसा अन्न वैसा मन" अन्न से रक्त बनता है। अच्छा रक्त होने से मन प्रफुल्ल रहता है, प्रसन्न रहता है और बुद्धि भी तीव्र होती है। यहाँ स्थानाभाव के करण उपवास तत्व का सम्यक् विवेचन सम्भव न होगा। इसके लिए मण्डल के प्रकाशन 'धार्मिक सिद्धान्तों पर वैज्ञानिक प्रयोग" में 'उपवास का दर्शन और तंत्र" नामक अध्याय देखना चाहिए।

विवेकपूर्ण सेवा

यह पंचस्तरीय साधना के ठीक बीच में पड़ता है। वास्तव में साधना का यह अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है। समुद्र में खड़े जहाज के लंगर के समान है। जैसे लंगर समुद्र में खड़े जहाज को ऊँची-ऊँची लहरों और तूफानों में भी अपने स्थान पर टिके रहने में सहायक होता है उसी प्रकार विवेकपूर्ण सेवा साधक को साधना से विचलित नहीं होने देती।

यह सेवा अध्यात्मवाद और साम्यवाद जैसे विपरीत छोरों को मिलाने वाली भी है। साम्यवाद का अन्तिम आदर्श है व्यक्ति से उसकी सामर्थ्य के अनुसार काम लेना और उसे उसकी आवश्यकतानुसार देना। विशुद्ध आध्यात्मिक दृष्टि से इस विवेकपूर्ण सेवा में अपने विवेक और सामर्थ्य के अनुसार सेवा करनी है और उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप 'सब बिधि घटब काज मैं तोरे' और 'हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं' का दमदार आश्वासन है।

आज संसार में सेवा करने वालों की कमी नहीं है। तम, मन, और धन सभी से सेवा करने वाले हैं, सामर्थ्य से अधिक सेवा करने वाले भी मिल जायेंगे, पर साम्यवाद उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकने में असमर्थ है। उसकी कुछ और भी शर्तें होंगी जैसे जब तक सम्पूर्ण विश्व पर साम्यवाद न फैल जाय तब तक उनका यह आदर्श आदर्श ही रहेगा। आप कहेंगे आध्यात्मवाद भी तो अपने उक्त आश्वासनों की पूर्ति नहीं करता? नहीं, ऐसी बात नहीं है। आश्वासनों की पूर्ति होती है पर कब? जब सेवा विवेकपूर्ण हो और सामर्थ्य के अनुसार हो। वह सेवा हो, कोई सौदेबाजी, क्रय-विक्रय या लेन-देन का व्यापार न हो।

With best Compliments from :

"The Indo Bombay Trading Co.,"
34 Nagdevi Street., Bombay-3.
Tel. No. **324398** *Gram* : SHAFTINGS
324182

With best Compliments from :

International Tube Trading Corp.
Dealers in Pipes and Fittings,
98, Nagdevi Street, Bombay-3.
Tel. **326582** Res. : **358189**

सेवा मुख्य रूप से प्राप्त शक्ति, समय, धन और भोजन से की जानी चाहिए। शरीर में जो शक्ति है, बुद्धि में जो ज्ञान है, उसका एक अंश सेवा में लगाना है, अपना थोड़ा समय सेवा में लगाना है, अपनी आयका कम से कम दसमांश सेवा में लगाना है और अपने भोजन का चतुर्थांश सेवा में लगाना है। (ऊपर भोजन की मात्रा के विवेचन में कहा गया है कि भूख की मात्रा का तीन चौथाई खाना चाहिए। वही बचा हुआ एक चौथाई सेवा में लगाना है।)

अब प्रश्न उठता है सेवा किसकी करें, कैसे करें? क्रिया-प्रतिक्रिया का नियम विज्ञान में तो है ही आध्यात्म जगत में भी यह नियम काम करता है। अगर हम किसी कुत्ते की सेवा करेंगे तो वह पूँछ हिला देगा, हाथ पैर चाट लेगा, किसी भिखारी की सेवा करेंगे तो वह हमारी 'जय जयकार' कर देगा, किसी इष्ट मित्र, रिश्तेदार आदि की सेवा करेंगे तो वे अपनी सीमित शक्ति के अनुसार हमारे काम आवेंगे, पर निश्चित रूप से हमेशा काम आवेंगे यह नहीं कहा जा सकता। अगर बाद में वे किसी कारण से रुष्ट हो जायँ तो फिर हमारे काम नहीं आवेंगे अथवा हमारा कोई ऐसा काम हो जो उनकी सामर्थ्य के बाहर का हो तब भी उनसे हमारा काम नहीं बनेगा। इसलिए इनकी सेवा करने से हमारा काम नहीं चलेगा। हमें सेवा उसकी करनी है जो सर्व समर्थ हो, किसी भी कारण से हमसे रुष्ट होकर प्रतिकूल न हो और हमारी गलतियों को भी क्षमा कर हमारे अन्तर के भाव को ही अधिक महत्व दे। और ऐसा है वह अकारण करुण, अहैतुकी कृपा करने वाला सर्वसमर्थ भगवान जिसके बारे में कहा गया है 'रहति न प्रभु चित चूक किये की। करत सुरति सय बार हिये की॥'

पर कहाँ पायें इस भगवानको? कुछ भी कह कर इंगित करने पर 'नेति-नेति' कह दिया जाता है, जो निराकार है, बडा कठिन लगता है उसको ढूँढना सेवा करने के लिए। पर एक तरह से देखें तो वह सरलता से मिल सकता है। वह सब व्यापक भी तो है। तो जो कुछ हमारे सामने है, जो हमारे सम्पर्क में आता है वह भगवान ही तो है। बस साधारण दृष्टि से दिखाई नहीं देता। देखने वाली दृष्टि हो तो उसे पाने कहीं दूर थोड़े जाना है? पर एक बात का विशेष रूप से ध्यान रखना है। जिसके साथ मेरा का सम्बन्ध वाचक शब्द लग गया उसकी सेवा करने पर भगवान की सेवा नहीं होगी जब तक कि हम पूर्णता को न प्राप्त कर लें। अपूर्णता में हम जो कुछ करेंगे वह हमारे कर्तव्य की सीमा में आवेगा उसे सेवा समझ लेना भारी भूल होगी। यही वह सेवा की सूक्ष्म प्रविधि है जिसे हमें ठीक से समझना और ठीक से प्रयोग में लाना है। जरा-सा चूके नहीं कि सब गुड़-गोबर हुआ। बिजली के तार चाहे जितने पास-पास हों, जब तक एक दूसरे को छूते नहीं, विद्युतधारा प्रवाहित नहीं हो सकती। तो आइये इस समस्या को भी सुलझाने का प्रयत्न करें।

वह अकारण करुण, अहैतुकी कृपा करने वाला प्रभु हमारी सेवा स्वीकार करने के लिए स्वयं उपस्थित हो जाता है, जब देखता है कि हम उसे अपनी सेवा अर्पित कर कृतार्थ होना चाहते हैं। इतना दयालु है वह। वह चिड़ियों के रूप में, कुत्ते, गाय, बकरी के रूप में अथवा किसी भूखे मानव के रूप में भी आ सकता है। आवश्यकता है केवल उसे उस रूप में पहचानने की। यहीं हम चूक जाते हैं। अभ्यासवश भी और मान्यता में अपूर्णता के कारण भी। अगर हम सतर्क रहें और विभिन्न रूपों में आये भगवान को उतनी ही श्रद्धा से भोजन दे सकें, जिस श्रद्धा से हम मन्दिर में प्रसाद चढ़ाते हैं, तो हमारा काम बन गया।

अगर हम भगवान के रूप में संत-भगवन्त, दरिद्र-नारायण, जनता-जनार्दन और बाल-गोपाल की सेवा कर सकें तो अपनी इस सीमित सामर्थ्य भर सेवा के बदले हमारी सभी भौतिक और आध्यात्मिक आवश्यकताएँ पूरी होती रहेंगी और 'सब विधि घटब काज मैं तोरें' और 'हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं' के आश्वासनों की पूर्ति में तनिक भी संदेह को स्थान नहीं रहेगा।

विधिवत् ध्यान

ध्यान का स्वाभाविक परिणाम निर्भयता है। अंधकार से प्रकाश में आना है। यह ज्ञान प्राप्ति पर होता है (तमसोमा ज्योतिमर्गय) और यह ज्ञान योग से मिलता है 'योगते ग्याना'। प्रभु से मिलने के दो मार्ग हैं। या तो हम उसके पास पहुँचें अथवा वह स्वयं हमारे पास आवे। हमारे और प्रभु के बीच दुर्लंघ्य नदी की भांति माया बीच में खड़ी है। प्रभु हमारे पास किसी रूप में तभी आता है जब हम सब तरफ से निराश होकर दुखी हृदय से उसको पुकारते हैं। परन्तु अगर हमारे चेतन या अवचेतन मन में किसी का सहारा बना हुआ है और हम विगलित हृदय होकर उसे पुकार नहीं पाते तो हमें स्वयं माया के पास जाकर उससे मिलना होगा।

With best Compliments from :

A WELL WISHER

"योगश्चित्तवृत्ति निरोधः" के अनुसार योग के लिए चित्तवृत्तियों का निरोध करना होगा। "सहज विमल मन लागि समाधी" के अनुसार समाधिस्थ होने के लिए विमल (मल रहित) होना होगा। यह मल शारीरिक-प्राणिक और मानसिक दो स्तरों वाला होता है। ध्यान करने बैठने पर शरीर और इन्द्रियों में मल होने पर नींद आ जाती है तथा मन में मल होने से वह एकाग्र नहीं हो पाता, इधर-उधर भागता फिरता है। इस तरह देखें तो संतुलित आहार, युक्तियक्त उपवास और विवेकपूर्ण सेवा द्वारा शरीर, इन्द्रियों और मन को मल रहित करना ध्यान की साधना के लिए भी बड़ा महत्वपूर्ण है।

मायापति भगवान से मिलने के लिए माया (प्रकृति) से पार जाना आवश्यक है इसलिए अष्टधा प्रकृति (इन्द्रियां, मन और बुद्धि) को शान्त करना होगा। इसके लिए क्या करना चाहिए ?

थोड़े ऊंचे स्थान या तखत पर कम्बल, कुशकी चटाई या मृगचर्म बिछा कर किसी ऐसे आसन से बैठना चाहिए जिस पर बिना कष्ट के घंटे-डेढ़ घण्टे बैठा जा सके। यह थोड़े दिनों के अभ्यास से हो जायेगा। समय ऐसा हो जब आस-पास का वातावरण शान्त हो, किसी प्रकार की गन्ध न हो, आंखें बन्द कर लेनी चाहिए और भगवान के किसी नाम या रूप अथवा दोनों पर मन को एकाग्र करना चाहिए।

समाधि इसी एकाग्रता की सघनता के बाद की वह स्थिति है जब ध्यान करनेवाला और जिस पर ध्यान लगाया जाता है, दोनों लुप्त हो जाते हैं। यही माया से पार जाना हुआ, प्रभु से योग हुआ। इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए "राम-राम रटु, राम - राम जपु, राम-राम रमु" के अनुसार शुरू में नाम का सस्वर रटन होना चाहिए, फिर अन्दर-अन्दर उसका निःशब्द जप होना चाहिए, और अन्त में जब मन राम में रम जायगा तो समाधि लग जायगी।

सर्वभावेन् आत्मसमर्पण

विधिवत् ध्यान द्वारा समाधिस्थ होने की साधना समय-साध्य है और दुष्कर भी। गीता में लिखा है कि यह सतत अभ्यास और वैराग्य के द्वारा ही प्राप्य है। परन्तु यह स्थिति एक अन्य सुगमतर मार्ग से भी प्राप्त हो सकती है। उसे सर्वभावेन् आत्मसमर्पन्‌ण कहा गया है।

"सेवक सुमिरत नाम सप्रीती। बिनुश्रम प्रबल मोह दल जीती।।
फिरत सनेह मगन सुख अपने। नाम प्रसाद सोच नहिं सपने।।"

उक्त चौपाई में कुछ शब्दों पर विशेष ध्यान दें। "नाम प्रीति सहित स्मरण करना, स्नेह मगन फिरना, राम के सहारे सपने में भी शोक न होना। यह पूर्ण रूप से भगवान के प्रति आत्मसमर्पण की साधना है। राम चरित मानस में अनेक स्थलों पर प्रेमी भक्तों को समाधि लग जाने का वर्णन मिलता है। भगवान ने ऐसे भक्तों को देवताओं और ऋषियों-मुनियों से कहीं ऊँचा स्थान दिया है।

चित्रकूट में कोल-भील-'प्रभुहि बिलोकहिं अति अनुरागे।
'चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े।'
अरण्यकाण्ड में—— 'सबरी परी चरन लपटाई ।।'
'प्रेम मगन मुख बचन न आवा।'

यह साधना के क्षेत्र की बात ही नहीं है इसलिए इसका न तो कोई दर्शन है और न ही तंत्र। केवल प्रभु को अपना समझना है। दुनियाँ में अन्य सभी से अगर कुछ नाता है भी तो वह केवल भगवान से किसी न किसी रूप में सम्बन्धित होने के ही कारण। जैसे किसी युवती का ज्योंही विवाह हो जाता है, वह अपने माता-पिता, भाई-बहन, घर द्वार सबसे नाता तोड़ कर चल देती है और यह सभी नाते अपने पति के चरण कमलों में जोड़ देती है "सब कर ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बांधि बर डोरी।" उसके लिए उसका पति ही सब कुछ है। वह पति के घर में रहती है। वहां वह किसी को श्वसुर, किसी को सास, किसी को जेठ, किसी को देवर, ननद आदि कह कर अपनाती है। इनमें से किसी से उसका पहले का कोई सम्बन्ध नहीं था। उसके लिए सभी अजनबी थे। परन्तु अपने सर्वस्व (पति) के पिता, माता, बड़े भाई, छोटेभाई, बहन आदि होने के नाते ही वह उन्हें अपना मानकर उनके प्रति अपने कर्तव्य का पालन करती है इसी प्रकार जिसने प्रभु के प्रति सर्वभावेन् आत्मासमर्पण कर दिया है, उसके लिए अपना कहने को प्रभु के सिवा है ही कौन ? वह तो, केवल प्रभु-नाते ही उसके द्वारा अपने को प्रतिनियुक्त मान कर संसार के सभी कर्तव्यों का पालन करेगा। परन्तु अपने लिए भरोसा तो वह केवल अपने प्रभु का ही करता है जिस प्रकार पत्नी केवल अपने पति को ही अपना मानती है और उसी पर भरोसा करती है।

साधना के इस स्तर का विवेचन चाहे जितना किया जाय सदा अधूरा ही रहेगा।

With best Compliments from :
Messrs. MOHANLAL PRITHVIRAJ
Khattergali, Bombay.

मूर्ति-पूजा

–जी. एस. मनासावाला, एडवोकेट

बहुधा प्रश्न उठया जाता है कि ब्रह्म निर्गुण निराकार है, उसमें लीन हो जाना ही जीवन की परमोच्च सिद्धि है तो फिर सगुण साकार की पूजा का आडंबर क्यों ? यह प्रतीक–पूजा का ढोंग क्यों ? वास्तव में मनुष्य ही समस्त प्राणी जगत् में एक ऐसी कृति-सर्जन अथवा निर्मिती है कि जिसमें भोग-जीवन एवं भाव-जीवन दोनों का मिलन है । अन्य प्राणियों का जीवन केवल भोग-जीवन ही देखने को मिलता है, जीवन साफल्य के लिए, भाव-जीवन को पुष्ट करने के लिए, भोग-जीवन का नियमन करने के लिए मूर्ति पूजा आवश्यक है। मूर्ति पूजा से ही भाव-जीवन की पुष्टि होती है और भाव जीवन बिना जीवन अधूरा है, अपंग है।

भगवान सत्यं शिवं सुंदरम् है । उसी पूर्ण चैतन्य का अंश प्राणी में स्थित है एक अंश में भी वही गुण होंगे जो पूर्ण में है जिसका कि वह अंश है। इसीलिए मनुष्य को शुभ दर्शन, शक्ति दर्शन, मंगल दर्शन एवं सौंदर्य दर्शन बहुत आकर्षक लगता है, जब तक प्रभु-सर्जित सृष्टि का निसर्ग का सौंदर्य देखकर सृष्टिकर्ता पर अटूट अगाध श्रद्धा एवं भाव नहीं पैदा होगा तब तक निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना एवं उसका ध्यान नहीं हो सकता। किसी भी वस्तु की स्तुति-प्रार्थना अथवा ध्यान तभी हो सकता है जब उसपर अत्यंत भाव एवं प्रेम तथा श्रद्धा हो। प्रभु पर प्रेम भाव लाने बनाये रखने के लिए मूर्तिपूजा आवश्यक है। पूजा का सुगन्धमय शांत वातावरण-शुद्ध उपकरण, मूर्ति की सुंदर बनावट-सुंदर सजावट एवं श्रृंगार ध्यान को केंद्रित करने में अत्यंत सहायक है।

हम यह चाहते हैं कि हमारा ध्यान स्थिर हो। उसमें हमें आनंद की अनुभूति हो और ध्यान-समाधि-भाव अधिक-से-अधिक लंबा हो। ध्यान के लिए किसी-न-किसी विषय के अललंबन की आवश्यकता है। आप निर्गुण निराकार का ध्यान करने बैठेंगे तो भी आप जिसका भी जैसा ध्यान करेंगे भले ही वह केवल प्रकाश ही क्यों न न हो-ज्योति ही क्यों न हो-प्रणय ही क्यों न हो उसका एक निश्चित आकार आपकी कल्पना के अनुसार आपका मन धारण करता जायगा। लक्ष्य या विषय जितना भव्य होगा जितना दिव्य होगा, नित्य सुंदर, अखंड एवं अचल होगा उतना ही ध्यान सुदृढ़ होगा। फिर ध्यान केंद्रित करने के लिए श्री-विग्रह के अलावा उससे अधिक कौन सा विषय हो सकता है जो अच्युत हो, अमर्त्य हो, अचल हो, सुंदर हो। ध्यान एवं उपासना के लिए मूर्ति पूजा आवश्यक है।

नमः शान्ताय तेजसे-जीवन में शांति, तेजस्विता और समाधान की त्रिपुटी लाने के लिए दृष्टिकोण बदलना आवश्यक है-हम यदि जीवन वैभव को वस्तु निष्ट (Objective Happiness) मान बैठे हों तो हमारी भारी भूल है। यदि सुख-वैभव वस्तु निष्ठ ही होता तो जिनके पास अटूट संपत्ति है-जिनके अच्छा बड़ा परिवार है-बहुत मित्र, नौकर अथवा सहायक हैं उसे हम पूर्ण सुखी शांत एवं तेजस्वी पाते लेकिन बहुधा ऐसा होता नहीं है। जीवन वैभव वस्तुनिष्ठ नहीं अपितु आत्म निष्ट है। सुख व दुख दोनों की ओर, इच्छित अनिश्चित, सफलता असफलता, कृतज्ञ कृतघ्न, अपेक्षित उपेक्षित सब में सम-भाव सम बुद्धि लाना आवश्यक है जिससे आप विचलित न हों नैराश्य नहीं लावें। यह तब संभव है जब हम समस्त तत्वों को प्रभु प्रसाद समझें। प्रसाद की मंगलमयता की भावना बुद्धि हेतु मूर्ति पूजा आवश्यक है। पूजा बिना प्रसाद का अस्तित्व नहीं. पूजोपरांत प्रसाद ग्रहण करते ही यह भावना सचेत व स्पष्ट रूपेण जागृत हो जाती है कि इस जीवन में जो कुछ भी है, जो कुछ

With best Compliments from :
DOOARS TRANSPORT
39, Chakla Street, Bombay-3.

हुआ है, हो रहा है अथवा अब होनेवाला है वह सब प्रभु प्रसाद ही है अथवा मंगल ही मंगल है–इससे जीवन में शांति एवं तेजस्विता आती है.

"हूँ हरि नो हरि छे मम रक्षक
ऐ भरोसो जाय नहीं
जे हरि करशे ते मम हितनो
ऐ निश्चय बदलाय नहीं"

यह भावना प्राप्त करने एवं संवर्धन करने के लिए मूर्तिपूजा ही साधन है। प्रसाद-भाव से जीवन आनंदित एवं भव्य लगता है और भक्ति का उत्साह बढ़ता है।

जीवन में हमें अपने से भिन्न एक ऐसे अन्य की आवश्यकता रहती है जिसके सामने हम अपना हृदय खोल सकें सुख भी व दुख भी सफलता भी विफलता भी, संक्षेप में पाप भी पुण्य भी कह सकें अपनी भूलें स्वीकार कर सकें। जीवन उत्थान की यह क्रिया यदि हम दूसरों के सामने करें भले वे हमारे नजदीक के हों, रिश्तेदार हों तो वे हमारी हंसी करेंगे-हमें मूर्ख ठहरायेंगे-हमारा कौतुक करेंगे और इसी में आनंद लेंगे, ऐसे लोग हमें दीनता का, हीनता का अनुभव कराने पर तुलेंगे लेकिन कोई भी जीवन के उच्चतम स्तरों पर हमें ले जाने को तैयार नहीं। मानव की सहज प्रकृति के अनुसार कभी कभी वह अपने सुख-दुख दूसरों को कहे बिना रह नहीं सकता और उसकी इस उद्विग्नता अथवा उत्साह दोनो की सचेतन अभिव्यक्ति करने के लिए सामने दूसरा कोई चाहिये। मानव की साधना विकास हेतु भी उसे अपनी भूलें स्वीकार करने का अवसर मिलना चाहिये। यह स्पष्ट सब काम एक मात्र प्रभु के समक्ष ही निश्चितता पूर्वक किया जा सकता है और इसी लिए जीवन विकास के लिए-साधनामें स्थिर होने के लिए मूर्तिपूजा आवश्यक है।

जीवन विकास में साध्य प्राप्ति अथवा लक्ष्य प्राप्ति में अहं एवं क्रोध बहुत बड़ा अवरोध करते हैं। अहं निकालने अथवा कम करने के लिए विनम्रता बढ़ना चाहिये–दूसरों के सामने विनम्र होकर अहं निकालने का अभ्यास बहुत कठिन है और ऐसा करने में उसे स्व–सम्मान भाव रोकता है। मूर्ति पूजा में प्रभु की भाव-पूर्वक नमन करते ही (जिसमें नम्रता एवं आज्ञा पालन दोनों निहित हों) अहं शिथिल हो जाता है-भगवान की महानता और जीव की लघुता, प्रभु की सर्वज्ञता व जीव की अल्पज्ञता का ज्ञान होता है और यहीं विनम्र भक्ति का आविर्भाव होता है। भाव पूर्वक मंत्रोच्चारण अथवा प्रार्थना एवं स्तुति करने से अहं तो शिथिल पड़ ही जाता है साथ ही वाणी में माधुर्य भी आता है एवं क्रोध अथवा कठोरता कम होती जाती है। सतत भाव बद्ध मूर्ति पूजा से अहं एवं क्रोध दोनों शून्य बनते हैं एवं साधना में सुगंध आने लगती है-ऐसे विकासशील मानवी के लिए मूर्ति पूजा एक अभ्यास क्रम है।

जीवन में शांति एवं समाधान तभी आता है जब जीवन में अभय हो। पूर्ण अभय प्रभु की शरणागति भाव बिना नहीं प्राप्त होता। शरणागतिभाव लाने एवं पुष्ट करने के लिए मूर्ति पूजा ही योग्य साधन है, शरणागति दृश्य की ही हो सकती है अदृश्य की नहीं।

मनुष्य स्वभावानुसार मृत्यु-भय से घिरा रहता है। उत्कट भावमय पूजा से तल्लीनता एवं सादात्म्यता से प्रभु प्रेम बढ़ता है-प्रभु मेरे हैं इतना ही नहीं मेरे लिए हैं और केवल मेरे लिए ही हैं। ऐसा ही जाने पर मूर्ति-पूजा से मृत्यु का भय निकल जाता है। इतना ही नहीं बल्कि मृत्यु एक साधारण आवश्यक नैसर्गिक क्रिया लगती है। इतना ही नहीं प्रभु-धाम में जाने को फिर डर लगता ही नहीं और मरण भी एक आल्हादित क्रिया बन जाती है, प्रारब्धानुसार रूपांतर मात्र लगने लगता है।

मूर्तिपूजा एक दूसरा भाव भी प्रदान करती है। जीव को यह लगता है कि मैं जिस पूर्ण का एक अंश हूं उस पूर्ण की पूजा करता हूं और मैं भी उस पूर्ण का एक अंश हूं इसलिए पूर्ण में और मुझ अंश में दोनों में एक

With best Compliments from :
Messrs. MAHADEO GANGAPRASAD
Distributors for:
SIRPUR PAPER MILLS LTD.
Bombay Mutual Annexe,
Gunbow Street, Bombay-1.

ही भाव एक ही शक्ति है-मैं भी सत्यं शिवं सुन्दरम् का हीं अंश हूं-मैं हलका नही हूं, क्षुद्र नहीं त्याज्य नहीं, मेरे जीवन को भी पूर्ण की सुगंध पूर्ण का, सौंदर्य, पूर्ण की शक्ति का स्पर्श है- मैं भगवान का हूं ऐसी भावना और अस्मिता जागृत होती है। जीवन विकास के लिए और जीवन को आनंदमय बनाये रखने के लिए यह अस्मिता आवश्यक है और यह अस्मिता जीव को शिव के पूजन से मिलती है। मूर्ति पूजा में से मिलती है।

जीवन साफल्य के लिए ज्ञान कर्म और भक्ति के त्रिवेणी-संगम की आवश्यकता है। केवल ज्ञान से जीवन शुष्क रहता है। उससे केवल पांडित्य-प्रदर्शन किया जा सकता है-ज्यों ज्यों ज्ञान बढ़ता है भाव कम होता जाता है। केवल कर्म से मनुष्य के पाखंडी दंभी बन जाने की संभवना बनी रहती है-उद्दंड या स्वेच्छाचारी बन सकता है-जो कर्म ज्ञान की भूमि पर आधारित नहीं है वह निष्फल है और विनाश की ओर ले जाता है-जिस ज्ञान और कर्म को भाव का यानी भक्ति का स्पर्श नहीं है वह मनुष्य को इधर उधर भटकाता रहता है-ध्येय हीन, उद्देश्य हीन बनाते है और साफल्य प्राप्त नहीं हो सकता है-उसी तरह केवल भाव यानी भक्ति भी मनुष्य को निराशावादी और अकर्मण्य बना देती है-भक्ति भी ज्ञानमय होनी चाहिये और सत्कर्म की प्रेरक होनी चाहिये यानी ज्ञान कर्म और भक्ति का ऐसा बद्ध त्रिकोण है कि इसमें से किसी को भी अलग निकाला नहीं जा सकता-साधारण मनुष्य के लिए तीनों का होना आवश्यक है। भक्ति नौ प्रकार की कही है-श्रवण कीर्तन से लगाकर आत्मनिवेदनम् तक की नौ प्रकार की सभी भक्ति मूर्ति-पूजा से ही प्राप्त होती है। भक्ति का आधार भक्ति का जन्म मूर्ति-पूजा में ही है-भक्ति के लिए द्वैत होना चाहिये। इष्ट होना चाहिये-दृष्ट होना चाहिये। भक्ति यानी सगुण साकार ही उपासना यानी मूर्ति पूजा।

मूर्ति-पूजा से भगवान पर भाव व श्रद्धा बढ़ती है-प्रभु प्रेम और प्रभु भाव की परिणति प्रभु-निर्मित सृष्टि प्रेम में होती है-विश्व-सृष्टि उपर भाव निर्माण होता है-सृष्टि की तरफ आत्मीयता का भाव आता है-दृष्टिकोण बदलता है। इसका अन्ततोगत्वा परिणाम कर्म करने का दृष्टिकोण बदलता है जिससे प्रारब्ध बदलता है और मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है-सारांश में कहा जाय तो मनन करने पर यह निश्चित हो जाता है कि मूर्तिपूजा की प्रथम सीढ़ी से ही मुक्ति की अंतिम सीढ़ी तक पहुँचा जा सकता है और सरलता से—क्रम से।

जीवन विकास की साधना के लिए पहले मनुष्य बनना पड़ता है यानी मनुष्यत्व भाव लाना पड़ता है-मनुष्यत्व भाव के लिए आत्म प्रत्ययवान, महत्वाकांक्षा, परोपकार (पर+उप+कार=ब्रह्म के पास ले जाने वाली सत्कृति) एवं कृतज्ञता तीनों आवश्यक हैं- कृतज्ञता के भाव बिना मनुष्यत्व का अस्तित्व नहीं-कृतज्ञता लाने और टिकाये रखने के लिए मूर्ति पूजा उत्कृष्ट साधन है।

वैसे मूर्ति पूजा और चित्र पूजा (क्रिया भेद को छोड़कर) एक ही स्तर पर खड़ी है-जीवन विकास और साधना के लिए कोई आधार, प्रेरणा-स्रोत अथवा आदर्श-प्रणेता होना चाहिये। गुण विकास के लिए यह आवश्यक है और यह भाव हमें मूर्ति पूजा में से मिलता है, मूर्ति पूजा या चित्रपूजा मानव विकास की एक आवश्यक वैज्ञानिक प्रक्रिया है-मूर्ति पूजा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे यदि समझकर स्वस्थ दृष्टिकोण से की जाय तो उसका प्रभाव तीव्र होता है अन्यथा वैसे भी की जाय तो भी इसका प्रभाव धीमा पड़ता रहता है-भक्ति को मूर्ति पूजा या चित्र पूजा की इस प्रक्रिया को रखना या बनाना यह अपने ही हाथ की बात है।

थोड़े में कहना हो तो जीवन विकास के सभी गुण मूर्ति पूजा से मिलते है और इसीलिए मूर्ति पूजा की जीवन में अत्यंत आवश्यकता है-यह एक ऐसा सरल रास्ता

With best Compliments from :

The Hindusthan Sugar Mills Ltd.,
51, Mahatma Gandhi Road,
Bombay-1.
Phone **255721** *Gram :* SHREE
Telex : **011-2563**

With best Compliments from :

G. DAS AND COMPANY PVT. LTD.
Navsari Chambers, 3rd floor,
Outram Road, Fort, Bombay-1.
Gram : PUNANIRMAN Phone : **263921**

है और सुलभ साधन है जिससे यात्रा के महान केंद्र यानी लक्ष्य तक पहुंचा जा सकता है-शास्त्रों ने दूसरे रास्ते भी बताये हैं किन्तु सर्व साधारण के लिए सुलभतम रास्ता यही लगता है।

मूर्ति पूजा से अन्य कई भाव प्रकाशित होते है ... मस्तक पर तिलक लगाते समय प्रश्न खड़ा होता है कि मस्तक पर ही चंदन-रोली क्यों ? उत्तर ध्यान में शीघ्र आता है कि मस्तिष्क बुद्धि का केंद्र स्थान है--कंट्रोलिंग पॉवर नियंत्रक शक्ति का निवास वहाँ पर है इसलिए चंदन लगाकर तिलक लगाकर मैं बुद्धि की पूजन करता हूं-बुद्धि को अशुद्ध तेजस्वी एवं कुशाग्र करने की भावना नित्य मूर्ति पूजा में से मिलती है-दूसरा भाव यह बना रहता है कि मेरी बुद्धि हमेशा पूजने योग्य बनी रहे-और इससे एक स्वस्थ दृष्टिकोण का निर्माण होता जाता है। मूर्ति को पुष्प चढ़ाते समय कल्पना आती है कि भगवान को पुष्प क्यों पसंद है-पुष्प में कोमलता सुगंध एवं सौंदर्य होने से पूजा मे चढ़ते हैं। सच्ची पूजा जीवन पुष्प अर्पण करते से होती है और जीवन पुष्प चढ़ाते के लिए पहले उसमे सत्कर्म की सुगंध-बुद्धि की निर्मलता-आर्जवता-शुचिता एवं भाव-सौंदर्य निरखना चाहिये तभी यह जीवन पुष्प चढ़ाने योग्य बनेगा तभी पूजा की पूर्णता आवेगी और आनंद प्राप्ति होगी-यह भाव मूर्ति पूजा में से ही मिलती है।

वैसे देखा जाय तो मूर्ति पूजा में संपूर्ण भारतीय दर्शन-तत्व समाविष्ट हो जाता है।

मन में उठने वाले अनेक विचारों एवं कल्पों को स्थिर करने के लिए मन को कहीं केंद्रित करना तो पड़ता है-फिर भगवान की मूर्ति में ही क्यों न केंद्रित किया जाय दूसरी बातों के बजाय।

कोई भी कृति के अच्छे या बुरे होने का मापदंड उसकी क्रिया से नहीं किया जा सकता किन्तु उस कृति के पीछे हेतु अथवा उद्देश्य से होता है-बुद्धि का हेतु उच्च करने के लिए मूर्ति पूजा आवश्यक है क्योंकि सामने की मूर्ति विश्वकर्ता की होने से बुद्धि की उससे तद्रुपता होने पर बुद्धि भी महान होती जाती है और बुद्धि के संकल्प और हेतु महान होते रहने पर कृति में महानता आती है।

जिस तरह प्रत्येक व्यक्ति की इच्छायें अलग अलग होती हैं उसी प्रकार प्रत्येक भक्त की इच्छाओं को मान देकर विश्वकर्ता अलग अलग रूपों से आविर्भूत हुआ और इसीलिए अनंत मूर्तियों का निर्माण हुआ। किन्तु तत्व तो एक ही है-जिस तरह एक ही व्यक्ति के अलग अलग नाम अथवा संबोधन होते हुए भी, जैसे एक ही व्यक्ति को सेठ, पिता, पुत्र, पति, नौकर आदि नाम से पुकारा जाता है उसी तरह एकही तत्व को अलग-अलग नाम से स्मरण किया जाता है अलग अलग रूप में उसकी आराधना की जाती है-और अलग-अलग व्यक्ति का मानसिक विकास अलग-अलग स्तर पर पर होने से (Psycocogical development) उसे उसके विकासानुसार ही मूर्ति मिलनी चाहिये और इस कारण से भी अलग अलग मूर्तियों का निर्माण हुआ है और इसी क्रम से उत्तरोत्तर बढ़ने पर निर्गुण निराकार के ध्यान तक पहुंचा जाता है।

समाधि अवस्था में तत्व को अनुभव करनेवालों ने तत्श्चात स्तोत्र स्तुति आदि रूप से उसका वर्णन किया जिसे शिल्पियों ने समझा और पत्थर अथवा लकड़ी अथवा कागज पर मूर्ति बनाई-मूर्ति का कर्ता भवन ही है-शिल्पकार तो मूर्ति को केवल भौतिक आकार देता है। जैसे चंद्र पर पहुंचने के लिए पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण छोड़ना पड़ता है फिर शून्याकाश मे रसना पड़ता है और फिर चंद्र के गुरुत्वा कर्षण में प्रवेश लेना पड़ता है उसी प्रकार निर्गुण निराकार रूप में लीन होने के लिए निर्विकल्प समाधि के लिए पृथ्वी पर का वातावरण छोड़ना पड़ता है इसके लिए प्रथम सविकल्प समाधि लगना चाहिये जिसका आधार मूर्ति पूजा है।

उपरोक्त विचार मूर्ति पूजा के तीनो प्रकार तन-पूजा, गुण-पूजा एवं तत्व-पूजा के लिए लागू पड़ते हैं– मूर्ति बदलना नहीं चाहिये उसमें चित्त की चंचलता का आभास होता है।

यह विश्लेषण आपके समक्ष प्रस्तुत किया है जिसे आप भी बुद्धि की कसौटी पर कसें और विश्वास है आप भी इसी निर्णय पर पहुंचेंगे कि मूर्ति पूजा की जीवन में कितनी आवश्यकता है।

मुझे नई दृष्टि मिली

–श्रीदुर्गाप्रसाद गुप्त, बलिया

'भोजन से शक्ति का कोई संबंध नहीं है' यह बात पूज्य योगीजी से लगभग ७–८ वर्ष पहले एक प्रवचन में सुनी तो कुछ अजीब सा लगा किन्तु जब उन्होंने इस बात को बार-बार दुहराया और जोरदार ढंग से कहा तो कुछ सोचने समझने के लिये विवश हो गया, फिर भी बात कुछ समझ में नहीं आई। उन्होंने रामायण के जीवनोपयोगी पक्ष की वैज्ञानिक ढंग से व्याख्या प्रस्तुत की थी। मेरे लिये रामायण कोई रुचिकर ग्रन्थ नहीं था, मैंने उस समय भी उसे नहीं पढ़ा था और न आज ही पढ़ पाया हूँ। योगी जी के प्रवचन सुनने के बाद यदाकदा कुछ पन्ने उलट-पलट कर देखे तो इतना अवश्य समझ गया कि इसमें अयोध्या के राजा राम का भी वर्णन है, साथ ही उस राम से भी परिचय कराया गया है जो सबके भीतर रमा हुआ है तथा उस राम की ओर भी इंगित किया गया है जो इन दोनों से पृथक है। रामायण में जो कथा-भाग है वह तो केवल सूत है उस माला का जिसमें राम-नाम की मणियाँ पिरोई गई हैं। यह समझते ही रामायण के प्रति मेरे पहले के भाव में परिवर्त्तन हो गया और मैं उसे केवल महान काव्य-ग्रन्थ ही नहीं बल्कि श्रेष्ठतम आध्यात्मिक ग्रन्थ भी मानने लगा।

एक बार योगीजी के बलिया वाले प्रवचन में उनके साथ कुबेर बाबू को भी देखा। वे मेरे पूर्व परिचित थे। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ यह देखकर कि योगीजी की मान्यताओं पर उनकी अपार श्रद्धा है। तब मेरा पैर भी कुछ अधिक तेजी से आगे बढ़ने लगा। उन दिनों योगीजी की उपस्थिति में ८–१० लोग नवरात्र-व्रत कर रहे थे। मैं भी उसमें शरीक हो गया और मैंने भी बिना अन्न ग्रहण किये केवल लौकी का रस लेकर नौ दिनों का व्रत कर डाला। मैंने यह बात घरवालों को छोड़ किसी से बताई नहीं और उसके बाद केवल शाम को ही अन्नमय भोजन करने लगा। एक महीने के अंदर ही मेरा वज़न ३० पौंड घट गया। शरीर काफी दुबला हो गया। उस समय लोग मुझे एक पूर्ण स्वस्थ और सुन्दर डीलडौल वाले व्यक्ति के रूप में देखते थे किन्तु वे लोग यकायक रोगी मानने लगे जबकि मैं अपने को अन्दर से पूर्ण स्वस्थ समझता था और मेरी कार्य-क्षमता घटी नहीं बढ़ी ही थी। रोज ६ मील चलकर गंगास्नान तथा अन्य सारे कार्य पूर्ववत् ही करता था। मेरी फुर्त्ती अधिक बढ़ गई और कार्य करते समय कोई थकावट नहीं आती थी। फिर भी जिसने देखा मुझे बीमार ही घोषित किया। मैं समझता था कि मेरी कई बीमारियाँ चली गईं और शायद अब कभी बीमार पड़ूं नहीं। मुझे अक्सर सर्दी-जुकाम हो जाता था, वह बिल्कुल बन्द होगया और मेरे बॉये हाथ के जोड़ों में कभी कभी बहुत बेचैन कर देने वाला दर्द होता था वह भी दूर हो गया। फिर भी दूसरों ने मुझे बीमार के रूप में ही देखा किन्तु मुझ पर इन बातों का कोई असर नहीं पड़ा। इस संबंध में दो प्रसंग बड़े ही रोचक हैं:—

१. मैंने जीवन बीमा कराया था। जिस साल नवरात्र व्रत किया उसके एक साल पहले वाली किश्त जमा करने का निर्देश अपने पुत्र अशोक जी को देकर मैं बाहर चला गया उन्होंने भूल से जमा नहीं किया। एक साल बाद जब मैंने अगले साल की किश्त जमा कराने को भेजा तो मालूम हुआ कि पिछला बकाया भी जमा

With best Compliments from :
ELITE ENTERPRISES
Chhabra Estate, Bulsarai Colony Road,
Vakola Bridge, Snntacruz (East)
Bombay-55.

With best Compliments from :
A WELL WISHER

करना है और स्वास्थ्य के बारे में मेडिकल सर्टिफिकेट भी देना है। रुपया तो जमा कर दिया किन्तु मेडिकल सर्टिफिकेट लेने जब गया तो वजन पहले से ३० पौंड़ कम था। रिपोर्ट जब जीवन बीमा के वाराणसी कार्यालय में गई तो वहाँ के मैनेजर ने मेरी पालिसी के नवीनीकरण से इंकार कर दिया और मुझसे कैफियत तलब की। मैंने कहा कि मैं पूर्ण रूप से स्वस्थ हूं वजन चाहे जो भी हो। इस बार बलिया के दो दूसरे डाक्टरों से जाँच कराने का निर्देश हुआ। वे लोग भी यही लिखते रहे कि वजन भले ही ३० पौंड कम है किन्तु स्वास्थ्य में कोई दोष नहीं दिखाई देता। फिर भी वाराणसी के मैनेजर ने स्वीकार नहीं किया और वे स्वयं बलिया आये और मुझे बलिया आफिस में बुलाया तथा अपने सामने एक डाक्टर से जाँच कराया। जब मुझे साँस बाहर निकाल कर पुनः श्वास से सीना भरने को कहा गया तो सीना ३॥ इंच बढ़ गया। यह देख कर उन लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा और उन लोगों ने तुरंत मुझे पूर्ण स्वस्थ घोषित कर पालिसी का रिन्यूअल कर दिया।

२. मेरी बड़ी लड़की की शादी की बातचीत कहलगाँव (भागलपुर) में चल रही थी। लड़के के पिता को किसी ने मेरे बारे में मेरा पहले का मोटा-ताजा फोटो दिखाकर यह भ्रम पैदाकर दिया था कि मैं किसी कठिन बीमारी से ग्रसित हूं तभी शरीर में इतना अंतर आ गया है। मैं एक बार कहलगाँव गया। चूंकि भोजन भी एक समय ही करता था और नाश्ता भी नहीं करता था इसलिये उन लोगों ने पूरी तौर पर विश्वास कर लिया कि मैं रोगी हूं। शाम को घूमने की बात हुई। तै हुआ कि गंगा जी के बीच में जो पहाड़ है उस पर चला जाय। नाव से सभी लोग पहाड़ पर पहुँचे। पहाड़ पर कई ऊँचे टीले हैं। सभी लोग उधर की ओर बढ़े। पहाड़ के सबसे ऊँचे टीले पर मैं देखते-देखते सबसे पहले पहुँच गया। अन्य लोगों में कुछ ही पहुँच पाये और कई लोग तो बीच में ही रह गये। जब मैं नीचे उतरा तो जो लोग मुझे बीमार समझे थे उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और उन लोगों ने तब बताया कि उन लोगों को किस प्रकार भ्रम में डाला गया था। बादमें पुत्रीकी शादी भी वहीं हो गई।

मुझे व्यावसायिक कार्यों के सिलसिले में महीने में १०–१५ रोज बाहर ही रहना पड़ता था। अब भी काफी जाना पड़ता है। जब भी बाहर जाता तो लौटने पर गंभीर रूप से सर्दी–जुकाम से पीड़ित हो जाता। जबसे दिन में भोजन करना बन्द कर दिया तब से बाहर से लौटने पर इस प्रकार की कभी कोई शिकायत नहीं हुई। मैं अब जब भी बाहर जाता हूँ कम-से-कम ८–१० मील का चक्कर पैदल लगाता हूँ, कम-से-कम १४ घंटे कार्य करता हूँ। रात में भी अगर भोजन कुछ ठीक ढंग का मिला तो कर लेता हूँ अन्यथा कुछ पेय पदार्थों से काम चला लेता हूँ। बिना किसी प्रकार की थकावट महसूस किये घर वापस आकर पुनः अपना कार्य करने लगता हूँ।

इन अनुभवों से पूज्य योगी जी की विचारधारा पर विश्वास जम गया। यह बात स्पष्टतया महसूस करने लगा कि भोजन से बोझिल शरीर आलस्य का केंद्र बन जाता है वैसी दशा में कार्य करने से क्रिया-शक्ति दो मोर्चों पर बँट जाती हैं, भोजन पचाने और कार्य करने में। इससे दोनों ही कार्य ठीक प्रकार से नहीं हो पाते हैं। न तो भोजन ही पच पाता है और न मनोयोगपूर्वक कार्य ही हो पाता है। दूसरे यह बात भी अनुभव में

EXCEL AUTO AND GENERAL INDUSTRIES
Suba Trading Company
Spares Right Works

With best Compliments from :
ASHOK LEYLAND LTD.,
Madras.

आई कि शरीर के अन्दर विकार रहेंगे तो पूरी क्षमता से कार्य कर सकना संभव नहीं होगा। इसलिये जब कम-जोरी मालूम हो तो यही मानना चाहिये कि विकार अभी मौजूद हैं। भोजन-जन्य विकारों से बचने के लिये श्रम के बाद ही भोजन करता हूँ और भोजन के बाद विश्राम अवश्य करता हूँ। यदि विश्राम में कोई अड़चन होती है तो भोजन को टाल देने का ही प्रयत्न करता हूँ। अब तो यह एक स्वभाव-सा बन गया है। भोजन के लिये वह तड़प या हाय–हाय नहीं है। अब तो यह स्पष्ट हो चुका है कि अधिक भोजन जीवनी शक्ति पर भार स्वरूप है और पौष्टिक कहे जाने वाले भोजन भी विकारों को बढ़ाते ही हैं। भोजन का शरीर के निर्माण से गहरा संबंध है। वह शरीर बनाता है, बने हुए शरीर की दैनिक टूट-फूट को ठीक रखता है इसलिये इन आव-श्यकताओं की पूर्त्ति के लिये भोजन आवश्यक है। भोजन से शरीर बनता है, भोजन पचने के बाद रुधिर मांस आदि में परिवर्तित होकर शरीर का अंग बन जाता है। किन्तु यह समझना भी आवश्यक है कि भोजन को पचाता कौन है? भोजन को हमारी क्रियाशक्ति ही पचाती है। क्रियाशक्ति का हमारे अन्दर एक पृथक अस्तित्व है। यह हमें कार्य करने की क्षमता प्रदान करती और भोजन पचाकर हमारे शरीर का निर्माण करती है। हमको भारी भ्रम इस बात का हो गया है कि यह क्रियाशक्ति भोजन से बनती हैं जबकि भोजन केवल शरीर-निर्माण करता है। अगर भोजन से क्रिया शक्ति या जीवनी शक्ति बनती होती तब तो पहलवान लोग, जो बहुत पौष्टिक पदार्थ खाते हैं दीर्घजीवी होते और उनमें अत्यधिक क्रिया-शीलता होती। किन्तु उनमें दोनों का अभाव होता है। वे दीर्घजीवी भी नहीं होते और फुर्ती तो उनमें होती ही नहीं। पौष्टिक भोजन तथा व्यायाम से उनके शरीर का खूब निर्माण हुआ होता है यह तो स्पष्ट है, किन्तु क्रिया-शक्ति उनकी बढ़ती नहीं बल्कि काफी घट जाती है। मेरे भोजन में चौबीस घंटों में अन्न की मात्रा साधारण-तया एक पाव से अधिक नहीं होती और इससे मुझे पूरा संतोष मिल जाता है। बीच में रुकावटें भी आती हैं जब कभी कुछ भोजन अधिक भी कर लेना पड़ता है किन्तु यह समझता हूं कि इससे कोई अतिरिक्त शक्ति मिलने की बात नहीं है यह तो किसी के आग्रह को स्वीकार कर लेना मात्र है। नतीजा यह है कि ५४ वर्ष की आयु में भी लगातार १६ घंटे तक कार्य करने पर भी कोई थकावट की बात नहीं आती।

भोजन के संबंध में विकारवाद पर गहरी आस्था हो जाने के बाद अन्य सिद्धांतों को समझने में अपेक्षाकृत कम कठिनाई हुई। समझ में आया कि अस्वस्थ शरीर का कारण भीतर की गन्दगी, अस्वस्थ मन का कारण वस्तु-ओं में आसक्ति, तथा भ्रमयुक्त बुद्धि का कारण पुस्तकों को ज्ञान का आधार मानना है। इन सिद्धांतों को तर्क की कसौटी पर कसने की अब आवश्यकता नहीं रही। मेरे लिये ये जीवन के शाश्वत सिद्धान्त बन गये हैं। मैं इनको जिस मात्रा में व्यावहारिक रूप दे पाता हूँ उससे कुछ अधिक ही लाभ पा लेता हूँ। अनजाने में ही भीतर ही भीतर कुछ भारी परिवर्त्तन हो गया है, सोचने समझने और करने का दृष्टिकोण ही बदल गया है। ★

With best Compliments from :
METRO - TUBE TRADING CO.
131-135 Narayan Dhuru Street,
Bombay-3.
Phone : **324711.**
Pipe Fitting, Valves and Asbestos Goods.

With best Compliments from :
AHUJA TYPE FOUNDRY
Kothari Mansion,
Opposite G.P.O., Bombay-1.
Gram : AHUJATYPES Phone : **265530**

शाश्वत आस्था का संदेश

—डा. टी. एन. सिंह

लंका-अभियान के समय अपने साथियों सहित उतुङ्ग पर्वत शिखर पर बैठे हुए भगवान राम ने नवोदित चन्द्रमा की ओर देखा और उनके मन में अनेक कल्पनाएं उठने लगीं —

'पूरब दिसा बिलोकि प्रभु, देखा उदित मयंक।
कहत सबहि देखहु ससिहि, मृगपति सहित असंक ।।'

इत्यादि। उनके साथियों ने चन्द्रमा की कालिमा के संबंध में जो विचार व्यक्त किये वे मानवीय भावनाओं के प्रकृति पर आरोपण के परिचायक हैं। तुलसीदास ने यहाँ विशुद्ध कवि-धर्म का निर्वाह किया है।

आज जब मनुष्य सचमुच चन्द्रमा पर पहुँच चुका है तो सामान्य मनुष्य के मन में अनेक मध्यकालीन आस्थाओं के प्रति शंका उठती है। राम-कथा के कई प्रसंगों को लेकर लोग कुतर्क में पड़ते हैं। अधकचरी आधुनिकता उन्हें और अधिक अनास्थावान बना देती है। यही आधुनिक युग की सब से बड़ी विडंबना है। अगर कोई मुझ से पूछे कि तुलसी-साहित्य का सबसे बड़ा संदेश क्या है तो मैं कहूंगा कि शाश्वत आस्था का संदेश। यही संपूर्ण दर्शनों और मानवीय चिंतन की परम उपलब्धि भी है। उक्त प्रसंग में तुलसी ने केवल कवि की दृष्टि से राम का परिचय दिया है। दार्शनिक रूप में उनका मत है— "राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी।" आज से साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व फ्रांसिस बेकन ने कहा था कि—"छिछला दर्शन-ज्ञान मानव मस्तिष्क को नास्तिकता की ओर झुकाता है और दर्शन ज्ञान की गहनता मानव मस्तिष्क को धर्म के रंग में रंग देती है।" यदि इस उक्ति को आधुनिकतावादी मध्यकालीन चिंतन का अंग मानें तो मैं आधुनिक युग के महान गणितज्ञ और भौतिकी के क्षेत्र में क्रांतिकारी चिंतक आइंस्टीन का कथन उद्धृत करता हूं— "मैं मुख्यतः धार्मिक व्यक्ति नहीं वैज्ञानिक हूं। मेरा धर्म इस विनम्र स्वीकृति तक ही सीमित है कि विश्व में एक ऐसी सर्वोपरि सत्ता अवश्य है जो सीमातीत है और जो प्रकृति के उन सूक्ष्मातिसूक्ष्म कार्यकलापों में अपने को अभिव्यक्त करती है, जिसे हमारा अव्यक्त अल्पशक्ति मन देखता एवं अनुभव करता है। संपूर्ण विश्व जिस असीम प्रज्ञानमय प्रभु सत्ता से अनुशासित हो रहा है, वही ईश्वर है . . ." और आइंस्टीन के सिद्धांतों में संशोधन प्रस्तुत करने वाले प्रो० हायल के सहयोगी नवयुवक भौतिकीविद् नार्लेकर से जब किसी ने ब्रह्मांड में मानव के विचरण की संभावनाओं के संबंध में पूछा तो उसने बड़ा अलंकारिक उत्तर देते हुए कहा—"निस्सीम ब्रह्मांड को जानने के लिए मनुष्य का प्रयत्न वैसा ही है जैसे किसी जलयान के केबिन में बैठा हुआ खटमल सागर की थाह लेना चाहे।" यही वह सीमा रेखा है जहाँ वैज्ञानिक और भक्त के चिंतन मिल जाते हैं। भक्त अपनी असमर्थता की अनुभूति से सहज समर्पण कर, कह उठता है कि परिस्थितियाँ चाहे कितनी ही विषम क्यों न हो भगवान उसकी रक्षा करेंगे ही—

'कानन भूधर बारि बयारि महा विष व्याधि दवा अरि घेरे।
संकट कोटि जहाँ तुलसी सुत मातु पिता हित बंधु न नेरे ।।
राखिहे राम कृपालु तहाँ हनुमान से सेवक है जिन केरे।
नाक रसातल भूतल में रघुनायक एक सहायक मेरे ।।'

तुलसी का यह मत है कि आस्था के अभाव में समस्त जागतिक कर्म यंत्रवत् चलते हैं। वे निस्सार और जड़ हैं।

तुलसी का संपूर्ण चिंतन और साहित्य इसी अनन्य आस्था से आप्लावित है—

'जागिए न सोइए बिगोइए जनम जाँय,
दुख रोग रोइए क्लेस कोह काम को।
राजा, रंक, रागी औ विरागी भूरि भागी ये
अभागी जीव जरत प्रभाव कलि बाम को ।।

तुलसी कबन्ध कैसे धाइबो विचार अंध,
धंध देखियत जग सोच परिनाम को।
सोइबो जो राम के सनेह समाधि सुख
जागिए जो जीह जपै नीके राम नाम को ।।'

अनास्था की भौतिकोन्मुखी विचार-अन्धता केवल सामन्त वादी संस्कृति की समस्या नहीं थी, औद्यौगिकयुगके महान चिंतक कवि प्रसाद भी तुलसी के ही स्वर में स्वर मिला कर कहते हैं—

'श्रममय कोलाहल पीड़नमय विकल प्रवर्तन महायंत्र का।
क्षणभर भी विश्राम नहीं है प्राणदास है क्रियातंत्र का ।।

यहाँ सतत संघर्ष विफलता, कोलाहल का यहाँ राज है।
अंधकार में दौड़ लग रही मतवाला सारा समाज है ।।'

चन्द्रविजय के संबंध में प्रसिद्ध अंग्रेज इतिहासकार टायनबी ने कहा—"मैं इस चन्द्रयात्रा को सफल बनाने वाले विज्ञान और तकनीक से कभी प्रभावित नहीं हुआ हूं। अपनी बुद्धि से प्राप्त होने वाली, इस भयावह शक्ति की दृष्टि से मनुष्य का नैतिक आचरण सदैव अपर्याप्त रहा है।" ७३ वर्षीय प्रसिद्ध अमेरिकी समाजशास्त्री और दार्शनिक ममफोर्ड का मत है—"हमारे युग का प्रथम महत्वपूर्ण कार्य अन्तरिक्ष विजय नहीं, बल्कि शक्ति के नैतिक और अमानवीय विस्तार की बेदी पर जीवन मूल्यों को बलिदान करने वाले, संस्थाबद्ध अविवेक पर विजय पाना है।"

ध्यान देने की बात है कि ममफोर्ड जिस 'संस्थाबद्ध अविवेक' का उल्लेख कर रहे हैं सामान्य रूप से उसी की ओर तुलसीदास जी संकेत कर चुके हैं—" तुलसी कबन्ध कैसे धाइबो विचार अंध . . ." औद्योगिक युग को भी पीछे छोड़कर अमरीकी समाज टेक्नीट्रानिक युग में प्रविष्ट हो रहा है, किन्तु आस्था के अभाव ने उसे अशान्ति ही दी है। संयुक्त राज्य अमरीका में औसतन हर ३५ मिनट के बाद एक मनुष्य आत्महत्या करता है और २ घंटे बाद एक व्यक्ति पागल हो जाता है। फलस्वरूप पाश्चात्य विचारक यह बात अनुभव करने लगे हैं कि उनके समाज की इस बहिर्मुखी प्रगति में एकांगीपन है। विश्वप्रसिद्ध मनोरोग-चिकित्सक डॉ० कार्लजुंग ने Modern Man in Search of Soul ग्रन्थ में मानव जीवन में आध्यात्मिकता के महत्व का विस्तार से उल्लेख किया है। हेनरी मिलिक ने Return to Religion और एलेक्सी कैरेल ने Man the Unknown में ईश्वरीय सत्ता की आस्था में मानव कल्याण बतलाया है।

तुलसी का साहित्य कभी पुराना पड़ने वाला नहीं है। वह कभी 'आउट आफ डेट' नहीं होगा। वह मानव चेतना को निरंतर ऊर्ध्वमुखी करने का प्रेरणास्रोत है। उसमें जीवन के प्रति, पारलौकिक सत्ता के प्रति, नैतिकता और सत्कर्मों की अंतिम विजय के प्रति अगाध आस्था है। उनकी कविता का उत्स आनंद है—'भयो हृदय आनंद उछाहू। उमगेउ अन्तर प्रेम प्रबाहू।', और 'सुरसरि' की भाँति वह सब के हित के लिए प्रवाहित हुई। आज विश्व के वैज्ञानिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्री मानव जीवन में जिस आस्था का महत्व स्वीकार करने लगे हैं तुलसी ने उसके महत्व को शताब्दियों पूर्व घोषित कर दिया था।

With best Compliments from :
BRIJMOHAN KALURAM
Bankers, Merchants & Commission Agents
46, 2nd Bhoiwada, Bhuleshwar,
Bombay-2.
Gram : KEYRING Tel Office : **334180.**
Market : **313053.**
Resi. : **294171.**

कल्याणकारी सत्पथ

— ओमप्रकाश मिश्र, एम. ए. एल. टी.

'सीय राममय सब जग जानी ।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ।।

वस्तुतः आज का मानव-जीवन त्रितापग्रस्त है। औषधालय एवं चिकित्सालय बढ़ते चले जा रहे हैं परंतु उससे कई गुनी मात्रा में रोग बढ़ते जा रहे हैं। जैसा कि संत तुलसी दास जी ने भी कहा है –"भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं हरिजान।" जिस प्रकार एक मकान की छत में छेद है, जिससे वर्षाकाल में निरंतर पानी टपकता रहता है और हम लोग उस पानी को उलीचने में लगे रहते हैं। जितना पानी उलीच कर फेंकते हैं उससे अधिक ऊपर से फिर आ जाता है, जिसका परिणाम यह होता है कि परेशानी बढ़ती रहती है और कमरे का कीचड़ कभी समाप्त नहीं होता। यदि हम उस छेद को बन्द कर दें तो सदा के लिये हमारी परेशानी दूर हो जाय। यही दशा हमारी है। हम लोगों की यह धारणा बनी है कि भोजन से शक्ति प्राप्त होती है, औषधि से रोग चले जाते हैं, पुस्तकों से ज्ञान प्राप्त होता है और धन से सुख मिलता है। यह सब पानी उलीचने के समान है।

मैंने स्वयं बड़े-बड़े सन्त-महात्माओं का उपदेशामृत पान किया तथा संपर्क किया, परंतु किसी ने ऐसा सुगम मार्ग नहीं बताया जिससे हमारे रोग, शोक, चिन्ता आदि मिटते। सब यही कहते हैं कि भगवान का भजन करो। परंतु भजन करते करते जीवन बीतता जा रहा है। न रोग जा रहे हैं, न शोक मिट रहे हैं, न चिन्तायें जा रही हैं और न भ्रम दूर हों रहा है। जब मैंने पूछा कि ऐसा क्यों है, तो उन लोगों ने बतलाया कि पूर्व-जन्म के संस्कारों के अनुसार यह सब कुछ होता रहेगा, उसे कोई नहीं मिटा सकता। मैं निराश हुआ।

तीन वर्ष पूर्व परम पूज्य योगी जी के संपर्क में आया। मैंने बड़े ध्यान से उनका प्रवचन सुना परंतु मेरे गले नहीं उतरा। आदरणीय श्री धनी राम शास्त्री जी से कई दिनों तक लगातार योगी जी के विचारों पर वार्तालाप किया। श्री शास्त्री जीने मुझे भली भाँति सरल ढंग से समझाया। मैंने उसके बाद तुरन्त ही पंचसूत्री साधन-प्रणाली पर चलने का प्रयत्न करना प्रारंभ किया। आश्विन में नवरात्रि का व्रत भी प्रथम बार ८ दिन तक फलाहार पर प्रारंभ कर दिया।

मैं बचपन से ही सर्दी-जुकाम का मरीज रहा हूँ। साथ ही वायु-विकार (Gastric trouble) से भी पीड़ित रहा। परंतु जब से योगी जी के संपर्क में आकर उनके बतलाये हुये मार्ग पर चला तब से सर्दी-जुकाम तथा वायु-विकार लगभग समाप्त हो गया अब किसी प्रकार का कष्ट नहीं है।

मैं अभी पूर्णरूपेण साधना नहीं कर पा रहा हूँ, अभी कुछ अंशों में ही अपना पाया हूँ परंतु इतने से ही मुझे पर्याप्त लाभ है। यदि कोई पूर्णरूप से इस साधन-प्रणाली को अपना ले तो वास्तव में उसका जीवन सार्थक हो जाय और निश्चिन्त होकर जीवन-मुक्ति प्राप्त कर ले। वह मेरा विश्वास है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकश्चिद् दुःख-भाग् भवेत् ।।

—oo—

With best Compliments from :

Excel Auto and General Industries

162, Nagdevi Street,
Bombay-3.

लंदन के एक साधक की डायरी से

[मानस साधना मंडलकी विचारधारा, जो परमपूज्य योगीजी प्रतिपादित करते हैं, उसकी वैज्ञानिकता, व्यवहारिकता और निश्चित सफलता का विवरण लंदन स्थिति भारतीय दंपत्ति श्री तथा श्रीमती जे. के. ठाकुर, ३–लाकेट रोड, वेल्डस्टोन, हैरो, मिडिलसेक्स (लंदन) से पत्र-व्यवहारके आधार पर की गयी साधनाका विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। चूंकि श्री ठाकुरके पत्रके उत्तरमें परमपूज्य 'योगीजी', डा० चन्द्र दीप सिंह एवं श्री कुबेर प्रसाद गुप्त द्वारा भेजे सभी पत्रोंकी प्रतिलिपियाँ यहाँ प्राप्य नहीं हैं, इस-लिए हम केवल श्री ठाकुर द्वारा भेजे गये पत्रोंके साधना संबंधी अंश ही यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। ये अंश भी साधना और उसकी प्रगति पर यथेष्ट प्रकाश डालते हैं।

–संपादक]

(१)

लंदन
२७ नवंबर, १९६६

. . .मैं महान कष्टमें फँस गया हूँ। मेरी स्त्री (आयु २८ वर्ष) साँस रोगसे अत्यन्त पीड़ित है। भारत वर्षमें भी उसे दमाकी शिकायत थी। सोचा था कि लंदनमें अधिक मेडिकल सुविधा (फेसीलिटीज़) से आराम (रिलीफ़) हो सकेगा; किन्तु यह व्यर्थ रहा। सारे मेडिकल उपचार बेकार साबित हो रहे हैं। . . .यहाँ पर हमारा कोई भी सहायक या रिश्तेदार नहीं है। एक छोटी बच्ची गोदमें है, इस प्रकार इस आपत्तिसे जीवन अत्यन्त ही दुष्कर एवं बोझ बन गया है। डाक्टर लोग जो भी दवा देते हैं, उनसे क्षणिक लाभ होता है और हमेशा लेटे हुये भी खाँसी व साँसकी बेचैनीसे महान कष्ट रहता है। हमारे संकट को दूर करनेका जो भी उपचार आप उचित समझें लिखने की महती कृपा करें।

(२)

लंदन
२५ दिसंबर, १९६६

मुझे विश्वास था कि यदि मेरा पत्र ठीक पते पर पहुँच गया तो आप अवश्य ही कृपा करेंगे। यह बड़ी अर्थपूर्ण बात है कि मेरी स्त्री एक दिन जब निराश होकर बाहरसे लौट रही थी और प्रभुसे आखिरी बार प्रार्थना करने जा रही थी कि अब वह अपना जीवन समाप्त कर देगी, तब उसने भगवान के दर्शनार्थ ज्योंही (पूजाका) कमरा खोला तो उसमें भगवान तो बिराजमान थे ही, साथ ही आपका भेजा हुआ कृपापूर्ण लिफाफा भी था, जो सुबहकी डाकसे आया था। आशय स्पष्ट है, भगवाने ही साक्षात उसे आपके द्वारा रोग-मुक्ति का वरदान भेजा है। पत्र को पढ़कर ही उसके चेहरे पर अशाकी झलक आ गयी थी और जब मैं घर लौटा तो मुझे इस चमत्कार को समझने में अधिक देर नहीं लगी।

यहाँ की परिस्थिति बिल्कुल भिन्न है और हमें बिल्कुल कृत्रिम वातावरण में रहना पड़ रहना है। हरी सब्जियों में केवल पालक ही उपलब्ध होती है और वह भी अक्सर रेफ्रिजिरेटरमें डीप फ्रीजिंगमें रखी हुई बाजारमें बिकती हैं। इसी प्रकार मटर व सेम (हरी सब्जियाँ) भी बिकती हैं। खरीद कर खाने पर घरमें शीघ्र प्रयोग करना जरूरी हो जाता है। सलादके लिये लैटूस, फलों में सेब, आरेंज (संतरा) केला, पीअर्स, पाइन एपिल (अनानास) एवं खरबूजा ये प्रायः हमेशा ही मिलते हैं। आजकल भी यही फल चल रहे हैं। ग्रीष्म-कालमें पीचेज़, अनार एवं अन्य बेरीज इत्यादि भी मिलती हैं। इन फलों में हम लोग विशेषकर सेव और अंगूर ही लेते हैं। मैं अपने लिये आरेंज भी लेता हूँ, गाजर, टमाटर, बीट रूट (उबलाहुआ) भी, हमेशा प्राप्त रहता है। आलू, फूलगोभी एवं बन्दगोभी यही तीन सब्जियाँ हमें मिल पाती हैं, और हम लोग इन्हींका प्रयोग करते हैं व भिन्नता (चेन्ज) के लिए अपनी भारतीय दालें, मूँग, उर्द, अरहर, मसूर बाजारके इंडियन ग्रोसरसे ले आते हैं, ठंड बेहद होनेके कारण प्रोटीनकी जो शारीरिक आवश्यकता होती है, उसकी पूर्तिके लिए डाक्टरकी रायके अनुसार मुझे (-(लज्जाके साथ) अंडे भी लेनेके लिए बाध्य होना पड़ता है। चीज़ भी लेते हैं, दूध व दही केवल आधा पिंट ले पाते हैं। अतः आप कृपा कर यह समस्या सुलझा दें कि 'अंडे' यदि अवांछनीय भोजन है तो उन्हें हम किस प्रकार न लेकर इस ठंड में, जो कठोरतम एवं भीषण है, स्वस्थ

रह सकते हैं? मुझे स्वयं इतनी सावधानी बरतने पर भी अक्सर ठंड लग जाती है। लोग तो यहाँतक कहते हैं कि रात को ब्रांडी लेना आवश्यक है, पर मैं अभी इतना अधिक मार्गच्युत होना जरूरी नहीं समझता हूँ; क्योंकि केसर भी यहाँ (स्पेनसे) उपलब्ध हो जाती है और जब ठंडकी लहरें प्रखरतम होती हैं, हम लोग केसर मुँहमें रखकर चबाते रहते हैं। बन्द कमरोंमें स्वच्छ हवा न मिलनेसे कठिनाई और भी बढ़ जाती है। बाहर धूपका नाम नहीं होता, उल्टा बारिश होती रहती है या बादल छाये रहते हैं। प्रायः समय मिलता ही नहीं जो रामायण-पाठकी बात संभव हो। नहानेका समय भी महीनेमें यदा-कदा कठिनाईसे प्राप्त होता है। हमारे जीवनकी रूपरेखा इस प्रकार समझिये :—

(अ) प्रातः ६ बजे उठते ही भाग कर रसोईघर (किचन) में छोटी बच्चीके लिये दूध बनाता हूँ और उसे बोलतलमें भरकर सोती बच्चीके मुँह में लगाकर फिर अपने लिये सोंठ डालकर चाय बनाता हूँ, जिसे स्त्री भी पीती हैं। यह सर्वप्रथम पेय होता है क्योंकि बगैर इसके ठंडके जोरसे हाथ-पैर भी नहीं हिल पाते व शौच-क्रिया ठीकसे नहीं होती। यदि समय हुआ तो स्त्रीको दूध व अंडा एवं शहद ये तीनों चीजें मिलाकर दे देता हूँ और उसके बाद ही शीघ्र कपड़े पहन कर तैयार होकर बच्ची को बेबी माइन्डर (आया) के पास छोड़नेके लिये बच्चीके कपड़े बदलकर तैयार कर पैराम्बुलेटर (गाड़ी) में डालकर ले जाता हूँ और छोड़ आता हूँ तथा स्वयं भी काम पर भागता हूँ। प्रातः ८ बजे काम पर पहुँचना पड़ता है। यदि स्वास्थ्य ठीक रहा तो स्त्री भी काम पर उसी समय यानी प्रातः ७ बजे, जबकि बाहर अंधेरा ही होता है, चली जाती हैं।

(ब) काम पर लंचकी छुट्टी में साथमें घरसे रोटियाँ व आलू इत्यादि की सब्जी, जो ले जाते हैं, उसे व चीज़ ये ही चीजें खा लेते हैं।

(स) शामको ५ बजे स्त्री घर लौटती हैं (यदि काम पर गयीं तो) मैं ६ बजे लौटता हूँ। आते ही रोटियाँ और सब्जियाँ या दाल चावल जो भी हो मैं बनाता हूँ। फिर शीघ्र ही छोटी बच्ची को ले आता हूँ। उसे भी फीड कराता हूँ और भोजन समाप्त करते-करते घड़ी ९ बज चुकती है। अतः फौरन ही दूधमें २ अंडे व शहद स्त्रीको देता हूँ व स्वयं भी इसी प्रकार दूध व अंडे लेकर हम सो जाते हैं।

मैं आपके परामर्शानुसार मुनक्के ले आया हूँ। उनके रसका सेवन आरंभ आजसे कर रहे हैं व पालक, गाजर, चुकन्दर, टमाटर भी आध घंटे उबालकर फिर खानेका नियम बना रहे हैं। परंतु यदि घर पर ही रहा जाय तभी यह संभव होगा। यदि बाहर रहा जाय तो दोपहरको क्या खाना खायें यह समस्या होगी। कृपया सूचित करें। एक शंका यह भी है कि पालक, गाजर, टमाटर उबालने से उनके विटामिन्स तो नष्ट नहीं हो जावेंगे? या आपका तात्पर्य कच्ची सब्जियोंसे है यानी टमाटर, गाजर बगैर उबाले खाये जांय? चुकन्दर यहाँ उबला हुआ ही मिलता है। उसे दुबारा उबालना संभवतः निरर्थक होगा।

एक और बात आपके सामने रखना जरूरी है। गृहस्थ आश्रममें होनेसे एक छोटी बच्ची तो है ही। उसके बाद एक दूसरा जीव भी स्त्रीके गर्भमें आजकल है। प्रसव (डिलीवरी) संभवतः जूनमें होगी। डाक्टर स्पेशलिस्ट, जिसने पहली बच्चीका सिज़ेरियन (गंभीर) आपरेशन किया था, वही अब भी पूर्ण देखभाल कर रही है। पर दमा उसके हाथके बाहरकी चीज है। इस बार भी वह सीज़ेरियन आपरेशन करेगी, ऐसी राय उसकी मालूम देती है। अतः इस गर्भ (प्रेगनेंसी) के दौरान में भोजन (डाइट) में कमी या उपवास क्या वांछनीय होंगे? हम उसे सूखे मेवे (बादाम, अखरोट), ही विशेष कर देते हैं, जो वह दिनमें खाती रहती हैं और अंगूर व सेव भी खाती हैं।

(३)

लंदन

१२ जनवरी, १९६७

आपसे करबद्ध प्रार्थना यही है कि ऐसी ही कृपादृष्टि सदैव बनाये रखें। मेरी परिस्थिति आपके जितने भी साधक

With best Compliments from :
UNIVERSAL STATIONERY MART
Podar Chambers,
For Bombay-1.
Tel. : **311226.**

हैं, उन सबसे बढ़कर कष्टपूर्ण इस अर्थमें है कि संकटमें तो सभी रहे और सभी को आपके कृपापूर्ण मार्गदर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ, पर मुझे संकटके साथ विदेश-स्थिति भी है, जहाँ मैं आपके दर्शन हाल-फिलहाल नहीं प्राप्त कर सकता। यह विकट समस्या बन गयी है। केवल पत्रोंका ही आधार है।

आपने जितनी भी बातें लिखीं हैं, उनका अध्ययन मनन एवं आचरण इस प्रकार आरंभ कर दिया है :–

१. मेरी स्त्री अब सारे दिन घर पर ही रहती हैं, क्योंकि 'सुन्दरकांड' का पाठ आरंभ कर दिया है। प्रातः उठते ही आज चायमें मुनक्के व सोंठ डालकर पेय बनाकर एक गिलास उसीका सेवन हम दोनोंने किया। तदुपरान्त शौच-क्रियासे निवृत्त होकर स्त्रीने, जो मुनक्के रातमें भिगो दिये जाते हैं, उनका रस पिया व मुनक्के खाये।

२. दोपहरको २–३ बजे (अपराह्न) चुकन्दर उबला हुआ, सेव व टमाटरको उबाल कर उसका जूस (सूप) लिया।

३. सायंकाल ५ बजे गर्म पानीमें तौलिया भिगोकर उससे बदन पोंछकर फिर 'सुन्दरकांड' का पाठ किया।

४. अब रात्रिमें रोटियाँ व सब्जी बनाकर उसीका सेवन करेंगी और सोनेसे पूर्व १ गिलास दूधमें अंडा घोल कर पीती हैं व डेढ़ चम्मच काडलिवर आयल लेती हैं, प्रेगनेंसीमें मेडिकल सलाह (एडवाइस) के अनुसार। कृपा कर इस विधानके बारेमें अपनी स्वीकृति भेजिये। आपके पत्रोंमें जो भी आदेश हैं उनके अनुसार कुछ कुछ स्पष्टीकरण (क्लेरिफिकेशन) आवश्यक है। यथा :–

(अ) आपने अंगूर व टामटरकी मना लिखी है। क्या टमाटर उबालकर उसका जूस भी न लिया जावे? मैं आपके आदेशसे यही समझा हूँ कि शायद कच्चे टमाटर निषिद्ध हैं, क्योंकि सर्वप्रथम पत्रमें आपने चुकन्दर, टमाटर, पालक व गाजरको उबालकर खानेका आदेश दिया था।

(ब) जैसा कि पहिले लिखा था, यहाँ सब्जियाँ जो हम खाते हैं, बहुत ही सीमित किस्मकी होती हैं। चूँकि आपने दालें भी वर्जित कर दी हैं, कठिनाई यह है कि रात्रिके भोजन में रोटियोंके साथ सब्जी केवल एक ही रह जाती है और वह है बन्द गोभी या शलजम (टरनिप)। परिवर्तनके लिये सब्जियोंमें आलू शामिल करना इसलिये अनिवार्य-सा मालूम देता है। क्या आप इसे ठीक समझेंगे? यदि नहीं तो केवल रोटियोंके साथ बन्द गोभी, शलजम फूल गोभी यही तीन सब्जियाँ रह जाती हैं।

(स) क्या काड लिवर आयलकी अनुमति आप देंगे, जिसे वह डाक्टरोंकी सलाह पर गर्भावस्थामें लेती हैं?

इस प्रकार आपकी आज्ञा पालनसे साधना आरंभ किये हुए यह दूसरा सप्ताह चल रहा है, और उससे लाभ भी हल्का-सा दिखायी देता है, तथा वह इस प्रकार है कि साधनासे पूर्व खाना मुझे ही बनाना पड़ता था, परंतु अब खाना वह स्वयं धीरे-धीरे बना लेती हैं। पहले दिन सुन्दरकांडके पाठके लिए केवल कपड़े बदलना ही कठिनाई से संभव हुआ था। सांस फूल रही थी और एक चौपाई पढ़ना भी दूभर था। परंतु अब उनमें इतनी क्षमता आ गयी है कि अपने आप पाठसे पूर्व गर्म पानीमें तौलिया भिगोकर बदन पोंछ लेती हैं व पाठ बगैर सांस व खांसीके पूरा हो जाता है। इस प्रकार की प्रगति से उनके चेहरे पर आशाकी झलक स्पष्ट है। नौकरी पर न जानेसे आर्थिक क्षति तो अवश्य हुई है पर स्वास्थ्य लाभका विश्वास उस क्षति से कहीं अधिक वांछनीय व आनंददायक है।

With best Compliments from :

ORIENTAL CARRIERS PVT. LTD.

K. Lakhraj Building, 2nd Floor,
20, Carnac Road, Bombay-3.
Running Daily Container Service
Between Bombay-Delhi.

Sister Concerns :

YOGESH ROADEIEES

39, Dontad Street,, Bombay-9.
Tel : **325379.**

(४)

लंदन

२९ जनवरी, ६७

पत्र विस्तृत न हो और आपका बहुमूल्य समय कम-से कम बरबाद करूं, इस आशयसे संक्षेपमें निवेदन करता हूँ।

१. मेरी पत्नीका स्वास्थ्य आशातीत प्रगति कर रहा है। दमा बिल्कुल गायब है। केवल खांसी ही उठती है। उसके चेहरे पर कांति आ गयी है और वह घरका सारा काम मेरे लिये खाना पकाना, बच्चीकी देखभाल व अपने सुन्दरकांड का पाठ नित्य स्नान कर सुचारु रूपसे चला रही है। नैतिक बल (मोरेल) बहुत बड़ गया है और अब ऐसा लगता है कि तूफान व झंझावातसे हमारी नाव बच गयी है। वह किनारे पर–यदि आपकी कृपा इसी प्रकार रही तो अवश्य लग जावेगी। इसका एक तथ्यपूर्ण आधार (फैक्चुअल बेसिस) यह है कि इसी २६ जनवरी को यहांके बड़े अस्पतालमें लेडी डाक्टर के निश्चय (एप्वाइंट-मेंट) के अनुसार वह गयीं थीं जहां Gynaecologist ने तो जांच की ही पर साथ-साथ चूंकि दमा की बीमारी होनेसे सीनेके रोग की विशेषज्ञ (चेस्ट स्पेशलिस्ट) लेडी डाक्टर की भी राय ली जाती है। यह सारी कार्यवाही पिछले कुछ महीनों से चल रही थी और चूंकि दमामें कोई सुधार नहीं हो रहा था, इसलिये चेस्ट स्पेशलिस्टने उसे २६ जनवरी को अस्पतालमें भरती करनेका निश्चय किया था। अतः उसी प्रकार उसे दाखिल करने की वहाँ तैयारी थी । पर प्रभुकृपा, गुरु-कृपा (आपकी कृपा) से चेस्ट स्पेशलिस्ट हैरान हो गयी, उसे आश्चर्य हुआ कि दमा अब है ही नहीं और मरीज बिल्कुल स्वस्थ थी। यह सुधार कैसे हुआ ? इस प्रश्नके उत्तरमें मेरी पत्नीने उन्हें बतलाया कि उसने अंग्रेजी दवाइयां खाना बिल्कुल छोड़ दिया है व संतुलित आहार करती तथा कुछ ध्यान (मेडि-टेशन) इत्यादि की साधना करने से इस प्रकार २६ जन-वरी को बजाय अस्पतालमें भरती होनेके मेरी पत्नी स्वतः प्रसन्न मुद्रामें घर वापिस आ गयीं। यहां यह भी बताना आवश्यक है कि हर बार मुझे उनके साथ अस्पताल जाना होता था क्योंकि वे बगैर सहारेके चल-फिर नहीं पाती थीं, पर इस बार वे अपने आप ही गयीं और आयीं। मुझे साथ जाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। मैंने आपके पत्रोंको अपने डाक्टरको भी दिखलाया था। यहां की स्वास्थ्य व्यवस्थाके अनुसार हमें एक स्थानीय (लोकल) डाक्टर चुनना पड़ता है और फिर उसके द्वारा आगे स्पेशलिस्टके पास जाना पड़ता है। मेरी पत्नीकी लोकल डाक्टर एक अंग्रेज महिला हैं, जो भारतवर्षमें रह चुकी हैं, जिसे भारतीय संस्कृतिके महत्वकी मान्यता है। उसने जब आपके पत्रों को पढ़ा तब उसे आश्चर्य नहीं हुआ बल्कि उसने भी अपनी राय दी व इसी दिशामें उत्साहित किया। अब हमारे इस प्रयोगके प्रति उसकी जिज्ञासा व खुशी बढ़ रही है। अब मेरी पत्नी का कार्यक्रम इस प्रकार चल रहा है :

१. प्रातः २ औंस मुनक्के (रातके भींगे हुए) का रस लेती हैं।

२. मध्याह्नके लगभग २ बजे उबला, टमाटर, व उबले सेव आदि फल व हरी पत्तेदार सब्जियां जैसे लेट्स इत्यादि कुछ कच्ची खा लेती हैं। यह उल्लेखनीय है कि इस प्रका-रके भोजन की मात्रा भी, उसकी बहुत ही कम है। उबले टमाटरका जूस भी रोज नहीं ले पातीं, सिर्फ १ सेब व २-४ टुकड़े उबले चुकन्दर ही पर्याप्त होते हैं। मुनक्के भी नहीं खा पातीं केवल उसका रस ही पी लेती हैं।

३. सायं रोटी बहुत कम घी चुपड़कर एक ही सब्जीके साथ ले रही हैं । हमें प्रयत्न करनेपर ये सब्जियां मिल जाती हैं (बैंगन, काशीफल (पम्पकिन), ग्वार की फली, शकरकन्द, बन्दगोभी, शलजम व टमाटर। आलू तो आम-तौर पर प्राप्त है ही। कृपया यदि कोई सब्जी इस लिस्ट में अवांछनीय हो तो इंगित करने का कष्ट कीजियेगा।

४. एक गिलास दूध व काडलिवर आयल सोने के पूर्व ।

आपने संवाद की आवश्यकता की ओर इशारा किया वह तो मेरे मन की ही बात आपके द्वारा व्यक्त हो रही है। मुझे अब यह विश्वास हो रहा है कि आपकी कृपासे शारीरिक तापसे तो हम लोग मुक्त हो रहे हैं, पर अब मानसिकताप व्यथासे किस प्रकार छुटकारा मिले ?

आय होते ही दसांश (ऐट सोर्स) निकालना आरंभ कर दिया है। पर्याप्त धनराशि होते ही यह संभावना हो

सकती है कि मैं आप से प्रार्थना करूं कि आप लंदन को भी अपने कार्यक्रम में स्थान दें व यहाँ पधार कर संवाद का वरदान दें। अपनी हीन स्थिति को देखकर अभी कुछ समय इसमें लग जावेगा, यह एक अड़चन दिखाई देती है। आपके लंदन ठहरने की व्यवस्था तो बिल्कुल ठीक हो जावेगी, यह विश्वास है। मकान की समस्या, जो दिन-रात हमारा सारा समय व मानसिक शांति खाये जा रही थी, अब सुलझती प्रतीत होती है।

(५)

लन्दन
२ मार्च, १९६७

निवेदन इस प्रकार है :

१. पत्नीकी साधना उसी तरह चल रही है। प्रातः मुनक्कों का रस, दोपहर १२ बजे के बाद सेब, उबली गाजर का साग व अन्य फल जो खट्टा न हो, खाती हैं। संतरा अभी नहीं लेती हैं। हां, आम यहां (अफ्रीका) से मिले जाते हैं। यदा-कदा पक्का मीठा आम ले लेते हैं व साथ भुनी शकरकन्दी रात्रि के रोटी व सब्जी जो भी उपलब्ध होती है जैसे—गोभी, बन्द गोभी, पालक, अरवी (घुइयां) व सोते समय एक पाव दूध (काड लीवर आयल बन्द कर दिया है।) दिन में जब भी सुविधा होती है, छोटी बच्ची से निपट कर स्नान करती हैं और तभी "सुन्दरकांड" का पाठ पूरा करती हैं।

इस दिनचर्या से सांस का दौरा दिन में गायब हो गया है। सारे दिन बड़ी स्फूर्ति से काम में जुटी रहती हैं। अब वे बिल्कुल चंगी मालूम देती हैं। परन्तु रात्रि में रोटी खाने के बाद सांस हल्की चलने लगती है। खांसी, मामूली अभी शेष है। प्रसव जून के अन्त में होने की आशा की जाती है। अस्पताल से आयरन टेबलेट्स खाने के लिये दी गयी है। परन्तु आपसे पूछे बगैर उसका सेवन स्थगित है।

दमा व खांसी से आंशिक छुटकारा आपकी महती कृपा का ही फल है। प्रार्थना है कि पूर्णरूपेण छुटकारा कैसे हो इस दिशा में अगले पत्र में लिखने की कृपा कीजियेगा।

: ६ :

लंन्दन
२४ मार्च, ६७

पत्नी के स्वास्थ्य में उत्तरोत्तर प्रगति हो रही है। दमा अब बिल्कुल नहीं के बराबर ही है। सांस, जो अक्सर शाम को उठने लगती थी, अब ठीक है रात को भी बिल्कुल स्वस्थ अनुभव करती हैं। सांस, जो अक्सर शाम को उठने लगती थी, अब ठीक है। रात को भी बिल्कुल स्वस्थ अनुभव करती हैं। मकान बदलने के सिलसिले में भाग-दौड़ करने में भी वह मेरी बराबर मदद कर रही हैं और मुझे यह देखकर आश्चर्य ही हुआ कि स्टेशनों पर जीना चढ़ते हुए भी कोई कष्ट नहीं हुआ और वह भी गोद में बच्ची को लेकर। पहले तो अकेले ही जीना चढ़ना दुर्लभ था।

दैवी कृपा-प्राप्ति से दुर्लभ सुलभ हो जाता है और सन्त कृपासे दैवी कृपा प्राप्त करना कठिन नहीं रह जाता।

: ७ :

लन्दन
२१ जून, ६७

आपके आशीर्वाद से व प्रभु-कृपा से हमारे कुटुम्ब में यहां एक आत्मा और सम्मिलित हो गयी है। कन्या का जन्म २ जून, १९६७ गुरुवार को प्रातः १० बजे अस्पताल में ही यहां की बड़ी लेडी डाक्टरने पेट के आपरेशन द्वारा ही किया। चूंकि पहली बार प्रसव दर्द प्रारम्भ होने के बाद सिजेरियन आपरेशन की नौबत आ ही गयी थी और बाद में Abdomend Destension की उलझन पड़ गयी थी, जो कि अक्सर प्राणघातक होती है, इसलिये इस बार उसके इतिहास को देखते हुए, पहली बार जो एफ. आर. सी. एस. डाक्टरनी इन्चार्ज थी, उसकी राय थी कि इस बार प्रसव दर्द आरम्भ ही न होने दिया जाय और उसने विशेष देखभाल के लिए मेरी पत्नी को एकाएक अस्पताल में दाखिल कर आपरेशन कर दिया। पत्नी आपरेशन के पूर्व पहली बार की अपेक्षा कहीं अधिक स्वथ थीं, इसलिये और साथ ही प्रभु-कृपा से ७२ घन्टे में ही वह कमरे में चलने फिरने लगीं और रिकवरी बहुत ही आश्चर्यजनक रही। १० दिन में ही उन्हें घर भेज दिया गया और इस समय कुछ कमजोरी व ठंड के अलावा सभी कुछ ठीक है।

बालकों के चरित्र-निर्माण तथा सर्वांगीण विकास के लिए
रंगीन, आकर्षक एंव प्रेरणाप्रद हिन्दी मासिक
'बाल-जगत'
वार्षिक मूल्य : सात रुपये डी-१२/४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ-४

राम-नाम की महत्ता

—कु० उमेश माथुर

राम नाम समं तत्त्व नास्ति वेदान्त गोचरम्

इस संसार में जहाँ चारों ओर वासनाओं की अग्नि प्रज्वलित हो रही है दैहिक दैविक, भौतिक तीनों प्रकार के तापों से तप्त आकुल-व्याकुल प्राणी शीलता पाने को नाना प्रकार के धर्मों, साधनों में भटक रहा है, किन्तु उसका ताप मिट नहीं पा रहा है, वहाँ भक्त-प्रवर तुलसी दासजी का विश्वास है कि "राम नाम जपे जाय जिय की जरनि।"

राम नाम केवल जिय की जरनि ही नहीं मिटाता अपितु अज्ञान जन्य अन्धकार में भटकते हुए प्राणी को ठोकरें खाने से बचाने वाला भी, राम नाम ही है। राम नाम ही ऐसा दीपक है जिसके आलोक से प्राणी का अन्तर्जगत और बाह्य जगत दोनों ही आलोकित हो सकते हैं।

"राम नाम मणि दीप घर जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बीहिरो जो चाहिए उजियार।।"

इस कलि काल में जबकि अन्य साधन कठिन हो उठे हैं राम नाम जप ही एक मात्र सरल साधन है जिससे अपने प्रभु को प्रसन्न किया जा सकता है। महाकवि तुलसी भुजा उठा कर दृढ़ता पूर्वक कहते हैं कि

'राम नाम रावरोई हित मेरे।
स्वारथ परमारथ सथिन्ह सो भुज उठाइ कहौं टेरे।।
फिर्‌यौ ललात बिन नाम उदर लागि दुखउ दुखित मोहि हेरे।
नाम प्रसाद लहत रसाल फल अब हौ बबुर बेहेरे।।
साधत साधु लोक परलोकहि मुनि गुनि जतन घनेरे।
तुलसी के अवलम्ब नाम को एक गांठि कइ फेरे।।

सन्त तुलसी राम नाम की महिमा बताते हुए कहते हैं कि एक समय था जब मेरी करुण अवस्था को देख कर दुःख को भी दुःख होता था। आज राम नाम की कृपा से ही सब लोग मेरा आदर करते हैं। मेरे दुःख दूर हो गए है। वे कहते है कि सन्त जन तो शास्त्रों के श्रवण मनन से अपना परलोक सुधारते हैं पर तुलसी का तो राम नाम ही एक सहारा है। साधन अनेक हों पर सब का लक्ष्य एक राम नाम ही है

इतना ही नहीं तुलसी नाम को राम से भी अधिक महत्व देते हुए कहते हैं—

"प्रिय राम नाम ते जाहि न रामो।
ताको भलों कठिन कलि कालहु आदि मध्य परनामो।।
सकुचत समुझि नाम महिमा मद लोभ मोह कामों।
राम नाम जप निरत सुजन पर करता छाँह घोर घामों।।
नाम प्रभाउ सही जो कहैकोउ सिला सरोरूह जामो।
जो सुनि सुमिरि भाग भाजन भई सुकृत सील मोलभामो।।
रामते अधिक नाम करतब जोहे किये नगरगत नामों।
भये बजाई दाहिने जा जपि तुलसीदास से बामों।।

अर्थात् श्रीराम से भी अधिक जिसे राम नाम प्रिय है उसका इस कराल कलि काल में आदि मध्य और अन्त में भला होगा। क्योंकि कलियुग में मुक्ति का देनेवाला भगवन्नाम् स्मरण ही है। जो श्री रामनामाश्रित होगा वही सर्वथा सुखी रहेगा। राम के नाम के प्रभाव से असम्भव भी सम्भव हो जाता है। उलटा नाम जपकर ही बाल्मीकि ब्रह्म के समान हो गए। शवरी भिलनी भी नाम जप कर ही पुण्य की पात्रा बनी। उस नाम की महिमा का क्या कहना? तुलसी ने नाम को राम से भी अधिक महत्व दिया है।

"निर्गुन ते शहे भाँति बड़ नाम प्रभाव अपार।
कहऊँ नाम बड़ राम ते निज विचार अनुसार।।
राम एक तापस तिय तारी, नाम कोटि खलकुंभति सुधारी।
सबरी गीध सुसेवकनि, सुगति दीन रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल, वेद विदित गुन गान।

कितना है राभ के नाम का महत्व? राम ने तो एक अहिल्या का उद्धार किया शवरी 'गीध' आदि भक्तों को ही सुगति दी परन्तु नाम की शक्ति को देखिये जिसने एक बार भूले से भी नाम ले लिया उसी का उद्धार हो गया।

सन्त कबीर भी राम नाम को ही सब का सार मानते है उनके शब्दों में——

"राम नाम संसार में सार है, रामका नाम है अमृत बानी।
राम के नाम ते कोटि पातक टरैं, राम कनाम विस्वासमाती।।"

इतना ही नहीं कबीर तो यहाँ तक कहते हैं--

"शून्य मेरे अजपा मरै, अनहद हूं मरि जाय।
नाम सनेही ना मरै, कह कबीर समुझाय।।"

सन्त प्रवर सूरदास का भी यही विचार है --

"अब तुम नाम गहौ मन नागर।
जाते काल अगिनि तै बाँचौ सदा रहौ सुख सागर।
मरि न सकै विघन नहीं ग्रासै, जम न चढ़ावै कागर।।
क्रिया कर्म करतहु निसि बासर भक्ति को पन्थ उजागर।
सोचि विचारि सकल श्रुति सम्मति हरि तैं और न आगर।।
सूरदास प्रभु इहि औसर भजि उतरि चलौ भवसागर।

सूर की दृष्टि में राम नाम की महिमा अद्‌भुत है–

"अद्‌भुत राम नाम को अंक।
धर्मं अंकुर के पावन द्वैदल, मुक्ति बधू ताटंक।।
मुनि-मन-हँस-पक्ष जुग जाके बल उड़ि ऊरध जात।
जनम मरन काटन को कर्तरि तीछन बहु विख्यात्।।
अन्धकार अज्ञान हरै को रवि ससि जुगल प्रकास।
..बासर निसि दोउ के प्रकासित महा कुमग अनयार।।
दुहूँ लोक सुख करन हरन दुःख, वेद पुराननि साखि।
भक्ति ज्ञान के पंथ सूर ये प्रेम निरन्तर माखि।।

अर्थात् श्रीराम नाम के दो अक्षर अद्‌भुत शक्ति मय हैं यह दोनों अक्षर धर्मरूपी अंकुर के पावन दल है; भक्ति बधू के कुण्डल है तथा मुनियों के मन रूपी हँस के पंख है जिनके बल से उड़कर वे परम धाम को जाते हैं। रामनाम अज्ञान-रूपी अन्धकार का हरण करने के लिये सूर्य चन्द्र के समान प्रकाश रूप है। यही नाम भक्ति और ज्ञान का मार्ग है। अतः हे सन्तों निरन्तर प्रेम से राम नाम का उच्चारण करो।

स्वयं भगवान शंकर ने अनेक बार राम नाम की महिमा गाई है वह कहते हैं --

राम नाम समं नास्ति वेदान्त गोचरम्।
यत्प्रसादात्परां सिद्धिं सम्प्राप्ता मुनयोऽमलाम्।।

अतः राम नाम का जप ही सब साधनों में श्रेष्ठ है। विशेष रूप से इस कलि काल में जब कि भौतिकतावाद का बोल बाला है। कलि काल रूपी दुःसाध्य रोग ने यम-नियम योगाभ्यास समाधि आदि को ग्रस लिया है यह पंगु हो गए हैं सिवा राम नाम के वैराग्य यज्ञ जप तप और दान कोई भी साधन साध्य नहीं रहा है।

नाम स्मरण से समस्त सांसारिक दुःख अपने आप मृतप्राय हो जाते हैं। राम नाम वह कल्पवृक्ष है जो धर्म अर्थ काम और मोक्ष चारों पदार्थों का दाता है। तुलसीदास जी वेद और पुराण की दुहाई देते हुए राम नाम के महत्व के विषय में कहते हैं --

"राम नाम काम तरू देत फल चार रे।
कहत पुरान वेद पण्डित पुरारि रे।।"
राम नाम प्रेम परमारथ को सार रे।
राम नाम तुलसी को जीवन आधार रे।।"

इसीलिये वह समस्त प्राणियों से पुकार पुकार कर कहते हैं--

'राम जपु राम जपु राम जपु बावरें।
घोर भव नीर निधि नाम निज नावरे।।'

अर्थात् हे प्राणी राम नाम का जाप कर। इस भयानक संसाररूपी समुद्र से पार जाने के लिये, जन्म मरण से छूटने के लिये एक राम नाम ही नौका है और यह ऐसी नौका है जो तेरी निजी है अपनी है। तुझे इस नौका को प्राप्त कर लेने पर फिर किसी के सन्मुख दीन बन कर याचना करने की आवश्यकता नहीं। स्वेच्छापूर्वक इस नाम रूपी नौका के द्वारा तू भव सागर को सहज ही पार कर सकता है।

राम नाम ऐसा साधन है जिसके द्वारा सभी साधन सध जाते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं

"एक ही साधन सब ऋद्धि सिद्धि सा धरे"

अतः इस कलि काल में साधक के लिये यही उचित है कि--

**"पेयं पेयं श्रवणपुटके रामनामाभिरामम्।
ध्येयं ध्येयं मनसि सततं तारके ब्रह्म स्वरूपं।।"**

शुभकामनाओं सहित

मेसर्स : खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई – ४

दूर भाष : ३५७४५६ दूर प्रेष्य : **"वेंकटेश्वर"**

मेरे अनुभव

–श्री वशिष्ठ नारायण, सुपरवाइजर कानूनगो, इलाहाबाद

अगस्त सन् १९६६ के पूर्व मैं एक विशालकाय व्यक्ति था। मेरी दिनचर्या थी, प्रातः स्नान के पश्चात् थोड़ी पूजा उसके बाद नास्ता (चाय, नमकीन आदि) पुनः दोपहर को भोजन (चावल, दाल, रोटी, सब्जी आदि) चार बजे फिर नाश्ता और शाम को ९–१० बजे तक भोजन जिसमें मुख्य थी मदिरा। पूजा से तात्पर्य था रामायण की दस-बीस चौपाइयों का पाठ, यद्यपि पढ़ता था रामायण किन्तु सोचता था सरकारी कार्यों के बारे में अथवा खाने और नाश्ता की अच्छाई के बारे में।

मुझे अपने स्वास्थ्य पर गर्व था जब कि चार-छः फर्लांग पैदल चलने में सांस फूल आती थी। आठ या दस मील साइकिल चलाने पर इतनी थकान का अनुभव करता था कि शाम को एक आदमी जब तक पैर खूब न दाबे तब तक नींद नहीं आती थी। लिखने का कार्य भी आधा लेट कर तकिया का सहारा लेकर करता था। अधिक ड्युटी न होने के कारण कुर्सी-मेज पर अधिक काम न करना पड़ता था और न तो उस पर आराम का ही अनुभव करता था। आधा लेट कर भी लिखने में आधा घंटा या अधिक से अधिक एक घंटा में थक जाता था और कुछ देर के लिये काम बन्द कर देता था। हाँ, लेट कर जासूसी उपन्यास पढ़ने की कोई सीमा नहीं थी। उपन्यास के पीछे सरकारी कार्य भी लेट हो सकता था यहाँ तक कि नहाने और भोजन का भी समय टल सकता था। लगभग साल भर से प्रातः सो कर उठने पर दोनों घुटनों में दर्द थोड़ी देर होता था किन्तु उस पर विशेष ध्यान नहीं जाता था क्योंकि वह कभी-कभी होता था और क्षणिक था। मस्तिष्क में सदैव चिन्ता बनी रहती थी कभी घर की और कभी सरकारी कार्यों में त्रुटियों की। थोड़ी सी बात आने पर मस्तिष्क उद्विग्न हो उठता था।

स्वास्थ्य या अन्य किसी दृष्टिकोण से तो नहीं, धार्मिक प्रवृत्ति के कारण लगभग १५ वर्षों से मंगल के दिन व्रत अवश्य रहता था। उस दिन मदिरा आदि का सेवन नहीं करता था किन्तु दोपहर और शाम को फलहार इतना कर लेता था कि पेट भर जाता था। फिर भी उस दिन चितवृत्ति आवश्यकता से अधिक शुद्ध रहती थी। अब तो मैं यह अनुभव करता हूँ कि मुझे साधना के द्वार तक पहुँचाने का बहुत कुछ श्रेय मंगल-व्रत का ही हैं।

अगस्त सन् १९६६ की शाम थी। मैं अपने साथियों के साथ बैठा तहसील में कुछ काम कर रहा था कि एक सज्जन (श्री छेदीलालजी) हमारे तहसीलदार साहब से यह कहने आये कि श्री योगीजी का प्रवचन होने जा रहा है आप चलें। कोतूहल वश हम लोग भी उधर देखने लगे किन्तु हमारे तससीलदार साहब ने यह कह कर क्षमा माँग ली कि बहुत आवश्यक कार्य कर रहे हैं। मेरे हृदय में कुछ उत्कण्ठा हुई क्योंकि रामायण के प्रवचन में रुचि रखता था किन्तु उस समय काम में ही लगा रहा।

दूसरे दिन कहीं जाते समय श्री छेदीलाल जी मिले। उनसे श्री योगीजी के प्रवचन के विषय में बात हुई उन्होंने बताया कि श्री योगीजी के प्रवचन और उनके बारे में श्री सोमेन्द्र भाई अधिक जानते हैं। वैसे मैं इतना ही जानता हूँ कि श्री योगीजी रामायण के द्वारा दुनियाँ के सभी रोग, दुःख समाप्त करने का दावा करते हैं। मेरे लिये यह एक नई बात थी क्योंकि मैंने बहुत प्रवचन सुने थे जिनमें भाव और अर्थ की ही उड़ान देखी थी। इससे प्रबल इच्छा हुई थी सोमेन्द्र भाई से मिलने की।

किन्तु धन्य है प्रभू की इच्छा, उसी दिन शाम को श्री सोमेन्द्र भाई अपने किसी निजी काम से मेरे पास स्वयं आये।

With best Compliments from :
KANHAYALAL KESHEW NAND
AND
UMA SHANKAR ASHOKA KUMAR
Cloth Merchant & Commission Agent,
428, Kalbadevi Road, Bombay-2.
Tel : **315831.**

उनकी बात सुनने के पश्चात मैंने शीघ्र ही बात छेड़ी श्री योगी जी के बारे में। फिर क्या था श्री सोमेन्द्र भाई ने आधा घण्टा तक श्री योगी जी के विचार उनकी सादगी तथा उनके अनुभव के बारे में मुझे बताया और छोटी-छोटी तीन पुस्तकें पढ़ने को दिया। किसी मुख्य ध्येय को न रखते हुये भी मैंने पुस्तकें रख लीं। संयोग से उस दिन मंगल था मैंने श्री सोमेन्द्र भाई के जाने के पश्चात ही पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। और सभी किताबें पूरी पढ़ गया। उनमें साधकों के अनुभव भी लिखे थे साधकों की अन्य बातों ने तो कम किन्तु एक बात ने मुझे बहुत प्रभावित किया कि पूजा के समय चित्त एकाग्र होना चाहिए।

इसी चित्त एकाग्रता को ही लेकर प्रबल इच्छा हुई कि एक-दो सप्ताह देखा जाय। फलत: दूसरे ही दिन से निम्न दिनचर्या बनाया :

(१) सुबह का नाश्ता बन्द।

(२) दोपहर में सब्जी उबाल कर खाना।

(३) चार बजे का नाश्ता बन्द।

(४) शाम को सब्जी रोटी भर पेट खाना।

इसमें इतनी कठिनाई उठानी पड़ी की कभी-कभी घबड़ाहट होती थी। किन्तु जब-जब घबड़ाहट हो और नियम बदलने की इच्छा हो उस छोटी सी किताब को पढ़ना प्रारम्भ कर देता था। उस किताब में पता नहीं ऐसी कौन सी शक्ति छिपी थी कि मैं अपार दृढ़ता का अनुभव करता था। इसी बीच पैर में दर्द, हाथ में दर्द, सर में दर्द होते गये और समाप्त होते गये। अब मुझे इस नियम में आनन्द आने लगा और कुछ दिनों के पश्चात् मैंने देखा कि मेरे अन्दर एक नई स्फूर्ति आ गई है जिसके बारे में मैं कभी सोच भी नहीं सकता था।

(१) चलने फिरने में बड़ा ही हल्कापन मालूम हुआ।

(२) साइकिल चलाने में एक विचित्र सा ओज प्रतीत हुआ।

(३) पद्मासन पर जहाँ थोड़ी देर भी नहीं बैठ पाता था अब काफी देर बैठने लगा।

(४) पूजा में भी आनन्द आने लगा।

(५) पढ़ने-लिखने में भी हल्कापन का अनुभव हुआ। कहाँ तक गिनाऊँ मैंने यह देखा कि "एकहि साधे सब सधे वाली कहावत यहाँ पूर्णतया चरितार्थ है।

दूसरी बार श्री सोमेन्द्र भाई से जब मिला तो उनसे एनिमा के बारे में चर्चा किया क्योंकि साधकों के अनुभव में पढ़ने पर कई जगह इसे आवश्यक लिखा था। और कई साधकों को श्री योगीजी ने अपने पत्रों में एनिमा की राय दी थी। श्री सोमेन्द्र भाई ने उसे समझाया और उसी दिन से "साधना-रहस्य" का मासिक ग्राहक भी बन गया।

इस प्रकार दोपहर में उबली सब्जी और शाम को सब्जी रोटी लेता रहा और एनिमा का प्रयोग भी प्रति दिन करने लगा। शाम का भिगोया हुआ मुनक्का सुबह लेने लगा जिसे श्री सोमेन्द्र भाई ने दूसरी बार आवश्यक बताया था। मुझे स्मरण भी नहीं है कि उन्हीं दिनों मुझे दोनों वक्त स्नान करने की आदत कैसे पड़ गई कि कोई भी मौसम हो दोनों वक्त स्नान आवश्यक है। न कभी जुकाम हुआ और न तो कभी कमजोरी का ही अनुभव किया जब कि एलेक्शन के दिनों में समय न मिलने के कारण कड़ाके जाड़े में १२ बजे रात में एक दो दिन स्नान करना पड़ा। और इसके पूर्व जुकाम का मरीज तो था ही कम से कम ऋतु परिवर्त्तन में तो १५ दिन तक जुकाम और बुखार तथा पीठ के दर्द से मैं परेशान रहूँगा ही यह मेरा दावा था। मदिरा तो उसी दिन से मुझे छोड़ कर ऐसा भागी की आज तक फिर मुड़कर भी नहीं देखा।

हाँ, इतना अवश्य हुआ कि मेरा भीमकाय शरीर दिन प्रति दिन कम होने लगा और छ: महीने में ही इतना क्षीणकाय हो गया कि मेरे निकटतम व्यक्ति भी पहली नजर में मुझे नहीं पहचान पाते थे। लोग मुझ से पूछते थे कि आप को

With best Compliments from :

SUBA TRADING COMPANY

89, Mahamedali Road,
Bombay-3.

With best Compliments from :

SPARES RIGHT WORKS

162 Nagdevi Street,
Bombay-3.

कौन सा रोग हो गया है। इसकी चिकित्सा किसी बड़े डाक्टर से कराइये। मैं उन्हें समझाता कि मुझे कोई बीमारी नहीं है किन्तु लोग उस पर विश्वास नहीं करते थे बल्कि यह समझते थे कि इन्हें कोई भयानक रोग है जिसे ये बताना नहीं चाहते हैं। मेरे अधिकारियों ने मुझे सलाह दिया कि छुट्टी ले कर अपना इलाज कराओ। मुझे उस दिन बड़ी हँसी आई जिस दिन मेरे एक निकटतम मित्र मेरे साथ बस पर बैठने पर हिचके किन्तु सभ्यता के नाते उन्हें बैठना पड़ा लेकिन जब तक बस पर बैठे रहे एक बार भी मेरी ओर मुँह कर के बात नहीं की। मैंने सोचा बाहरी दुनिया में जब मैं बुरी तरह बीमार था तो लोग मुझे तन्दुरुस्त समझते थे। और जब मैं सब तरह से अच्छा हूँ तो लोग मुझे बीमार समझते हैं। इस बीच मुझे अपने माता, पिता, भाई तथा बीबी से अपने नियम भंग न करने के बारे में अनेकानेक झूठ सच का सहारा लेना पड़ा किन्तु फिर भी काफी कठिनाई रही है।

यह नियम सन् १९६७ तक चला उसके बाद १२ बजे कुछ मौसमी फल या थोड़ा नमकीन खा कर पानी पीता और शाम को भर पेट उबली सब्जी खाता जिसमें अधिकतर लौकी थी। रोटी, दाल, चावल खाना बिलकुल छोड़ दिया। मुझे किसी काम में कभी कोई परेशानी नहीं हुई बल्कि हर काम को एक नये उत्साह के साथ करता था। एकाएक दुबले होने से जो चमड़े में शिकन आ गयी थी और चेहरे पर जो पीलापन था वह भी ठीक हो गया। अब मुझे स्वयं भी विश्वास नहीं होता है कि मैं कभी इतना मोटा था।

इसके अतिरिक्त साधना प्रारम्भ होने के बाद जो पहला नवरात्र पड़ा उसमें दोपहर में नीबू शहद का शरबत और शाम को आधा सेर दूध मुनक्का में पका कर लिया। दूसरे नवरात्र में पूरा नौ दिन नीबू और शहद पर ही रहा। और उसके बाद के नवरात्रों में केवल सादा पानी पी कर बिताया। किन्तु इस बीच भी सभी कार्य उसी प्रकार करता रहा जैसे कि अन्य दिनों करता रहा।

पिछले नवरात्र के बाद से क्रमशः पुनः अन्न खाना प्रारम्भ किया और अब दिन में १२ बजे के पश्चात पानी पीता हूं और शाम को सब्जी और रोटी इसके साथ आधा सेर दूध भी रहता है। एनिमा का प्रयोग आवश्यक नहीं है किन्तु फिर भी कभी-कभी लेता हूं।

इस बीच मेरी सब से बड़ी भूल थी कि मैं साधना प्रारम्भ तो किया किन्तु केवल 'साधना रहस्य' अथवा कभी-कभी श्री सोमेन्द्र भाई का ही सहारा लेता रहा। भूल का अनुभव पूज्य योगी जी के प्रथम दर्शन के पश्चात हुआ। क्योंकि पूज्य योगी जी ने मेरी साधना की तमाम त्रुटियों को बड़े मीठे शब्दों में मेरे सामने रख दी। और जब दसांश आदि का सही रहस्य ज्ञात हुआ तो मैंने सोचा कि वास्तव में मैंने कितना समय व्यर्थ गवाँ दिया।

साधना के क्षेत्र में अभी मैं कदम ही रख रहा हूं किन्तु इतने पर ही मैं अपने को सुखी अनुभव करता हूं क्योंकि प्रत्येक कार्य में यह दृढ़ता रहती है कि मेरा संचालक भगवान है।

With best Compliments from :

Rajen (Textile) Mills Private Ltd.,
Barsi Town,
(Dist. Sholapur) Tele. :**545** & **254**
"Manufacturers of various counts of Yarn out of indigenous and foreign cotton."

With best Compliments from :

Shree MANGESH PETROL STORES
Ashok Garage and Workshop
Saraff Transport
Khanapur Road, Tilakwadi, Belgaum.
Phone Office :**1505** Res. **267**

राम नाम और सर्प दंश

– श्री सोमेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव, इलाहाबाद

"मंत्र महामनि विषय व्याल के,
मेटत कठिन कुअंक भाल के ।।"

भगवान का नाम मणि रूप है जिसके सुमिरन एवं भजन से विषय रूपी सर्प का असर नहीं होता तथा कठिन से कठिन दुर्भाग्य की रेखाएं मिट जाती हैं।

बात ५ अगस्त, १९६७ की है। मैं अपने गाँव पर था। सुबह ५ बजे फावड़ा (मिट्टी खोदने का औजार) लेकर मैं अपने खेतों को देखने निकल गया। अक्सर नंगे पैर ही चला करता हूं। दो मील का चक्कर लगाकर करीब साढ़े आठ बजे दिन जब घरसे एक फर्लांग रह गया तब मैं एक खेत में काम करने लगा। काम करते समय दाहिने पैर के अंगूठे में ऐसा लगा जैसे किसीने कैंची या ब्लैड से काट दिया। जब पैर उठा कर देखा तो जोर से खून बह रहा था। मैंने हाथ से कुछ यों ही खून दबा कर निकाल सा दिया और पैर पानी में डाल दिया। जब आगे बढ़ा तो उसी स्थान पर काला साँप मेरे बगल खड़ा हुआ था। मैंने कहा– महाराज यहाँ से खिसको मुझे भी कुछ काम करने दो। इतने में साँप बैठ गया। साँप के बैठते ही मुझे गर्मी मालूम पड़ी और चक्कर सा आ गया। मैंने दूसरे खेत में आकर पैर को सावधानी से देखा तो जहाँ से खून निकल रहा था त्रिकोण सा बना था। मैंने समझ लिया कि सर्प महाराजने ही कृपा की है। यह बात दिमाग में आते ही मैंने रूमाल से पैर को बहुत ज्यादा कसकर बाँध दिया इसके बाद वहीं खेत के एक पड़ोसी को बुलाकर धीरे से बताया कि मुझे साँपने काट लिया है, शीघ्र घर ले चलो। बेचारा पड़ोसी घबड़ा गया। मैंने घर आते ही ब्लेड माँगा और स्वयं अँगूठे को अच्छी तरह आधा इंच काट दिया और दबा-दबा कर खून निकाल देने को कहा। काफी खून निकाल देने के बाद मैं पीपल के पेड़ के नीचे लकड़ी के तख्त पर बैठ गया। वहाँ लोगों ने नहलाना प्रारम्भ किया। मैंने घर में ठंडे पानी का एनिमा ठीक करने को कहा। १५ मिनट के अन्तर पर दो

श्री सोमेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव, इलाहाबाद

बार एनिमा लिया। गर्मी काफी कम हुई। मैंने गंगाजी की मिट्टी पेड़ू पर रखी, इससे मुझ को बहुत आराम मालूम पड़ा। साथ ही पानी गरम कराकर कुंजल क्रिया भी कर ली। इस प्रकार साँप के विष का असर अंशतः कम सा हो गया। साँप के कटे स्थान पर नींबू का रस लगाया तथा उसीसे अच्छी प्रकार धो दिया। इस घाव में कुछ देर के लिए मिट्टी भी बाँधी।

भगवान की कृपा से जो मुझे साँप ने दिन के साढ़े आठ बजे काटा और दिखायी पड़ा और घर के बिल्कुल समीप आ जाने पर काटा, जिससे पूरा उपचार सम्भव हुआ। यह उसकी ही लीला है। वैसे मैं ८ अगस्त की रात को ११ बजे रात तक अँधेरी रात में पानी बरसते हुए समय नंगे पाँव अपने खेतमें पानी बाँधने गया था। खेत की मेड़ तक दिखायी नहीं पड़ती थी परन्तु रात को कहीं किसी ने कुछ नहीं किया, क्योंकि डर तो लगता ही नहीं। साँप के काटने पर मुझे डर नहीं लगा कि हाय साँपने काट लिया है, मैं

मर जाऊँगा। जैसे कहीं चोट लग जाय और उसका उपचार किया जाता है उसी प्रकार के उपचार में मैं लग गया।

जब घर में मालूम हुआ कि मुझे साँपने काट लिया है तब सभी परिवार के लोग बहुत घबड़ा गये। लेकिन मेरे मन में किसी प्रकार की किंचित मात्र भी घबड़ाहट नहीं थी। मैंने सबको शान्त रहने एवं राम राम कहने की प्रार्थना की। सौभाग्य से पूज्य गुरुदेव जीकी दी हुई पुस्तक "रोगों की अचूक चिकित्सा" द्वारा जानकी शरण वर्मा मैंने इलाहाबाद से आते वक्त बसमें बैठकर पढ़ ली थी क्योंकि मेरे गाँव में चार दिन पहले एक लड़की की सांप काटने से मृत्यु हो गयी थी, उसी सिलसिले में मैंने इस विषयको पढ़ रखा था कि शायद कहीं काम आ जाय। इसलिए सारी की सारी क्रिया याद थी, सोचना समझना नहीं पड़ा तुरन्त करता गया और गुरु-कृपा से स्वस्थ हो गया।

जिस समय मैं पीपल के पेड़ के नीचे बैठ कर स्नान कर रहा था, उस वक्त मैंने पेड़ू को खूब ठंडा किया, जिससे बड़ा आराम मिला। गर्मी बढ़ नहीं पायी। गांव के लोग, घर के लोग बहुत घबड़ाते एवं रोते थे परन्तु मुझे लगता था कि यह लोग क्यों घबड़ा एवं रोरहे हैं। उस समय मुझे सिर्फ याद आयी तो अपने गुरु की और भगवान की। तीसरी कोई भी चीज दिमाग में नहीं आती थी। मैं राम-राम कहता जाता था। गुरुदेव का स्मरण करता जाता था। जो गाँव के लोग हमारे सामने खड़े थे, उन सब को सामने से बगल हट जाने की प्रार्थना की। पता नहीं क्यों उस समय मुझे मनुष्य की उपस्थिति अच्छी नहीं लगती थी। ऐसा लगता था कि यह सब बेकार के लोग खड़े हैं। हमारे सामने सूर्य भगवान का प्रकाश था और प्रकृति की हरियाली। इसके अलावा कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं होता था। मैं बड़े आनन्द से बैठा राम-राम कह रहा था और स्नान करता जाता था। इसी बीच मैंने पुस्तक में लिखी बातें अपने परिवार वालों को बता दीं कि यदि आप मुझे मरा समझ लें तो इसी पेड़ के नीचे मिट्टी में मुँह को छोड़कर मिट्टी गीली कर के गाड़ दीडिएगा। चौबीस घंटा इन्तजार करने के बाद गंगा में बिना शरीर जलाये ही छोड़ दीजियेगा। आगे भगवान की इच्छा।

पता नहीं क्यों उस समय जब मैं अपने घर में एनिमा लेने टट्टी में जाता था, घर वालों की आंखों में आंसू देखता था। लेकिन मेरे मन में किंचित मात्र भी क्लेश नहीं था और पीपल के पेड़ के नीचे तो किसी की भी याद नहीं आती थी। न धन न दौलत न सगे न सम्बन्धी न अपना न पराया आदि सिवाय गुरु एवं भगवान को छोड़कर किसी की भी याद नहीं आयी।

दो घंटे उपचार करनेके बाद मैं पैर बाँधे-बाँधे मेडिकाल कालेज इलाहाबाद आया। यहाँ डाक्टरोंने कहा कि विषका प्रकोप समाप्त हो गया है, फिर भी आप तीन दिन यहाँ ऐडमिट रहें। देख-रेखके बाद आप जाइएगा। भगवानकी असीम कृपा मुझे जहरीली दवा भी नहीं खानी पड़ी। आरामसे तीन दिन मेडिकल कालेज़का दृश्य देखता रहा फिर चला आया। हां, शरीर बिल्कुल नष्ट हो गया। हाथ-पांवमें बिल्कुल सुस्ती आ गई तथा गर्मीका प्रकोप बढ़ गया। जो काम मैं बिना किसीके सहारे कर लेता था, उसे करने तकका मन नहीं होता था या यों कहिये कि जैसे शरीर मृत हो गया हो लेकिन प्रभुकी कृपासे धीरे-धीरे स्वस्थ हो रहा हूं। काफी सुधार हो गया है। गुरु-कृपासे अब शीघ्र ही पहले जैसा हो जाऊँगा।

मैं इस मानस साधना मंडलके एवं अपने गुरुजीकी नवीन एवं सर्वांश में कष्ट मिटाने वाली विचारधाराका बड़ा ही ऋणी हूं, जिसने मुझे दूसरा जन्म दिया। मेरी किस्मत के बुरेसे बुरे दिन टल गये, क्योंकि मैं घरमें अपने पिताका बड़ा लड़का होनेके कारण, उनके लिए बुढ़ापे का सहारा था। भगवानसे यही प्रार्थी हूं कि जनता इस मार्ग-दर्शनको अपना कर कठिनसे कठिन परिस्थितिमें भी मनको विकसित कर अपने भविष्य को ठीक करती जाय। धन्य है यह विचारधारा, धन्य है ऐसा सत्संग जहाँ जीवनको बदलनेकी शिक्षा दी जाती है।

वैसे तो गुरु-कृपा से अब ऐसा हो गया है जैसा दिन व्रत (उपवास) का वैसा बिना व्रतका। अब तो नवरात्र भी महीनेके अन्य दिनों सा लगता है। मुझे कुछ पता ही नहीं चलता। भारीसे भारी काम नवरात्रमें करना मेरे लिए सहज बात हो गयी है। मनुष्य अन्नको छोड़कर चाहे जितना अनियमित जीवन रखनेको बाध्य हो जावे, उसके शरीरका कुछ भी नहीं बिगड़ता जैसा मैंने अपने जीवनमें देखा है।

"मैं अब सब प्रकार सुखी हूँ"

– बाबा सियाराम जी, रायबरेली

"सुखी मीन जे नीर अगाधा ।
जिमि हरि सरन न एकौ बाधा ।।"

भगवानकी कृपासे संत मिलन होता है और सत्संग द्वारा सुमिरन-भजनका वास्तविक रूप ज्ञात होता है। सुमिरन भजनसे सारे कष्ट मिट जाते हैं और विशेष आनंद मिलता है ।

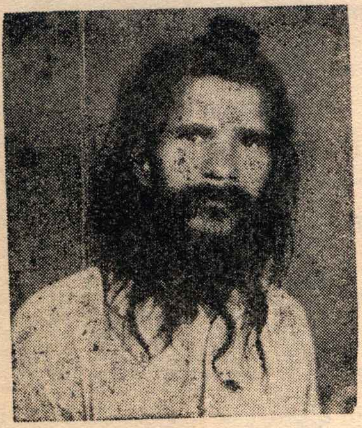

बाबा सियाराम जी

पहले मैं बड़ा दुखी रहता था और मनमें यह सोचा करता था कि भगवान इस जीवनसे छुटकारा दे देता तो ठीक था। मैंने न मालूम कितना पूजा-पाठ किया लेकिन शरीर और मनका कष्ट न मिटा। ६–७ साल तक उदर रोगसे व्याकुल था। घी दूध खूब खाता था लेकिन शरीर दिनों दिन पीला पड़ता जाता था। सिर घूमा करता था, जोरसे चलने पर दिलकी धड़कन बढ़ जाती थी। धीरे-धीरे पूजा-पाठ भी बन्द हो गया। मैंने कई डाक्टरों और वैद्योंका इलाज किया लेकिन सफलता न मिली। एक दिन रहवां कुटियाके पास स्कूलमें मुझे श्री 'योगीजी' का प्रवचन सुननेका सौभाग्य मिला। जब मैं वहां पहुंचा, तब 'योगीजी' कह रहे थे कि रामायण केवल कथाका ग्रंथ नहीं है बल्कि वह मनुष्य-जीवनको सर्वथा सुखी बनानेका एक उत्कृष्ट ग्रंथ है। उन्होंने बताया कि भोजनका चतुर्थांश और आमदनीका दसांश निकाल कर भगवानके नाते किसी अच्छे काममें लगा देना चाहिए भगवानका अंश निकाले बिना जो मनुष्य भोजन और धनको काममें लाते हैं, उनके रोग, चिन्ता और भय नहीं मिटते। मन, बचन और कर्मके दोषोंको मिटाकर भजन 'सेवा' करनेसे भगवानकी कृपा तुरंत होती है।

भगवानने हमारे सुखके लिए अनन्त सुविधाएं दी हैं। यह उनका हमारे ऊपर उपकार ही है। सूर्यसे प्रकाश, चन्द्रमाके शीतलता, हवासे प्राणवायु तथा भोजनके लिए अन्न, सब्जी, फल दूध आदि पैदा किये हैं। हमें चाहिए कि जब हम उनके दिये हवा, प्रकाश आदिका बिना कुछ मूल्य दिये उपयोग करते हैं, तो उसके बदले में अपने समय, शक्ति, भोजन और धनका एक अंश उनके नाते लगाना चाहिए। इसके अतिरिक्त यदि हम आस्तिक हैं और भगवानको अपना मानते हैं, तो जैसे संसारमें जिन्हें अपना कहते हैं, उनके प्रति अबने कर्तव्यका पालन सक्रिय एवं व्यावहारिक रूपमें करते हैं, उसी प्रकार भगवानके प्रति भी हमारा कुछ सक्रिय कर्तव्य है। यह रामायणमें प्रतिपादित वैदिक सिद्धान्त है। मेरा अनुभव है कि जो लोग भगवानके व्यापकत्व और प्रेरकत्वका आदर करते हैं, उनके दुखोंका नाश हो जाता है।

सेन्चुरी की नई देन कोजीकॉट कॉटन शर्टिंग
सुन्दर सुहावने चैक्स में उपलब्ध है
पहनने में ऊनी कपड़े सा आनन्द मिलता है
निर्माता
दि सेन्चुरी स्पिनिंग एंड मैन्युफैक्चरिंग कं० लि०
'सेन्चुरी भवन', डॉ एनी बेजन्ट रोड,
वरली, बम्बई–२५ डी डी

उन्होंने यह भी कहा कि रामायणमें सुमिरनका अर्थ प्रभुकी यादमें अपनेको भूलना है और अपने समय, शक्ति, धन और भोजनका एक अंश प्रभुके नाते वितरण करना भजन है। उन्होंने रामायणकी अनेक चौपाइयों और श्लोकोंसे अपने उक्त कथनकी पुष्टि भी की।

प्रवचन सुननेसे मेरे शरीर और मनमें एक प्रकारकी शक्ति आई। दिनके प्रकाशसे जैसे अंधकारका नाश हो जाता है उसी प्रकार श्री 'योगीजी' से रामायणका सिद्धान्त समझ कर साधना करने तथा उनकी शरणमें जाने से मेरे सभी दुख मिट गये। मैंने उसी दिनसे भोजनका चतुर्थांश तथा आमदनीका दसांश निकालना और भगवानके नाते वितरण करना शुरू कर दिया। बच्चोंमें प्रसाद बांटने लगा तथा कुछ धन गरीबोंके हितमें लगाया। दरिद्रों में नारायण, बालकोंमें गोपाल, संतमें भगवंत तथा जनतामें जनार्दन हैं, इसी भावनासे भगवानके नाते इनकी सेवामें लग गया। थालीका निकाला हुआ भोजन किसी गाय या कुत्तेको भगवानका रूप समझकर दे देता हूं। दोपहर तक कुछ नहीं खाता, उसके बाद फल और थोड़ा सा साग खाता हूं। शामको भोजनके साथ कुछ कच्ची चीजें जैसे गाजर, टमाटर, मूली आदि का सलाद भी लेता हूं। भोजन घटानेसे जो बचता है, उसे बांट देता हूं। सप्ताहमें एक दिन केवल जल पीकर उपवास करता हूं। मैंने प्रातःकाल ध्यानका अभ्यास भी आरंभ कर दिया और जब दूसरी बार पूज्य 'योगीजी' के दर्शन हुए तब अपनी साधना का पूरा ब्योरा लिखकर उन्हें दिखाया। उसमें उन्होंने जहां जैसा सुधार किया उसके अनुसार साधनामें भी परिवर्तन कर दिया।

एक दिन था जब मेरा जिगर (लिवर) बहुत बढ़ जानेके कारण भूख ही नहीं लगती थी, फिर भी स्वादके वश ३ बार खाता था। डाक्टरोंके इन्जेक्शन बेकार सिद्ध हो गये थे, जीवन भार रूप मालूम पड़ता था, मनमें असहनीय दुख व्याप्त था और मृत्यु द्वारा ही इन दुखोंका अन्त होगा, ऐसा लगता था। भजन करने बैठता था तो मन इधर उधर भागा फिरता था। जब यह विचार आता था कि जिस काम (भजन) के लिये बैठा हूं, उसको भूलकर कहां भटक गया तो पश्चाताप होता था यहां तक कि मनसे हार मान गया था।

पर सन्त-कृपासे ऊपर बताये गये साधन द्वारा शरीरका हर प्रकारका ताप पूर्ण रूपसे मिट गया है। बहुत सूक्ष्म भोजन से ही निर्वाह हो जाता है। मन हरएक परिस्थितिमें शांत और प्रसन्न रहने लगा है। एक दिन कुटिया पर अखंड रमायणका आयोजन था। खर्चे में कुछ कमी मालूम पड़ी पर भगवानको छोड़ कर किसी से आशा करना गुनाह समझता हूं। दूसरे दिन अखंड पाठकी समाप्ति के पूर्व सबेरे एक व्यक्ति आवश्यक धन जनसेवार्थ दे गया। इसी प्रकार सदा ही मदद होती रहती है। अब सब प्रकार से सुखी हूं।

प्रातः जब ध्यानमें बैठता हूं तो बिना रसना चलाये मन्द-मन्द राम नामकी आवाज ध्वनिमंडलमें गूंजती रहती है। कुछ दिनसे ध्यानके समय जब नामकी अटूट डोरी बन जाती है और मन एकाग्र हो जाता है, तब मन और पवनकी गति रुकने के कारण कुंडलिनी शक्तिका जगरण होने लग जाता है। पवन बड़े वेगसे ऊपर उठता है और नेत्रोंके सामने से परदा हट गया है, ऐसा मालूम पड़ता है। सभी पेड़, जंगल, नदी, मकान, दूर दूरकी चीजें नजर आने लगती हैं। बन्द नेत्रोंके सामने बदली ऐसा दिन प्रतीत होता है। आंखें बन्द करने पर भी प्रकाश मालूम पड़ता है और जितनी देर मन रुकता है प्रकाश बढ़ता जाता है। एक दिन एकाएक प्रकाश बहुत तेज हो गया। यह प्रकाश चन्द्रमाकी तरह शीतल था और फिर गायब हो गया। ऐसे अनेक प्रकारके अनुभव ध्यान करते समय होते रहते हैं।

With best Compliments from :

INDIAN ENG. AND COM. CORPORATION PVT. LTD.,

Mon Rep-os Building,
Arthur Bunder Road,
Colaba, Bombay-5.

Gram : FARMNEEDS

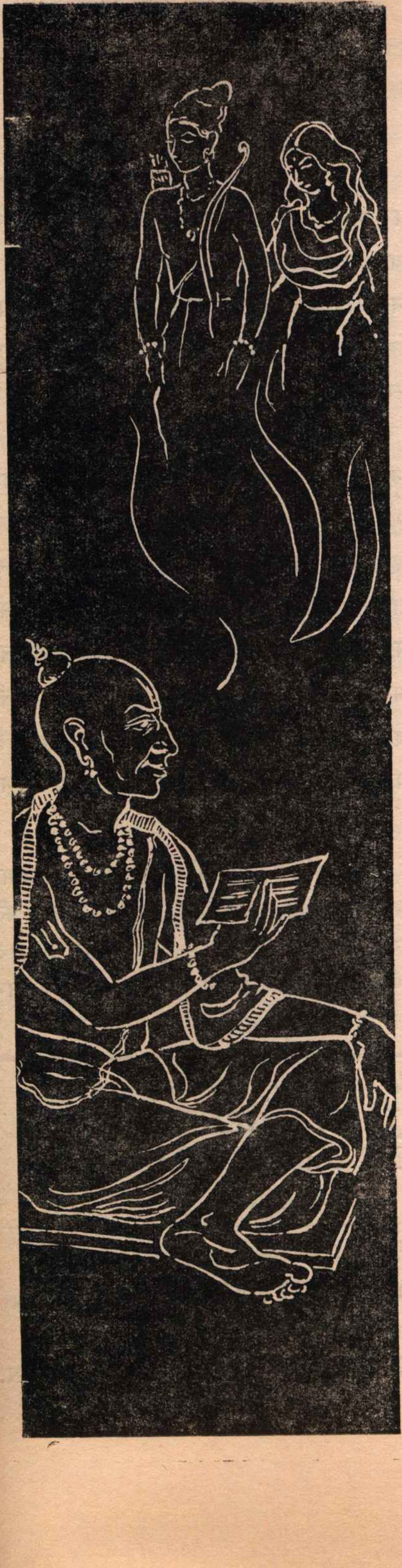

गोस्वामी तुलसीदासजी

——००——

हाल के द्विवेदी, चतुर्वेदी, शुक्ल, मिश्र बन्धु,
गुप्त, दीन, रामहित, स्नेही रत्नाकर जू।
रंग औ अनंग रसरंग मणि पाठक जू,
नवल बिहारी शर्मा जू नव नागर जू।।
इन्दु श्री बिन्दु अरबिंद नेह-लग गांधी,
गद्य-पद्य-लेखक मिलिन्द शक्ति चामर जू।
निज निज भाव सों गोसाइं–गुन-गान कीन्हें,
छिपे हैं, छपे नहीं पत्रन में सादर जू।।

● ● ●

अंग्रेजी फारसी फरंसी जरमनी में हूँ
राम लछिमन की कहानी दरसात है।
सब पाठसालन में, सालन के बालन में,
पोथी के अटालनमें राम ही दिखात हैं।।
राज दरबारन में, दुकान अलमारनमें,
बाग की बहारन में होत सोरें बात है।
मूरख चपाटहूते राम को लिबायो नाम,
तुलसी गुसाईं यह तेरी करामात है।।

● ● ●

बेद बचन सोधि सोधि, सोधिकै पुरान सबै,
संत औ असंतन को भेदको बतावतो।
कपटी कुराही कूर कलि के कुचाली जीव,
कौन राम नाम हु की चरचा चलावतो।।
'बेनी' कवि कहै मानो मानो हो प्रतीति यह,
पाहन हिये में कौन प्रेम उपजावतो।
भारी भव-सागर उतारतो कवन पार ?
जो पै यह रामायण तुलसी न गावतो।।

अद्भुत प्रकाश

– श्रीधनीराम शास्त्री, हरदोई

महाभाष्यकार पतञ्जलि महर्षि ने लिखा है कि संसार में एक वर्ग ऐसा है जो सुनता तो है परंतु कुछ नहीं सुनता अर्थात् बहरा नहीं हैं किंतु हितकी बात नहीं सुन पाता। देखता तो हैं किंतु कुछ नहीं देखता; क्योंकि झूठ को ही देखता है सत्य को नहीं देख पाता करता तो है परंतु जीवनभर करते रहते हुये भी कुछ नहीं करता क्योंकि स्वकर्म से प्रभु उपासना द्वारा प्रत्येक मानव सिद्धि पाता है जो सिद्धि उसे नहीं मिल पाती। आज संसार की यही दशा है। बात संभवतः कड़वी लग सकती है परंतु है सत्य और वह यह है कि विश्व विद्यालय के स्नातक भी अज्ञान से भरे हैं; एम. बी. बी. एस., एम. डी. उपाधिप्राप्त भी यह नहीं मानते कि भोजन शरीर निर्माता है–शक्तिदाता नहीं। करोड़ों या और अधिक धन से धनी भी यह नहीं समझते कि आनंद का संबंध अन्तर की शांति एवं धन वितरण से है–धन संचय से नहीं इत्यादि।

हृदय से प्रकटित हुये नारायण के अद्भुत् प्रकाश स्वरूप श्री योगी हृदयनारायण जी ने सचमुच वह प्रकाश फैलाया है कि हजारों की आंखें खोल दी हैं भगवान् को इन आंखों से किसी ने नहीं देखा उनको देखने की आंखें तो वे स्वयं ही देते हैं। भगवान श्रीराम की कृपा का प्रसाद पाकर श्री योगी जी ने भूले हुये माया ग्रस्त मानवों को इतना सुगम मार्ग दिखाया है और दिखा रहे हैं कि मानव सर्वांश में सुखी हो जाता है और हो सकता है तथा होता रहेगा।

३० वर्षों से अधिक समय से सन्त, महात्मा, साधु, उपदेशक, नेता, समाज सुधारकों आदि का संग करते करते भी वह चमत्कार मैंने किसी में नहीं देखा जो श्री योगी जी में देखा है-कि केवल रामायण की कथा के माध्यम से भयंकर बीमारियां बिना औषधि के ठीक हो गईं, अल्पवेतन भोगियों की दसों हजारकी समस्यायें स्वयं सुलझ गईं। बिना ज्ञानार्जन किये – ध्यान स्मरण मात्र से हृदयमें ज्ञान का प्रकाश छा गया, प्रेम की सीमा बढ़ते बढ़ते संसार में छा गई, सभी अपने लगने लगे, बड़े बड़े लालची लोग अपने धनका दशमांश या और भी अधिक भगवान् की सेवा में लगाने लगे। आज भी अनेक जीवित मानव इन सभी सद्गुणों के उदाहरण हैं जो जिज्ञासुओं को पत्र द्वारा बताये जा सकते हैं और खर्चा करने पर किसी भी स्थान पर पहुँचाकर उनके मुख से अनुभव सुनवाये भी जा सकते हैं। भूमिका का संवरण करके मैं अपनी बीती घटना अक्षरशः सत्य सत्य वर्णन करता हूं, आशा है पाठक जन लाभान्वित होंगे और मेरी भांति ही प्रेरणा पाकर कृतार्थ होंगे।

मेरे चारों हाथ-पैरों में ११ वर्ष पुराना एक्जिमा (छाजन या अकौता) था–एलोपैथिक (जर्मनी तक की बनी) औषधियाँ फेल हो चुकी थीं – हरदोई के सर्वश्रेष्ठ मूर्धन्य हौम्योपैथिक डाक्टर साहब की ६।। वर्ष लगातार चिकित्सा करा चुका था (आंशिक लाभ हो रहा था)

With best Compliments from :
J. K. AGENCIES
Old Hanuman Lane,
Bombay.

With best Compliments from :
CHATONS PRIVATE LIMITED,
95, Marine Drive Bombay-2 (BR)
Tel : **242715.** *Gram :* JOCELYN.

रोग की जड़ नहीं कट पाई थी, पैरों में पट्टी बांधकर रात को बिस्तर पर लकड़ी का पाटा रखकर सोता था ताकि पीब से बिस्तर दूषित न हो। डाक्टर लोग और मित्र लोग कहने लगे थे कि पैर कटवाना पड़ेगा। कुर्सीपर बैठकर पैर नीचे करने से जो पीब बहती थी, उससे भूमि गीली हो जाती थी। बारहों महीने नंगे पैर रहता था– जूता– चप्पल आदि पहन सकने के योग्य पैर की स्थिति ही न थी। पूजा, पाठ, स्तोत्र जपानुष्ठान भी कर चुका था किंतु लाभ होता दिखाई न दिया। प्रभु-प्रेरणा से हरदोई में ही एकबार श्री प्रभुश्याम शुक्ल, साइंस टीचर (इस समय शुगर मिल की लैबोरेटरी के कर्मचारी हैं) द्वारा समाचार पाकर श्री योगीजी की कथा सुनने का सौभाग्य मिला। बात समझ में आई। भगवान् का आदर करना आरंभ किया। झूठा भोग लगाना बंद करके भगवान् को सच्चा भोग लगाने लगा अर्थात् स्व भोजन का चतुर्थांश निकाल कर पहले ही किसी दरिद्र नारायण या पशु रूप प्रभु के पेट में समर्पित करने लगा जो आज तक कर रहा हूँ। परिणाम कुछ ही महीनों में यह निकला कि रोग समूल नष्ट हो गया। शरीर निर्मल एवं निर्दोष होने से गर्मी-सर्दी सहने की क्षमता बढ़ गई। इस समय श्री योगी जीकी कृपा का इतना प्रभाव है कि गत ४ वर्षों से जाड़ों की ऋतु में भी गर्म कपड़ों का प्रयोग नहीं किया है। घोर शीत में भी बिना कोट कम्बल, स्वैटर और रजाई के ही निर्वाह हो जाता है।

धन के प्रति ममता इतनी घट गई है कि ९६ किलो गेंहू और लगभग ४०० रुपये प्रतिवर्ष भगवान् की सेवा में लगा देने पर भी ८ सदस्यों के परिवार का भरण पोषण, शिक्षण सब ठीक चल रहा है।

मानसिक शांति उत्तरोत्तर बढ़ रही है। सब से बड़ी विशेषता यह है कि वेद के सर्वोच्च सिद्धांत मैत्रीभाव (सखाभाव) को पूज्य योगी जी ने मूर्त रूप दिया है। अनेक वैष्णव और ज्ञानी संत कहते तो हैं कि सख्यभाव श्रेष्ठ है, परंतु क्रिया में गुरुशिष्य का ही व्यवहार करते हैं। पूज्य योगी जी ने किसी के प्रति गुरु शिष्य भाव नहीं रखा है। सब को मित्र कहते, लिखते और मानते हैं। वेदों में भगवान् ने जीव को परमात्मा का सखा ही बताया है –

"द्वा सुवर्ण सयुजौ सखायौ"
तथा "मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे"

अर्थात् जीव और परमात्मा दोनों एक वृक्ष के निवासी दो पक्षी रूप मित्र हैं। उस शक्ति शाली परमात्मा का हम सखा बनाने के लिये आवाहन करते हैं। इस प्रकार मैत्रीभाव वेद सम्मत सर्वश्रेष्ठ सुखदायक भाव है जिसे योगी ने अपनाया है।

बिना किसी जाति, धर्म या संप्रदाय के प्रतिबन्ध के सब से समान रूप में प्रेम करने वाले और स्वशक्ति अनुसार सब की सेवा करने वाले योगी जी की कथा यदि दस पांच बार भी सुनकर समझ ली तो जीवन दुःख रहित हो कर सर्वांश में सुखी होगा– कोई भी अनुभव करले।

मैंने ऐसे व्यक्ति आंखों से देखे हैं जो मृत्यु की घड़ी गिन रहे थे और अब योगी जी द्वारा प्रदर्शित साधना से पूर्ण स्वस्थ हैं। यह हमारा दुर्भाग्य हैं कि श्री योगी जी के संपर्क का अधिक लाभ नहीं प्राप्त कर रहे हैं।

With best Compliments from :
BANGUR BROTHERS LIMITED
14, Netaji Subhas Road,
Calcutta-1.
Managing Agents, Secretaries and Treasurers and Secretaries
Exporters of Jute Goods and Tea.
Gram : GUNYEXPORT
Telex : CAL .538
Phone : **22-6821** (10 Lines)
22-777 & **0779**.

रामचरित मानस में राम-भक्ति

(योगी जी के एक प्रवचन के आधार पर)

– श्रीमती शान्ति सहाय

गीता में भगवान कृष्ण ने संसार को अनित्य और असुख बताया और अर्जुन से कहा कि –तू मेरा भजन कर ––

'अनित्यं असुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् "

ऐसे ही तुलसी दास ने उत्तरकाण्ड के अन्त में मानव के शारीरिक और मानसिक रोगों का चित्रण किया और कहा है :

' यहि विधि सकल जीव जग रोगी ।
सोक हरष भय प्रीति वियोगी ।।'

भजन की विधि तुलसी ने रामायण में विस्तार से जगह-जगह कहा है। आरंभ में ही मानसकार ने इस चौपाई में जैसे ग्रन्थ की आधार शिला रख दी है :

'अस प्रभु अछत हृदय अविकारी ।
सकल जीव जग दीन दुखारी ।।
नाम निरूपण नाम जतन ते ।
सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन ते ।।'

मानस के पाठकों ने नाम जप तो दृढ़तासे पकड़ा और ग्रन्थ के साथ-साथ इसका भी जोरों पर प्रचार है । पर निरूपण की ओर बहुत कम या नहीं के बराबर ध्यान दिया गया है । सच तो यह है कि रामायण त्रिताप दूर करने का जो बार-बार आश्वासन देती है उसे लोगों ने दुष्प्राप्य समझ कर अथवा अलंकार मात्र मानकर छोड़ दिया है।

साधक की कठिनाई यह है कि उसके सामने प्रायः ऐसे महापुरुषों के उदाहरण नहीं होते जिन्होंने अपने जीवन से त्रिताप दूर किया हो। हमने चिन्तामुक्त संत देखे पर रोग-मुक्त नहीं । देह और उसकी व्याधियों के प्रति हमने उन्हें उदासीन पाया । पर रामायण में त्रिताप दूर करने की बात दृढ़तापूर्वक और बार-बार कही गयी है। इतना ही नहीं राम-कृपा से गीध के क्षणमात्र में नये पंख निकल आये –' राम कृपा कस भयउ सरीरा' और मनु-शतरुपा के अस्थि मात्र शरीर क्षणमात्र में हृष्ट-पुष्ट हो गए।

रामायण हमारे समक्ष एक नई क्रांतिकारी विचार-धारा प्रस्तुत करती है कि शक्ति का संबंध भोजन से नहीं, आनंद का धन से नहीं और न ज्ञान का पुस्तकों के अध्ययन से है। एक मात्र भगवान ही शक्ति आनंद और ज्ञान का स्रोत है । हमें जो भोजन से शक्ति धन से सुख और पुस्तकों से ज्ञान मालूम होता है, यह प्रतीति मात्र है । सत्य नहीं है ।

तुलसी ने रोगी के कष्ट का चित्रण करने के बाद रोग नाश की विधि बताई । हमें वैद्य रूपी सद्गुरू के पास जाना है और उनके वचन में विश्वास रखना है ।

'सद्गुरु वैद्य बचन बिस्वासा ।
संयम यह न विषय कै आसा ।।'

सद्गुरु ने पहले तो हमें संयम बताया क्योंकि औषधि बिना संयम के बेकार जाती है, केवल परहेज मात्र से तो रोग अच्छा भी हो सकता है । यथा––

'बिनाप्यौषधं व्याधिः पथ्यादेव निवर्तते ।
न तु पथ्यविहीनानाम् मेषजानाम् शतैरपि ।।'

वैद्यक शास्त्र ने कहा कि बिना औषधि के पथ्य मात्र से व्याधि अच्छी हो सकती है लेकिन परहेज न करने पर तो सैकड़ों औषधियों से भी व्याधि नहीं जायेगी ।

यह हमारी धारणा की भ्रान्ति है कि हम शक्ति आनंद और ज्ञान का संबंध, भोजन धन और अध्ययन से समझते हैं । लेकिन जैसा दीखता है वैसा नहीं है। सद्गुरु की इस

बात पर हमें विश्वास करना होगा कि एकमात्र भगवान ही शक्ति, आनंद और ज्ञानमय है। इस मान्यता के दृढ़ होने से ही जीव का कल्याण होगा। तो धारणा की भ्रान्ति और मान्यता की अपूर्णता दूर हो जाने के बाद ही साधन फलीभूत होता है। यह दुराशा मिट जानी चाहिए कि भोजन से शक्ति, धन से सुख और पुस्तकों से ज्ञान मिलेगा।

वैद्य ने रघुपति भक्ति रूपी औषधि का श्रद्धारूपी अनुपान के साथ नियमित प्रयोग बताया और कहा :–

'एहि बिधि भलेहि सो रोग नसाहीं ।
नाहिं त कोटि जतन नहिं जाहीं ।।'

अब रघुपति भक्ति क्या है इसे देखें। तुलसीदास तो पहले ही कह चुके हैं :

'वर्षा रितु रघुपति भगति
तुलसी सालि सुदास ।।
राम नाम बर बरन युग
सावन भादों मास ।।

सावन भादों के दो महीनों में ही साठी का चावल बढ़ता और पकता है। "र" और "म" यह महीने कहे गये। अर्थात् राम नाम का आश्रय और जप ही वर्षा के दो मास हैं जिनसे दास अथवा भक्त का श्रेष्ठ विकास होता है।

तुलसी ने साधक की प्रगति के बड़े सुन्दर मापदंड दिये हैं। रोग दूर होने मात्र से रोगी के शरीर में बिना भोजन के ही आंतरिक शक्ति का अनुभव होने लगता है। ज्वर अथवा मल निकलने से रोगी उठकर चलने लगता है। इसी प्रकार मन से आसक्ति रूपी रोग दूर होते ही निर्मलता आती है और आनन्द का उदय होता है। वाह्य परिस्थिति सुखमय न रहने पर भी मन में शांति बनी रहती है।

शरीर में रोग के विनाश से भूख लगती है। और मन से आसक्ति दूर होने पर शान्ति आती है–

'जानिय तब मन विरुज गोसांई ।
जब उर बल बिराग अधिकाई ।।
सुमति क्षुधा बाढ़इ नित नई ।
विषय आस दुर्बलता गई ।।'

भोजन से नीरोग और दुबला शरीर भर जाता है और कमजोरी दूर हो जाती है। शरीर के स्तर पर जैसे अन्दर शक्ति और बाहर बल प्राप्त होता है ऐसे ही मन के स्तर पर भीतर शांति और बाहर जीवन सुखमय हो जाता है।

इसके बाद की अवस्था का वर्णन तुलसी ने इस प्रकार किया है :

'बिमल ज्ञान जल जब सो नहाई ।
तब रह राम भगति उर छाई ।।

रोगी शय्या से उठा – कुछ खाने से उसे बल मिला तो उसने स्नान किया। यह तो हुई शरीर की बात। बुद्धि के स्तर पर साधक ने ज्ञान जल में स्नान किया। जैसे बिना क्षुधा के खाने से बल नहीं होता ऐसे ही बिना सुमति ज्ञान नहीं मिलता।

इस प्रकार तुलसी ने "रघुपति भक्ति" के बाद ज्ञान की प्राप्ति का होना बताया है। और ज्ञान होने के बाद "रामभक्ति" की प्राप्ति होगी ऐसा कहा। यह बड़ी बिलक्षण बात है जिसकी ओर रामायण के पाठकों का प्रायः ध्यान नहीं जाता। तुलसी के लिये "रघुपति भक्ति" और "रामभक्ति" ऊपर नीचे की सीढ़ियां हैं जिनके बीच में ज्ञान प्राप्ति है। रघुपति भक्ति में माला, पूजन कीर्तन आदि का समावेश है और यह साधक की स्थिति है। "राम भक्ति" सिद्ध की स्थिति है जिसे ज्ञान पहले ही हो चुका है। यदि हम इसे ठीक से समझ लें तो इस पर मतभेद का स्थान नहीं रह जायेगा।

ज्ञानी भक्ति को ज्ञान से निम्न स्थिति का मानता है। यह सही भी है। लेकिन यहां ज्ञानी का भक्ति से मतलब "रघुपति भक्ति" से होता है जिसमें जप, अर्चना आदि का समावेश है।

'रामभक्ति" ज्ञान से उच्च स्थिति है, क्योंकि राम भक्त अपने इस ज्ञान को–कि सब प्रभु का ही स्वरूप है अथवा चराचर में एकमात्र वही सत्ता विद्यमान है, व्यवहार की कसौटी पर उतारता है। सबको प्रभु का रूप मानकर वह सबको प्यार करने लगता है। इस प्रकार वह प्राप्त सत्य ज्ञान को व्यवहार में प्रेम का रूप देता है। इसके परिणाम स्वरूप वह सबकी सेवा में लग जाता है। एक सूफी सन्त के शब्दों में––

इबादत बजुज़ ख़िदमते ख़ल्क नेस्त ।
ब तसबीह सज्जादओ दल्क नेस्त ।।

अर्थात् मानव मात्र की सेवा ही प्रभु की सच्ची उपासना है। यह है प्रेम और सेवा का वास्तविक रूप !

———

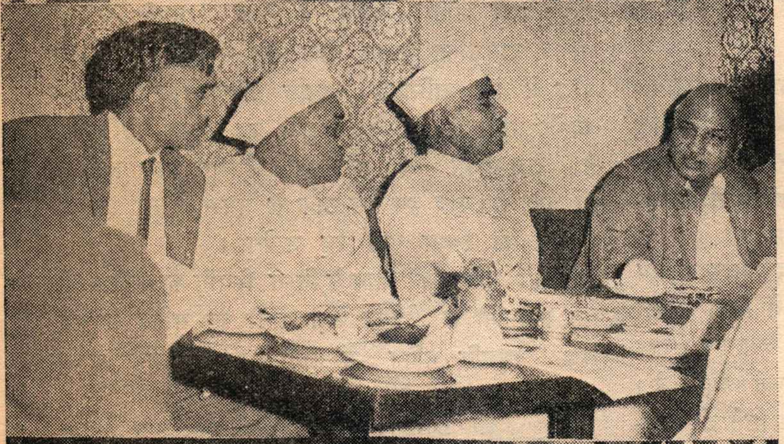

मानस साधना मण्डल की ११वीं अ० भा० गोष्ठी

अक्तूबर, १९६९ के संदर्भ में

९ अक्तूबर को सायंकाल ४–३० बजे आयोजित प्रेस कान्फ्रेन्स

ऊपर : आयोजन समिति के मंत्री श्री त्रिभुवनपाल गोयल प्रेस–प्रतिनिधियों को संबोधित करते हुए। बगल में श्री हरिलाल बी० ड्रेसवाला, श्री गजाधर सोमानी, श्री हरिकिशनदास अग्रवाल तथा श्री नवीन टी० खांडवाला बैठे हुए हैं।

★

बीच में – बाँयेसें—श्री त्रिभुवनपाल गोयल मंत्री, श्री हरिलाल बी० ड्रेसवाला उपाध्यक्ष, श्री गजाधर सोमानी अध्यक्ष तथा श्री हरिकिशनदास अग्रवाल, सभापति

★

नीचे : प्रेस कान्फ्रेन्सके अवसर पर उपस्थित आयोजन समिति के सदस्य-गण।

★

अहंकार का शीर्षासन

—हरिकिशनदास अग्रवाल

अहंकार कई प्रकार का होता है। लोकैषणा-पुत्रैषणा-वित्तैषणा, ये सभी अहंकार के ही रूप हैं। आमतौर पर यह देखा जाता है, कि अहंकार वासना के रूप में उपस्थित रहता है, किन्तु हम उसे छिपाते रहते हैं, ऊपर से विनम्र और अन्दर से वासना-पूर्ति में लगे रहते हैं।

एक मनुष्य बड़ा ही विद्वान था। जब भी कोई उसकी प्रशंसा करने के लिए खड़ा होता, तो वह उसे मना कर देता, कि भाई मेरी प्रशंसा मत करो। एक बार जब उस विद्वान का भाषण खत्म हो चुका तो, एक व्यक्तिने उसको धन्यवाद देते हुए यह कहा कि चूंकि प्रवक्ता को प्रशंसा अच्छी नहीं लगती, इसलिए मैं उनकी प्रशंसा नहीं करूंगा। प्रवक्ता ने प्रसन्नता जाहिर करते हुए कहा कि आपने मेरी प्रशंसा नहीं की, इसी में मैं खुश हूं। बाद में जब कार्य-क्रम समाप्त हो चुका तो उस धन्यवाद देने वाले व्यक्तिने बताया कि आप प्रशंसा से प्रसन्न नहीं होते हैं, पर जिस बात से आप प्रसन्न हो रहे हैं वह भी तो एक प्रकार की प्रशंसा ही है। भले ही इसे प्रशंसा न कहें पर प्रशंसा का शीर्षसन तो कह ही सकते हैं। विद्वान को अपने अन्दर छिपी लोकैषणा का पता चला।

लोकैषणा बड़े-बड़े छिपे हुए रूप धारण करके आती है, किन्तु अन्दर से हर कोई यही चाहता है कि मेरी इज्जत-मान-प्रतिष्ठा-सत्कार हो, किन्तु वह उसे जाहिर नहीं करता।

एक महन्त अपनी शिष्य-मंडली के साथ एक बाजार मेंसे गुजर रहे थे उनकी शिष्य-मंडली आगे-आगे हल्ला करती जाती, कि महाराज के पाँव नहीं छूना, नहीं तो महाराज को उपवास करना पड़ेगा, कोई बेचारा सीधा सरल व्यक्ति पाँव छूने आता तो उसे पीछे हटा दिया जाता।

यह बाहरी विनम्रता आडम्बर का रूप धारण करके अपनी लोकैषणा की पूर्ति कर रही थी। अगर वही महन्त बाजार में से चुपके से निकल जाता तो शायद कोई उसके पाँव न छूता, किन्तु जिस आकर्षण से बचना चाहते थे, शिष्य मण्डली के हल्ला करने पर वे उसी में अन्य रूप से फंस गए।

एक सभा का सेक्रेट्री मंच पर खड़ा हो जोर-जोर से हाथ मार कर कहता है कि भाइयो, हमारी सोसायटी ने यह काम किया, वह काम किया। मैं आप के सामने कोई माँग पेश करने खड़ा नहीं हुआ हूं। उसका यह कहना कि मैं माँग पेश करने के लिए नहीं खड़ा हुआ हूं, में भी एक मांग ही छिपी है। प्रायः सभी मांगने वाले यही कहा करते हैं, कि हम माँगने नहीं आए, किन्तु उनके हृदय की बात छिपी नहीं रहती जनता उन्हें पहचान जाती है, व उनके हृदय की बात जान जाती है।

एक उच्च चोटी के महात्मा किसी पर्वत की चोटी पर प्रवचन करते थे। वह २० वर्ष से नीचे न उतर वहीं रहते थे। कोई नीचे उतरने का उनसे आग्रह करता तो वे इन्कार कर देते। किन्तु एक बार बहुत से भक्तों ने मिल कर आग्रह किया कि महाराज नीचे गाँव में मेला लगा है, वहाँ बहुत से भक्त साधक सत्संगी आये हैं। बहुत से लोग आपके दर्शन करने यहाँ नहीं पहुंच सकते, इसलिए आप कृपा करें, व नीचे उतर कर लोगों को दर्शन दें।

"महाराज लोगों के आग्रह पर राजी हो गए, नीचे मेले में जब पहुंचे, तो भीड़ बहुत थी, व उनके पांव पर किसी का जूता आ गया, महात्माने जिसका जूता पाँव पर पड़ा था, उसकी गर्दन पकड़ ली और कहने लगे, कि तुम्हें मालूम नहीं मैं कौन हूं? वह जो अहंभाव की वृत्ति आज २० वर्षों से छिपी थी और जिसे निकालने का मौका न मिल पाया था, वही अहंभाव मौका मिलने पर बाहर आ गया।

मनुष्य संसार में रहता हुआ यदि अहंभाव से बचा रहे, क्रोधावेश में न आवे, और अपने मन का संतुलन बनाए रक्खे, तो वह विषम परिस्थितियों में भी समता को प्राप्त हो सकता है। किन्तु जो मनुष्य विषम परि-स्थितियों से दूर भागता है, तो वह कभी भी विषम परि-परिस्थिति आ जाने पर विक्षिप्त हो सकता है, क्योंकि उसने अब तक स्वयं को विक्षिप्त वातावरण से दूर रक्खा है। विक्षिप्तता उसके मन में से गई नहीं, विक्षिप्तता तो तभी जायगी, जब हम जीवन की हर कसौटी पर उसे कसते रहेंगे, विक्षिप्त न रह कर हम समभाव में स्थित रहेंगे।

एक योगीराज किसी के अतिथि होकर उसके घर पर गए और दूसरे दिन ही वह कहते हैं, कि मैं यहां से चलता हूं, मेरा तो आज ध्यान ही नहीं लग पाया। सबेरे जब मैं ध्यान में बैठा था, तो दरवाजे की आहट ने मेरा ध्यान उचाट कर दिया। उसके बाद मेरा ध्यान लगा ही नहीं। मैं तो जंगलों में एकदम निर्जन स्थान में रहने का आदी हूं, जहां पर किसी प्रकार की खटखटाहट नहीं। बाहरी वातावरण के आधार पर जो ध्यानस्थ होते हैं, वह जरा सी भी आहट आने से ध्यानस्थ नहीं हो सकते। किसी पड़ोसी की आवाज़, बच्चे का रोना, पास ही चलते पशुओं की आवाज, या प्रातःकाल समाचार पत्रों के बेंचने वालों तथा दूध वालों की आवाज़ उन्हें विक्षिप्त कर देती है। उन्होंने तटस्थ होकर ध्यान लगाना सीखा ही नहीं। ध्यान का तात्पर्य यह नहीं है, कि हम कानों से बाहर हो जाएं, या हमारे कान में कोई आवाज़ ही न पड़े। ध्यान का तात्पर्य यह है कि हम असंग कितना हो सकते हैं? घर में बच्चों के रोने की आवाज़ तो आयगी ही, किन्तु यदि हम उससे तटस्थतापूर्वक असंगता प्राप्त कर सकें, तो वही आवाज़ विक्षिप्तता का कारण नहीं बनेगी। हम किस किस की आवाज़ को रोकने जायंगे, पशु पक्षियों की आवाज़ें, कौवेकी कांव-कांव, कुत्तेके भों-भों करने व गधों के रेंकने आदि कई प्रकार की आवाज़ें आती हैं। यदि हम उन्हें विक्षिप्तता का कारण मान लें, तो हमारा ध्यान लगेगा ही नहीं, भीड़ से निकल जाने का नाम ध्यान नहीं, किन्तु भीड़ को मन में घुसने न देने का नाम ध्यान है।

एक संपन्न घराने के व्यक्ति ने सन्यास ले लिया और साधू बन गया। वह साधु वेष में ३० वर्ष तक घूमता रहा। एक बार वह बात बात में किसी से कहने लगा, कि मैं ३० लाख को लात मार कर साधू हुआ हूं, सुनने वाले ने कहा कि –आप ने लात लगाई तो सही, किन्तु ठीक से नहीं लगायी। अभी तक ३० लाख के त्याग का सूक्ष्माहंकार तो आपके मस्तिष्क पर सवार ही है।

बहुत से साधू त्याग को बड़ी महत्ता देते हैं और बात-बाद में अपने त्यागी-वैरागी होने की डींग हाँकते हैं। यहां तक कि अपने नाम के पीछे भी विरागमूर्ति, विरक्त-शिरोमणि इत्यादि लगा लेते हैं।

बहुत से सभा-संमेलनों में यह देखा गया है, कि मंडलेश्वरों–महामंडलेश्वरों व प्रवक्ताओं के चेले प्रथम आकर आगे आसन बिछा देते हैं, व कभी किसी अन्य सन्त का आसन आगे लगा हो, तथा स्थान न मिले, तो यही खिन्नता का कारण हो जाता है। इस प्रकार का त्याग ग्रहण का ही एक दूसरा रूप है।

जब त्याग को ग्रहण कर लिया, व उसी के अहंभाव में फूल गए, तो एक संसारी धन-मान की आफत तो छोड़ी पर त्याग अहंकार का ग्रहण करने की दूसरी आफ़त गले में डाल ली।

अहंभाव चाहे गृहस्थी का हो, चाहे योगी–तपस्वी–सन्यासी–आचार्य प्रवक्ता और लेखक का, अहंभाव तुच्छ ही है।

परमात्मा की प्राप्ति तो इन सब भावों से ऊपर उठ जाने में है। त्याग जहाँ होता है, वहीं परमात्मा होता है।

इलाहाबाद के कुंभ पर ब्रह्मलीन श्री स्वामी प्रेमपुरी जी ने समष्टि भंडारा किया। उसमें अन्दाजा ५,००० साधु-संत, महामंडलेश्वर– मंडलेश्वर आदि आए।

भोजन का समय ११ बजे का था और साधुओं की सभी पंक्तियां लग गई थीं, किन्तु जो मठाधीश-महामंडलेश्वर-महन्त इत्यादि थे, उनमें इस बात की चर्चा में कि दांए आसन किसका हो व बांये किसका दोपहर के ३ बज गए। इसलिए कि जब तक निर्णय न हो तब तक भोजन कैसे हो? आखिर जब काफी समय हो गया, व यह बात सब को अखरने लगी, तो ११ बजे की बैठी पंक्ति ने ३ बजे भोजन किया।

उसी समय पर बंबई से आए एक और प्रतिष्ठित व्यक्ति को दूसरे दिन भंडारा कराना था। किन्तु उसने अपना भंडारा कराने का निर्णय वापस ले लिया। वह बोला कि जिस भंडारे पर आसनों के स्थान पर ३-३ बजे तक विचार-विमर्श किया जाता है, मैं तो ऐसी परिस्थिति को देख कर भंडारे से बाज़ आया।

महापुरुष जनता को यह उपदेश देते हैं, कि अहंभाव से उपर उठो, और जनता इन महापुरुषों को आसनों के स्थान पर वाद-विवाद करते देखती है, तो उसे बड़ा आश्चर्य और दुख होता है।

इस लेख से शायद किसी को ऐसा प्रतीत होता हो कि महापुरुषों की खिल्ली तो नहीं उड़ाई जा रही? किन्तु ऐसी बात नहीं, तात्पर्य यह है, कि स्थूल अहंकार तो मिट जाता है, किंतु सूक्ष्म अहंकार कभी-कभी बना रहता है, उससे हमें सचेत रहना चाहए, ताकि हम स्थूल अहंकार से निकल कर सूक्ष्म में न अटक जांय, क्योंकि स्थूल पदार्थों के त्याग-वैराग से कभी निवृत्त हुआ भी जा सकता है किन्तु सूक्ष्मअहंकार से? जब तक मनमें बैठी वासना-निवृत्ति नहीं होगी, तब तक सूक्ष्मअहंकार का भी अन्त नहीं होता।

आकांक्षा का आकाश : प्रयास की परिधि

—श्री चतुर्भुज शर्मा, अध्यक्ष, तुलसीशोध संस्थान

यह राम चरित मानस भी अपूर्व अलौकिक काव्य है। दूर से देखने पर तो यह एक साधारण भक्ति-रस-प्रधान महाकाव्य प्रतीत होता है, किन्तु ज्यों-ज्यों हम इसके निकट जाते आते हैं, इसका प्रसार तथा गहनता बढ़ती जाती है और जब इससे तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं तो हमें विश्वास हो जाता है कि मानस वास्तव में भारतीय संस्कृति, धर्म और साहित्य का वह पूंजीभूत रूप है, जिसकी रचना मानव मात्र को सर्वमंगल के लक्ष्य की ओर प्रेरित करने के लिए हुई है।

ऐसे विलक्षण काव्य की रचना को चार सौ वर्ष पूर्ण हो रहे हैं और आज देश में सर्वत्र राम चरित मानस चतुश्शती मनाने की चर्चा चल रही है। कुछ अन्य देशों में भी इस दिशा में विचार किया जा रहा है। वातावरण की इस समवेत चेष्टा के बीच यह जिज्ञासा स्वाभाविक है कि इस आयोजना का प्रयोजन क्या है, इसके द्वारा लोकमंगल की किस रूप में अभिवृद्धि हो सकती है तथा इस मानस को मानस में अपनी मूलभूत गरिमा के साथ किस प्रकार अवतरित किया जाय ? विभिन्न संस्थाओं के कार्यक्रम इस विषय पर प्रकाश डालने की चेष्टा करते हैं। तुलसी स्मारक समिति तथा तुलसी शोध संस्थान का भी इस दिशा में सचेष्ट होना स्वभाविक ही है। इसके पूर्व कि दोनों संस्थाओं से निकटतम संबंधित होने के नाते मैं उनके प्रयास का रेखांकन करूं, उनके विषय में परिचयात्मक रूप से कह देना भी आवश्यक समझ रहा हूं।

राष्ट्र के ओजस्वी नेता पं० गोविन्द वल्लभ पंत की प्रेरणा से संस्थापित तुलसी स्मारक समिति गत तेरह-चौदह वर्षों में अनेक दिशाओं में सक्रिय प्रयास कर चुकी है। महाकवि तुलसी के जन्म स्थान राजापुर (जिला बांदा) में इसने लगभग चार लाख रुपये की लागत से एक विशाल मयूराकार एवं आकर्षक तुलसी स्मारक निर्मित कराया है। सामान्य चलने वाले कीर्तन, भजन तथा प्रवचन-सत्संग आदि के अतिरिक्त राम विवाह तथा राम जन्म के अवसर पर यहां विशाल तुलसी मेला आयोजित होता है जिसमें श्रेष्ठतम साहित्यकार, रामायणी तथा तुलसी साहित्य मर्मज्ञ पधारते हैं। गोष्ठियों का आयोजन तथा विद्वानों का सम्मान समिति का प्रमुख कार्यक्रम रहा है। यों इसने तुलसी साहित्य को अधिकाधिक लोकप्रिय बनाने की अन्यरूप में भी सक्रिय चेष्टा की है। श्री शिव शंकर मिश्र तथा श्रीमती विद्यावती मिश्र की तुलसी विषयक नौ पुस्तकें प्रकाशित करके समिति ने महाकवि तुलसी के संदेश को बालकों तथा किशोरों तक पहुंचाने की सफल चेष्टा की है।

उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ में तुलसी शोध-संस्थान की स्थापना का उद्देश्य जैसा इसके नाम से ही स्पष्ट होता है, विषय की गहनता में पहुंचकर अन्यतम साधना के मोतियों को खोज निकालना है। इसके पास व्यावहारिक कार्यक्रम के साथ विचारमंथन भी होगा और मानस का अधिकतम अवगाहन करने की आकांक्षा रहेगी।

मानस चतुश्शती के वृहद् विचाराधीन कार्यक्रम में तुलसी स्मारक समिति तथा शोध संस्थान ने जो अपना विनम्र योगदान करने का निश्चय किया है उसकी रूप-रेखा कुछ इस प्रकार है :—

हम चाहेंगे कि इस अवसर पर हमारा सर्वाधिक ध्यान मानस तक केंद्रित रहे, यद्यपि तुलसी के अन्य साहित्य अथवा भक्ति साहित्य को भी इसी संदर्भ तथा प्रसंग में स्पर्श किया जा सकता है। अपने कार्यक्रम के अंतर्गत हम मानस से ४०० ऐसे सुभाषित निकालेंगे जिनका प्रत्यक्ष संबंध हमारे दैनिक जीवन से हो और जिन्हें जन साधारण के लिए नीति बनाकर अथवा नैतिक शिक्षा के रूप में ग्रहण किया जा सकता हो। इस संकलन की भूमिका के रूप में हम तुलसी का सर्वांगीण जीवन दर्शन प्रस्तुत करेंगे जो किसी देश या काल विशेष के लिए नहीं अपितु सार्वभौमिक तथा सार्वकालिक हो।

हमारा दूसरा प्रयास होगा ४०० चौपाइयों में मानस को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने का। इस संक्षिप्त रूप में कथा का प्रवाह यथावत रहे और उसकी मंगलकारी आत्मा स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो। इसको अंतिम रूप देने के पूर्व हमारी चेष्टा होगी कि विभिन्न समूहों तथा स्थानों में इसका पारायण कर लिया जाय और उसके समवेत प्रभाव का भलीभांति परीक्षण तथा मूल्यांकन हो जाय।

हमारा विश्वास है कि मानस केवल काल ग्रंथ नहीं

वस्तुत: जीवन तथा जीवन दाता के प्रति अडिग, अखंड एवं अलक्षित आस्था का प्रतीक है। उसे निष्ठा के साथ पारायण करने वालों को धर्म लाभ कितना हुआ यह तो सदैव एक प्रश्नवाचक बना रहेगा किन्तु यह तो सहज ही स्पष्ट हो सकता है कि मानस ने कितने मानसों का पथ-प्रदर्शन किया, कितनों की समस्या हल की तथा संबल प्रदान किया। चतुश्शती के इस अवसर पर हम उन ४०० व्यक्तियों के अनुभव प्रस्तुत करेंगे जिन्होंने मानव में अपने उद्वेगों का निराकरण पाया। अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त किया तथा अपनी अस्थिरता को दृढ़ता में परिवर्तित किया। हम यह कार्य अनेक व्यक्तियों से संपर्क स्थापित करके, उनकी अनुभूतियों और अनुभवों का भलीभांति विश्लेषण करके करेंगे।

उपरोक्त प्रयत्नों के अतिरिक्त हम मानस को समाज के विभिन्न वर्गों तथा स्तरों तक पहुंचाने की दृष्टि से उसका विविध रूपों में सरल, भावपूर्ण तथा ग्राह्य अध्ययन प्रस्तुत करेंगे। उदाहरणार्थ हमारा एक अध्ययन नारियों के लिए होगा, एक विद्यार्थियों के लिए। अपने इन अध्ययनों में हमारी चेष्टा होगी कि महाकवि तुलसी के ही शब्दों में हम उनकी तद्विषयक परिकल्पना को पूर्ण रूप में प्रस्तुत करें जिससे जिज्ञासु कवि तथा संत के विचारों को ठीक से समझ तथा ग्रहण कर सकें।

राम चरित मानस का जहां-जहां तथा जिस-जिस रूप में अध्ययन हुआ, उस पर जो भी प्रकाशित, अप्रकाशित शोध कार्य हुआ है उसका संकलन करने का हम प्रयास करेंगे। यह कार्य वस्तुत: मानस-प्रेमियों के सहयोग से ही संपादित हो सकेगा। मुझे निजी रूप से ज्ञात है कि प्रकाशन के अभाव में मानस पर बहुमूल्य तथा अप्राप्य सामग्री पांडुलिपि के रूप में ऐसे लोगों के बस्तों में बन्धी है जो अपने जीवन की सांझ में साधनों के अभाव की यातना सहते हुए उसके प्रकाशन के लिए व्यग्र हैं। ऐसी कतिपय पांडुलिपियों का मुझे परिज्ञान है। एक ऐसी पांडुलिपि के विषय में मुझे ज्ञात है जिसमें भावुक मानस प्रेमी ने सैकड़ों रामायणियों के महत्वपूर्ण प्रवचन ज्यों के त्यों लिख डाले हैं। हम इन प्रयासों को संग्रहीत करेंगे तथा उनको प्रकाशित करने के लिए एक कार्यक्रम प्रस्तुत करेंगे।

इस प्रकार की ही सामग्री के आधार पर हमारा प्रयास पुरानी पोथियों तथा वस्तुओं का संग्रहालय स्थापित करने का होगा। स्पष्ट है इसमें सब कुछ मानस से ही संबंधित होगा और अध्ययन के लिए पीठिका के रूप में हम इनका चयन तथा संकलन करेंगे।

हम एक और भगीरथ कार्य अपने हाथ में लेने के लिए सोच रहे हैं। यह होगा मानस के विद्वानों, व्यासों, कथा वाचकों, प्रवचनकर्ताओं तथा मानस-पीठियों के विषय में परिचयात्मक संदर्भग्रन्थ तैयार करने का। हमारा विनम्र अभिमत है कि यह अपने ढंग का अभिनव कार्य होगा और इसकी आवश्यकता का अनुभव आज सभी कर रहे हैं।

अपने इस स्पष्ट एवं रेखांकित संकल्पी प्रयासों के साथ इनके पूरक के रूप में हम तुलसी पुस्तकालय, तुलसी वाचनालय, तुलसी अध्ययन-कक्ष, तुलसी विद्यालय तुलसी-अत्यांक्षरी, तुलसी काव्य प्रतियोगिता, तुलसी निबन्ध प्रतियोगिता आदि की व्यवस्था करेंगे। वस्तुत: ये सब कार्य सभी साहित्यिक संस्थाओं के माध्यम द्वारा होंगे। समिति और संस्थान ने अपने इन कार्यों के लिए लखनऊ को ही केंद्र स्थान माना है। और इन दोनों संस्थाओं का कार्यालय है भगवती निवास पानदरीबा लखनऊ। अपने कार्यों तथा प्रयासों को विधिवत रूप देने के लिए हमने अपने निदेशालय का संयोजन किया है, जिसमें हमारे निदेशक श्री शिव शंकर मिश्र सारे कार्यक्रम को स्वरूप देंगे, जिज्ञासुओं को जानकारी प्रदान करेंगे तथा विभिन्न मानस-प्रेमी संस्थाओं से सहयोग प्राप्त करके बिखरे हुए प्रयासों को समवेत रूप देंगे। निदेशालय की व्यवस्था अपने ढंग का सर्वप्रथम प्रयोग है और उसकी सफलता का श्रेय आप सबको ही प्राप्त होना है।

स्पष्ट है समिति और संस्थान के पास अपने कार्यक्रमों को विधिवत संपादित करने के लिए यथेष्ट साधनों का अभाव है। राम चरित मानस से संबंधित कोई भी कार्य या कार्यक्रम वस्तुत: लोक मंगल का कार्य है और उसमें अपना योगदान करना प्रत्येक सद् वृत्ति वाले का सहज कर्त्तव्य है। हम योगदान के लिए सबका आह्वान करते हैं और जिस रूप में भी वह हमें प्राप्त होगा हम साभार ग्रहण करेंगे।

शासन से भी हमारा अनुरोध होगा कि मानस को राष्ट्रीय एकता का प्रतीक मानकर उसकी व्यापकता को प्रसार देने के लिए अपना सहयोग दे। इन सबके साथ समिति एवं संस्थान उन सत्र संस्थाओं को चाहे वे कहीं भी हों, किसी रूप में भी कार्य कर रही हों, अपना विनम्र सहयोग सहज भाव से अर्पित करता है।

———

मानस साधना मण्डल के पदाधिकारी

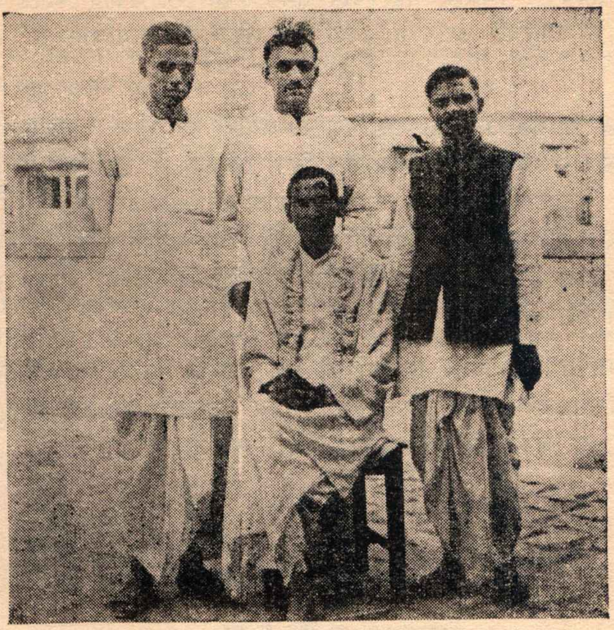

कुर्सीपर बैठे हुए : मंडल के संस्थापक – अध्यक्ष परमपूज्य श्री हृदयनारायण 'योगीजी', ८।१०, वेस्ट एक्स्टेंशन एरिया, करोल-बाग, नयी दिल्ली–५

खड़े हुए-बाँयें से : १. मंत्री : डा० चन्द्र दीप सिंह, एम. बी., बी. एस. सिविल अस्पताल, मछली शहर, जिला जौनपुर (उ० प्र०)

२. सहायक मंत्री : श्री त्रिभुवन पाल गोयल, एम. काम.,
६. ब्ल्यू. गार्डनिया, पेडर रोड,
(स्टेट बैंक आफ़ इंडिया के उत्तर) बम्बई –२६
फोन : निवास – ३५०६२५ । कार्यालय – २९५४५६ व २९५४६६ तार–'PUNEET'–Bombay.

३. सहायक मंत्री तथा कोषाध्यक्ष — श्री कुबेर । साद गुप्त
डी– १२।४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ –४
फोन : निवास – २६११३

मानस शंका समाधान

राम चरित मानस के संबंध में जिज्ञासु महानुभाव समय-समय पर शंकाएं व्यक्त किया करते हैं। मानस के विद्वानों ने इन शंकाओं का समुचित उत्तर भी दिया है। शंका तथा समाधान की यह प्रक्रिया अनवरत रूप से चली आ रही है।

आज हम मानस चतुश्शती समारोह के आयोजन की तैयारी कर रहे हैं। यह एक ऐसा अवसर है जब हम अपने इस सर्वांगपूर्ण तथा चार सौ वर्षों से सर्वत्र सम्मा- नित, विश्व में सर्वाधिक पठित तथा लोकप्रिय ग्रंथ की पूर्णता प्रतिष्ठित करने हेतु इससे संबंधित समस्त जिज्ञासाओं, शंकाओं तथा भ्रमों का सम्यक् निराकरण प्रस्तुत करें। इसी उद्देश्य से मानस के प्रेमियों, पाठकों तथा समालोचकों से हमारा अनुरोध है कि वे अपनी जिज्ञासा अथवा शंका तुलसीशोध संस्थान के निदेशक श्री शिवशंकर मिश्र, २२३, राजेंद्रनगर, लखनऊ –४ के पास यथा सुविधा भेजने की कृपा करें।

तुलसी शोध संस्थान मानस के शीर्षस्थ विद्वानों की एक समिति द्वारा इन जिज्ञासाओं तथा शंकाओं का परीक्षण कराके उनका निराकरण प्रस्तुत करते हुए मानस चतुश्शती समारोह के एक प्रमुख कार्य के रूप में विस्तृत ग्रंथ प्रस्तुत करेगा, जो अपने ढंग का अभूतपूर्व तथा उपयोगी भी होगा।

–चतुर्भुज शर्मा
अध्यक्ष
तुलसी शोध संस्थान

●

श्री बिन्दुजी
स्वर्ण–पदक पुरस्कार

रामचरित मानस के श्रेष्ठ विद्वान एवं लोकप्रिय कथावाचक पं० बिंदु जी गोस्वामी की पुण्य स्मृति में तुलसी स्मारक समिति ने भगवान राम के पावन चरित्र पर आधारित सर्वश्रेष्ठ बाल साहित्य की पुस्तक पर श्री 'बिंदु जी स्वर्ण-पदक' प्रदान करने का निश्चय किया है।

पुरस्कारार्थ प्रकाशित पुस्तकों की पांच प्रतियां तथा अप्रकाशित पुस्तकों की टाइप की हुई दो प्रतियां पुरस्कार समिति की संयोजिका के पास १५ दिसंबर, १९६९ तक अवश्य आ जानी चाहिए। पुरस्कार की घोषणा ३१ दिसंबर, ६९ तक कर दी जायगी।

निर्णायकों द्वारा घोषित सर्वश्रेष्ठ पुस्तक पर श्री बिंदु जी स्वर्ण पदक तथा द्वितीय एवं तृतीय पुस्तकों को भी पुरस्कृत किया जायगा। पुरस्कृत पांडुलिपियों को प्रकाशित करने का अधिकार तुलसी स्मारक समिति को होगा।

–विद्यावती मिश्र
संयोजिका

२२३, राजेन्द्र नगर लखनऊ –४

परमपूज्य श्री हृदय नारायण 'योगीजी'
स्वर्ण पदक पुरस्कार

तुलसी शोध संस्थान ने मानस चतुश्शती के प्रथम चरणमें श्रीराम चरित मानसके उन पहलुओं का सम्यक् विवेचन करने वाली सर्वश्रेष्ठ पुस्तक को 'श्री हृदय नारायण 'योगीजी' 'स्वर्ण पदक' प्रदान कर सम्मानित करने का निश्चय किया है, जिनके आधार पर गोस्वामी तुलसीदासजी ने श्रीराम चरित मानसमें मानव जीवनको सर्वांश में सुखी करने के संशयरहित आश्वासन दिये हैं।

मानस किंकर श्री हृदय नारायण 'योगीजी' श्रीरामचरित मानस के विख्यात वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक व्या व्याख्याता है, जिनके अनुसार साधन करके अनेकानेक लोगों का जीवन सब प्रकार से सुखी होकर रामचरित मानस के आश्वासनोंको पुष्ट कर रहे हैं।

प्रकाशित पुस्तकोंकी पांच तथा अप्रकाशित पुस्तकोंकी टाइप की हुई दो प्रतियां पुरस्कार समिति की संयोजिका के पास ३१, १२, ६९ तक अवश्य पहुंच जानी चाहिए।

निर्णायकों द्वारा घोषित सर्वश्रेष्ठ पुस्तकके सम्मानार्थ 'श्री हृदयनारायण 'योगीजी' स्वर्ण पदक प्रदान किया जायगा। पुरस्कार की घोषणा १५ जनवरी, १९७० तक कर दी जायगी। पुरस्कृत पुस्तकके प्रकाशनका सर्वाधिकार तुलसी शोध संस्थान को होगा।

श्री हरकुमार पाठक कन्या इन्टर कालेज
दलेलगंज, शाहजहाँपुर, (उ० प्र०)

— तारा पाठक
संयोजिका

●

श्री चतुर्भुज शर्मा
स्वर्ण पदक पुरस्कार

मानस चतुश्शती समारोह के प्रथम चरण में मानस साधना मंडल ने राम कथा पर आधारित बाल साहित्य की सर्व श्रेष्ठ कविता पुस्तक पर 'श्री चतुर्भुज शर्मा स्वर्ण पदक' प्रदान करने का निश्चय किया है। श्रद्धेय श्री शर्मा जी तुलसी शोध संस्थान के अध्यक्ष तथा तुलसी स्मारक समिति के मंत्री है। संत शिरोमणि तुलसी तथा भगवान राम के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा एवं अखंड निष्ठा है, जिसे वे अपने कार्यों तथा विचारों द्वारा मूर्त रूप प्रदान कर रहे हैं। महाकवि के जन्म स्थान राजापुर, जिला बांदा : उ० प्र. —में आपके सत्प्रयास के फलस्वरूप एक विशाल तुलसी स्मारक भवनका निर्माण हुआ तथा तुलसी साहित्य के गहन अध्ययन एवं मनन हेतु शोध संस्थान की भी स्थापना आपने की है।

पुरस्कार हेतु प्रकाशित पुस्तकों की पांच प्रतियां अथवा अप्रकाशित पुस्तक की टाइप की हुई दो प्रतियां पुरस्कार समिति के संयोजकके पास ३० नवंबर, १९६९ तक अवश्य पहुंच जानी चाहिए।

निर्णायकों द्वारा घोषित सर्वश्रेष्ठ पुस्तकके सम्मानार्थ 'श्री चतुर्भुज शर्मा स्वर्ण पदक' प्रदान किया जायगा तथा द्वितीय एवं तृतीय पुस्तकों पर भी क्रमशः १०१ रु० तथा ५१ रु० पुरस्कार प्रदान किया जायगा। पुरस्कृत पांडुलिपियोंके प्रकाशनका सर्वाधिकार मानस साधना मंडलको होगा। पुरस्कार की घोषणा १५ दिसंबर, १९६९ तक कर दी जायगी।

— जगदीश प्रसादसिंह
संयोजिका

७३२, बनारसी बाग, लखनऊ

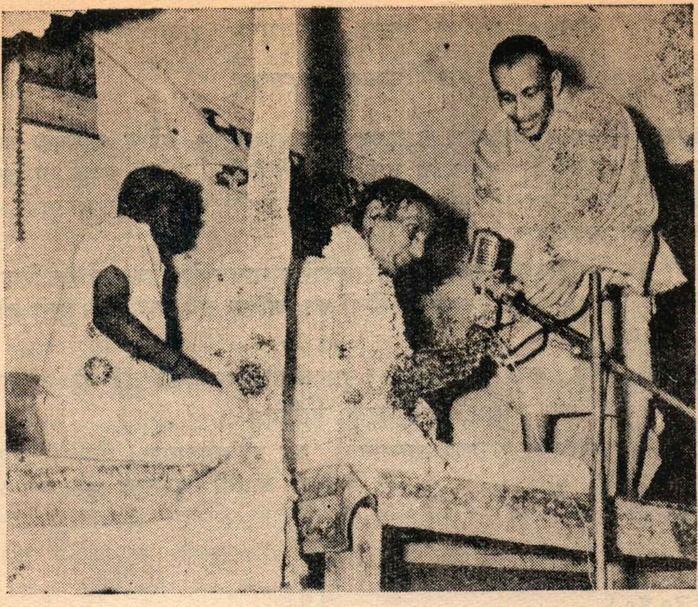

कलकत्ते की गोष्ठी में डिवाइन लाइफ सोसाइटी के अध्यक्ष स्वामी चिदानन्दजी पूज्य 'योगीजी' को माल्यार्पण करते हुए।

वाराणसी गोष्ठी—बाँयें से—उद्घाटनकर्त्ता डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, परम पूज्य 'योगीजी' तथा अध्यक्ष डा० एस. डी. मिश्र।

मानस का लोकोपयोगी पक्ष

— श्री त्रिभुवन पाल गोयल

आदि काव्य वाल्मीकि रामायण में जिसका रचना-काल आज से १ लाख वर्ष पूर्व माना जाता है, २४ हजार श्लोकों में महर्षि जी ने संस्कृत भाषा में श्री रामकी मंगलमय गाथा की रचना की जिसमें मानव-जीवन की सभी संभावित दृष्टिकोण आगये हैं व मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी के आदर्श चरित्र के द्वारा विश्वमें मानव के सामने एक आदर्श उपस्थित किया। इसके पश्चात् वेद उपनिषद्, महाभारत आदि की रचना हुई पर ये सभी ग्रन्थ संस्कृत भाषा में थे जो कालान्तर में जनता की भाषा न रहकर एक समाज विशिष्ट की भाषा रह गई। युगक्रम चलता रहा व देश की आदि वैदिक संस्कृति का लोप सा हो गया। ऐसे समय आज से से ३९५ वर्ष पूर्व गोस्वामी तुलसीदास जी ने सरल हिन्दी भाषामें "श्री रामचरित मानस" की रचना की ताकि हमारा दर्शन व तंत्र सबको ज्ञानगम्य हो सके। गोस्वामीजी ने प्रारभं में ही लिखा है :—

"नानापुराणनिगमागम सम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ॥
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा—
भाषा निबन्धमति मञ्जुलमातनोति ॥"

"अनेक पुराण, वेद और आगम (तंत्र) से संमत तथा कुछ अन्यत्र से भी उपलब्ध श्री रघुनाथजी की कथा का तुलसीदास अपने स्वान्तः सुख के लिये अत्यन्त मनोहर भाषा में विस्तृत वर्णन करता है।"

इससे स्पष्ट है कि श्री रामचरितमानस की रचना के स्रोत पुराण वेदादि ही नहीं वरन तात्कालिक उपलब्ध सभी ग्राह्य साहित्य, दर्शन व तंत्र थे जिनसे उपलब्ध सामग्री के आधार पर मानवजीवन सुखी बनाने के लिये इस ग्रन्थकी रचना हुई। संवत् २०३१ (आजसे ५ वर्ष बाद) रामचरित मानस रचना की ४०० वीं जयंती विश्व भर में मनाने का आयोजन हो रहा है। तुलसी के उसी सर्व मंगलकारी ग्रंथ के आधार पर मानव जीवन को सर्वप्रकारेण सुखी बनाने व त्रिताप मुक्ति के आश्वासन को व्यवहारिक जीवन में प्रदर्शित करने के लिये महाराष्ट्रके सन्त डा० आर० डी० रानाडे के शिष्य स्व० श्री० पंडित बदरीनारायणजी त्रिपाठीजी योगीजीके गुरू हैं, को गुरू-कृपासे ज्ञान हुआ। गुरूमहाराज ने ४० वर्ष की अल्पायु में दीपावली के दिन सन १९४४ में देह त्याग कर दिया व अपने सहपाठी श्री हृदयनारायणजी को रामायण का यह आश्वासन—

**"राम भगति मनि उर बस जाके।
दुख लवलेस न सपने हुँ ताके ॥"**

को मनाव-जीवनमें उतारने का भार दिया और जून १९२९ में उन्हें दीक्षा दी जिस समय प्रभु-लीला के अद्भुत चमत्कार भी देखने को मिले जो 'योगीजी' की जीवनी वाले गुजराती व मराठी भाग में वर्णित हैं? उन्होंने ही उन्हें 'योगी जी' नाम दिया और तब से गृहस्थ होते हुए भी, भारत भरमें आप इसी नाम से जाने जाते हैं। 'योगीजी' सन्यासी नहीं है — दो विवाहित पुत्रियों के अतिरिक्त पत्नी और ग्रेजुएट पुत्र भी है।

आपका जन्म ६ जुलाई, १९०५ ई० में फैजाबादमें हुआ। प्रयाग में आपने बी० ए० पास कर कुछ काल तक कानूनका भी अध्ययन किया। तत्पश्चात कुछ वर्ष अध्यापन-कार्य करनेके बाद आप उत्तर प्रदेश सरकार के पुलिस विभाग में अनुवादक का कार्य करते रहे पर अपने गुरू महाराज द्वारा सौंपे हुए सेवा-कार्य के लिए समय से पूर्व ही १० फरवरी १९५६ में ऐच्छिक अवकाश ग्रहण कर लिया। तब से यानी गत १४ वर्षों से वे देश के कोने २ में घूम कर तीसों दिन बारह महीने सबसे छोटे दर्जे में यात्रा करते हुए साधकों से

With best Compliments from :
GENERAL & TIMBER PRODUCTS
239, Frere Road, Fort,
Bombay-1.
Tel. : **267612 , 263148.**

सम्पर्क बनाये रहते हैं। उनका प्रवचन सुनन के बाद शीघ्र ही समझ में अजाना कठिन है और समझने के बाद ही व्यवहारिक जीवन में उतरना सम्भव है। यह कोई दम्भ की बात नहीं पर योगीजी द्वारा समझाई हुई मानस की व्याख्या जिनके समझ में आ गई है वे शरीर में स्वास्थ्य, रोगमुक्ति, इन्द्रियों में शक्ति, चिन्ता मुक्ति का अनुभव कर विषम से भी विषम परिस्थितियों में अनासक्त रह अपनी सभी सांसारिक जिम्मेदारियों को निभाते हैं। ऐसे ही देशभर के अनेक साधकों में से लगभग ७५ साधक बम्बई में आकर अपनी साधना के अनुभव प्रकाश में लायेंगे।

"मानस" का व्यवहारिक दर्शन व तंत्र जैसा मैं समझ पाया संक्षिप्त में वर्णन करता हूँ।

संसार का कोई भी प्राणी दुख नहीं चाहता है। वह अपनी मान्यता के अनुसार हर प्रकार से सुखी-जीवन के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है। यही प्रयत्न उसके जीवन की कार्य-श्रृंखला की कड़ियों का निर्माण करता है। मोटे तौर पर सुखी जीवन की परिभाषा को निम्न पाँच वर्गों में बाँटा जा सकता है—शरीर में स्वास्थ्य, इन्द्रियों में शक्ति, मन में आनन्द, बुद्धि में निर्भयता तथा अहं में सबसे प्रेम। जैसा कि देखा जाता है प्रत्येक प्राणी के जीवन में इन पाँचों कामनाओं की पूर्ति थोड़ी-बहुत मात्रा में होती भी रहती है। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य न तो सदा रोगी रहता है, न सदा अक्षम, न सदा चिन्तित व दुखी, न सदा भयभीत और न ही सदा प्रेमाभाव से प्रताड़ित। परन्तु चूंकि मनुष्य की मौलिक मांगें बीमारी की सम्भावना-रहित अखण्ड स्वास्थ्य की, कमजोरी की सम्भावना-रहित अखण्ड (कार्य) शक्ति की, चिन्ता की सम्भावना-रहित अखण्ड आनन्द की, भय की सम्भावना-रहित अखण्ड ज्ञान की तथा द्वैत की भावना-रहित अखण्ड प्रेम की हैं, इसलिए उक्त पांचों बातों को समयानुसार पाकर भी वह सन्तुष्ट नहीं होता, अपने को सुखी नहीं मानता और उनकी प्राप्ति के लिए जान या अनजान में सतत प्रयत्नशील रहता है एवं तब तक प्रयत्न शील रहेगा, जब तक उन्हें प्राप्त न कर लेगा, चाहे इसके लिए उसे अनेक जन्म भी क्यों न लेने पड़ें।

हमारे यहाँ धार्मिक ग्रन्थों में जीवन को हर प्रकार से सुखी करने के आश्वासन दिये गये हैं और नाना पुराण निगमागम सम्मत श्री रामचरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास जीने इस प्रकार के आदर्श सुखमय जीवन की उपलब्धि इसी जीवन में प्राप्त कर लेने का न केवल आश्वासन दिया है, अपितु उसके आधारभूत सिद्धान्तों का विशद और वैज्ञानिक विवेचन तथा उन्हें जीवन में उतार कर निश्चित रूप से सफलता प्राप्त करने की प्रविधि भी बतायी है। 'लहहिं चारि फल अछत तनु'। इस शरीर के रहते इस जीवन में ही चारो फल (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) प्राप्त करते हैं। उन्होंने कथित धार्मिक जीवन व्यतीत करते हुए भी दुखी रहने वाले लोगों के इस कुतर्क का भी कि इस जीवन में कलियुग के प्रभाव स्वरूप, पूर्व जन्म-कृत कर्मों के फलस्वरूप तथा ईश्वर की कृपा न होने (प्रतिकूलता) के कारण इस जीवन में दुख भोगना अनिवार्य है, बड़े जोरदार शब्दों में खण्डन किया है—'कलि जुग सम जुग आन नहिं,' 'मेटत कठिन कुअंक भाल के' तथा 'रहति न प्रभु चित चूक किए की' और वे स्पष्ट कहते हैं कि ऊपर के तीनों कारण मिथ्या हैं—

"सो परत्र दुख पावइ, सिर सिर धुनि धुनि पछताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि, मिथ्या दोष लगाइ ॥"

अब जब कि यह स्पष्ट दीखता है कि मनुष्य के दुखों का आत्यंतिक विनाश इसी जन्म में सम्भव है, तो इस पर गम्भीरता से विचार करना है कि रामचरित मानस में वर्णित वे सिद्धान्त कौन से हैं तथा उनके प्रयोग की विधि क्या है, जिनके आधार पर मानव-जीवन सब प्रकार से सुखी हो सकता है।

रामचरित मानस एक ऐसा ग्रन्थ है, जिसमें ईश्वर पर विश्वास करने वालों तथा निरे भौतिकवादी विचारवालों

With best Complients from :
HIND CYCLES LIMITED
250, Worli,
Bombay-25 (D.D.)

With best Compliments from :
GUPTA AND COMPANY
Coal and Coke Merchants,
P—774A, Block 'P' New Alipur,
Calcutta-53, Phone : **45-8016**.

के लिए अलग-अलग दर्शन और तंत्र वर्णित हैं इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को पहले यह तय करना चाहिए कि क्या वह भावना प्रधान व्यक्ति है जिसे भगवान पर विश्वास है अथवा वह विचार प्रधान व्यक्ति है जो बिना समझे-बूझे कुछ मानने या करने में प्रवृत्त नहीं होता ।

भावना प्रधान व्यक्ति यदि भगवान के केवल अस्तित्व में विश्वास करने के अतिरिक्त उनके व्यापकत्व एवं प्रेरकत्व में पूर्ण विश्वास करें उन्हें जीवन में क्रियात्मक रूप दे सकेंगे, तो उनका कल्याण हो जाएगा तथा विचार प्रधान व्यक्ति यदि दृष्ट संसार के बारे में गम्भीरता से छानबीन कर उसके असली स्वरूप को जान सकेंगे अर्थात् उसका अबाधित ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे, तो उनका भी कल्याण हो जाएगा । दोनों मार्गों की उपलब्धियाँ एक ही हैं--सब प्रकार से सुखी जीवन की प्राप्ति–

'ग्यानिहि भगतिहि नहिं कछु भेदा ।
उभय हरहिं भव सम्भव खेदा ।।'

परमपूज्य श्री हृदय नारायण 'योगीजी' मानव-जीवन को हर प्रकार सुखी करने के आधारभूत सिद्धान्तों का केवल वैज्ञानिक विश्लेषण ही नहीं करते हैं बल्कि उनके प्रयोग की व्यावहारिक प्रविधि (टेक्नीक) भी प्रस्तुत करते हैं, जिनकी सत्यता एवं प्रामाणिकता के बारे में केवल इतना कहना ही अलं होगा कि मानस साधना मण्डल के सभी साधक–जो जीवन के विभिन्न कार्य-क्षेत्रों में हैं, उनके मार्ग-दर्शन में साधना कर ऊपर वर्णित उपलब्धियाँ प्राप्त कर पूर्णतः स्वस्थ, सक्षम, आनन्दमय तथा भयरहित जीवन-यापन कर रहे हैं । पूज्य योगीजी की विचारधारा का सार यह है कि यदि मनुष्य प्रकाशवाद अथवा विकारवाद के सिद्धान्त को भली प्रकार समझ कर अपनी कार्य-प्रणाली तदनुकूल बना ले, तो उसे निश्चित सफलता प्राप्त होगी । प्रकाशवाद भगवान को मानने वाले भावना प्रधान व्यक्तियों तथा विकारवाद दिखाई-सुनाई देने वाले संसार के बारे में ईमानदारी से छानबीन करने वाले विचार प्रधान व्यक्तियों का मार्ग है ।

जो व्यक्ति ईश्वर को मानता है वह उन्हें सच्चिदानन्द–शक्ति, ज्ञान और आनन्द का अखण्ड आगार कहता है, उन्हें सर्व व्यापक एवं प्रेरक भी मानता है । ऐसा व्यक्ति यदि भोजन से शक्ति, अध्ययन से ज्ञान और धन तथा धन से प्राप्त वस्तुओं में आनन्द मानता है, तो वह स्पष्टतः भगवान का निरादर करता है जिसका परिणाम रामायण में रोग, दीनता, वियोग आवागमन बताया गया है । इस निरादर को समाप्त कर भगवान का आदर करना ही प्रकाशवाद के सिद्धान्त का उद्देश्य है । इसी प्रकार विचार प्रधान व्यक्ति यदि ईमानदारी से हर चीज की तह तक खोज करेगा, तो इसी निर्णय पर पहुँचेगा कि संसार में जो जैसा दिखायी देता है, वह वास्तव में वैसा है नहीं और इस प्रकार छानबीन करने पर वह पायेगा कि भोजन शरीर का निर्माण करने वाला तत्व है, शक्ति देने वाला नहीं, दवायें रोगों के रक्षण दबा देती हैं, उनका समूल नाश नहीं करतीं, पुस्तकों के अध्ययन से विभिन्न सूचनाएं (उपयोगी भी) मिलती हैं परन्तु ज्ञान (प्रकाश) नहीं प्राप्त होता आदि आदि ।

जैसा कि परमपूज्य योगीजी कहते हैं, केवल कहते ही नहीं उसे साधकों के जीवन में सफलतापूर्वक उतार कर पुष्ट भी करते हैं–संतुलित आहार द्वारा अखण्ड स्वास्थ्य की प्राप्ति, युक्तियुक्त उपवास द्वारा अखण्ड शक्ति का जागरण, विवेकयुक्त सेवा द्वारा अखण्ड आनन्द की प्राप्ति, विधिवत ध्यान द्वारा अखण्ड ज्ञान की प्राप्ति तथा सर्व भावेन् आत्म समर्पण द्वारा अखण्ड प्रेम की प्राप्ति की जा सकती है ।

मेरे विचार में यदि हम ३ बातें याद रखें व दैनिक जीवन

With best Compliments from :

A WELL WISHER

में नियमित रूप से नारायण-अर्पण-भाव से जीवन में प्रयोग करें तो उसका लाभ शीघ्र मिलने लगेगा व धीरे-धीरे सब रोग, आसक्ति व भय से मुक्त हो आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगेंगे :—

१—भोजन का चतुर्थांश कम करके वितरण करना

२—आय का दसांश वितरण करना

३—समय का कम से कम चौबीसवां हिस्सा, जिसमें कुछ समय सुमिरन में तथा शेष सेवा में लगाना।

मेरा विश्वास है कि इसका व्यापक परिणाम होगा और बापू के राम राज्य का सपना साकार हो सकेगा।

प्रार्थना

वह प्रेम दो हमें प्रभु जिससे कि तुम्हें पायें।
तज करके मोह—माया केवल तुम्हीं को ध्यायें॥
जब जब हमें दबायें ये भोग वासनायें।
वह शक्ति दो कि जिससे अपने को हम बचायें॥
ऐसी हो चाह सच्ची जो चैन न लेने दे।
प्रियतम तुम्हें रह रहकर हम हृदय से बुलायें॥
सबसे विरक्त होकर अनुरक्त हों तुम्हीं में।
केवल सुनें तुम्हारी, अपनी तुम्हें सुनायें॥
चिन्तन में तुम्हारे ही तल्लीन चित्त होकर,
जब चुप न रह सकें तब तुमसे ही रोये गायें॥
जब तक हमें शरण में स्वीकार तुम न कर लो,
हम 'पथिक' इसी धुन में अपना समय बितायें॥

— साधुवेष में एक पथिक

●

हर पंक्ति एक मंत्र

—श्री शिवशंकर मिश्र

देहरादून के निकटस्थित यह तपोवन अपने नाम के अनुकूल ही था। हम लोग जितनी देर इसमें घूमे, लगा किसी और ही लोक में विचरण कर रहे हों। घूम कर लौटे तो फिर बाबा की कुटी पर रुके। चलते समय मैंने बाबा से कहा—आशीर्वाद दीजिए। दद्दा ने कहा—दीक्षा दीजिए। भाभी ने विनय की—कोई गुरूमंत्र दीजिए, बिटान ने अनुरोध किया—कुछ ऐसा बताइये जिसे पढ़ते-पढ़ते मन न अघाये, जितना पढ़ा जाये उतना ही नया रस मिले। जीजी चुप बैठी थीं। हम सब अपनी बात कह चुके तो उन्होंने बाबा के चरणों पर माथा टेकते हुए कहा—जिंदगी की सांझ है, मेरी। न राम में मन लगता है न आराम में, न काम में न विश्राम में। कहीं मन लगा दें, जिसमें खो जाऊं, सब कुछ भूल जाऊं।

बाबा ने सरसरी दृष्टि हम लोगों पर डाली। अपने हाथ की एक पुरानी, मैली तथा फटी-सी पोथी को माथे से लगा कर सम्मानपूर्वक यथा स्थान रख दिया। फिर बोले—आप सबके अनुरोध भिन्न-भिन्न हैं, शायद अभिलाषा, आकांक्षा और कामना भी भिन्न-भिन्न हो। पर मैं क्या करूं ? मेरे पास तो हर बात का एक ही उत्तर है, हर शंका का एक ही समाधान है, हर जिज्ञासा का एक ही उत्तर है और सबके लिए, चाहे वह जिस भाव से आये और जो चाहे, एक ही निवेदन, अनुरोध और उत्तर है। इसके पहले कि हम लोग अपनी जिज्ञासा व्यक्त करें, इस अनेकता में एकता के विषय में बाबा ने वही अपनी पोथी, जो कुछ समय पूर्व वह पढ़ रहे थे, सामने कर दी। फिर स्पष्ट रूप से कहा—यह रामचरित मानस यानी रामायण है।

हम लोगों को आश्चर्य मुग्ध देख कर बाबा कहते गये—मैंने जीवन में इसे पढ़ा है, केवल इसे ही और मुझे लगता है कि सब कुछ पढ़ डाला है मैंने। यही मेरे लिए जीवन में शाश्वत रहस्यों की कुंजी है। इसी को मैं भृगुसंहिता मानता हूं, इसी को ज्ञान-कोष। इसकी हर पंक्ति एक मंत्र है। बाबा गंभीर स्वर में कहने जा रहे थे—यदि मुझसे कुछ जानना चाहते हो, मांगना चाहते हो, तो मैं रामचरित मानस दूंगा। इस कल्पवृक्ष को पा लेने पर तुम्हें कुछ पाने के लिए न रह जायगा।

कई वर्ष हो गये इस घटना के। तब से बहुत-कुछ हेरफेर हो गया है इस जीवन में। पर एक विश्वास ज्यों का त्यों है जो अब भी दृढ़ से दृढ़तर होता जाता है प्रति दिन। वह यह कि रामचरित मानस की हर पंक्ति एक मंत्र है। आज जब मैं मानस के पृष्ठ उलटता हूं और उनकी पंक्तियों पर दृष्टिपात करता हूं तो मुझे लगता है कि मैं मंत्रों के बीच आश्वासनों की छाया में आसीन होऊं। ये ही आश्वासन मूल्यवान थाती के रूपमें मेरे जीवन को गरिमामय बनाये हुए हैं।

———

RAM CHARIT MANAS

Ram Charit Manas of Tulsidas is a great book and good book. "A good book", said Milton, "is the precious life-blood of a master spirit embalmed and treasured up on purpose to a life beyond life". Such has been the history of Ram Charit Manas in India during the last three or four centuries. The book has given solace and comfort to millions of our country men in their everyday life. Balmiki wrote his Ramayan in Sanskrit, and as the name Sanskrit implies, it is intelligible only to the cultured few. But Ram Charit Manas has brought the nectar of the life-story of Rama to the door-steps of the average villager in the whole of Northern India. It has been a book for ennobling and elevating the life and character of millions of Indians in this land of ours. The famous historian Vincent Smith made an important observation in his book., "Akbar : The Great Moghul". He said, "In the sixteenth century the greatest Indian was Tulsidas and not Akbar." I think no better praise could have been made about Tulsidas. The memory of Tulsidas has been engraved on the tablets of eternity.

Tripurari Chakravarti.

"When the electric current passes from high voltage to low voltage through the transformer, it becomes a source of illumination and industrial development. Similarly the mind also becomes a source of divine ecstasy when its desires are minimised through a rigorous self-discipline.

A slight leakage in the electric wire causes one's death by its shock, so does the absence of celebacy ruin the sublimity of human life.

When the lightning strikes a house the copper wire on its roof protects it by transmitting the current underneath the ground. In like manner, too, on encountering the difficulties a Sadhak protects his mind by offering them to God.

As the electric wires receive the sound waves and reproduce them through the radios, thus a devotee gains illumination from his Inner Self and enlightens his mind.

The speaker speaks through all the loud-speakers and it is God alone who sees, speaks, and listens in all creatures.

With rubber insulation the electric wires cease to give shock,
With the insulation of satsang the Sadhak is relieved of grief.
The electric wires are the carriers of electric energy.,
the Mahatmas are the messengers of spiritual knowledge.
After wiring is completed in the house, one gets light simply by switching on.
Similarly a fully disciplined aspirant attains self-illumination instantaneously.
Because of loose connection the bulb is not lighted,
Because of the unsteady faith in his Guru, the disciple does not make spiritual progress.

As a number of enamelled wires carry the same electric current in the electric motor, ONE SELF manifests Him in all beings and actions.

DEVIDAAYL CABLE INDUSTRIES LTD.
Gupta Mills Estate,
Bombay-10

A CLARION CALL

—**Shri T. P. Goyal.**

Is it possible for India to regain her pristine glory as leader of the world and re-establish human values and moral virtues instead of suffering periodical humilation abroad ? Can we stand on our own legs, by being self-sufficient and a developed country with our own resources instead of depending on external help which has so many strings attached ? Can we feed our population with our own foodgrain production instead of depending on the mercy of gift supplies ? Is it possible to create a band of selfless people who can forget their ego and work with devotion for the service of the motherland ? Is it possible for us to improve our image of a poor nation with begging-bowl in hand devoid of self-respect ? Can we, Indians, live as brethren without bickerings and bitterness and hatred on the grounds of caste, creed, religion, language, provincial or sectarian considerations? Can we have national integration ?

The answer to all these questions is YES, provided we can have a band of heroes who, when convinced of the glory and greatness of India, have the courage to live up to the high ideals in their daily lives free from stress and strain of split personality.

The nation is passing through a very critical period when need for rehabilitation of moral virtues is everywhere being emphasised. Essential teachings of all the religions of the world are the same. If in Hinduism it is 'Tapa', 'Sewa' and 'Sumiran' in Islam it is Roza, Zakat and Namaz and in Christianity it is Fasting Charity and Prayer. It, therefore, behoves us to forget petty differences on any account and work unitedly for the country.

To give practical dimensions to the fundamental tenets of "Shri Ramcharit Manas" which is the essence of all scriptures given in a language easy enough for anyone to understand, supported by all the scriptures of the world, the five principles, viz. Proper Feeding Rational Fasting for unfailing Health and Vibrant Vitality. Discriminate services for abiding Happiness, Methodical Meditation and Unconditional Surrender for Profound Knowledge and Universal Love, MANAS SADHANA MANDAL has organised this Convention where sadhaks or followers of these principles in their

lives from all over India are taking part to share their experiences with the people of Bombay.

Bombay has always given the lead to various movements in the country. We are celebrating the birth Centenary of Mahatma Gandhi who lived what he said and believed and whom we worship as the Father of the Nation.

Most of us do realise that many of our ailments are due to overeating; worries due to selfishness and tendency of hoarding and lack of spirit of sacrifice. If we start proper feeding and eat just what we need, we will not only rid our bodies of sickness and disease and have good riddance of the bad material and solve the nation's food problem, but will get tremendous energy which will increase our efficiency and power of concentration, clarity of vision with manifold increase in output of work . Distribution of a part of income or wealth for a cause dear to us in service of NARAYAN who is everywhere and in everyone rids us of all sorts of worries and there would be no patients of heart trouble and the like. Some time spent daily and regularly in meditation and prayer with devotion to the Lord whom we must constantly remember, to forget ourselves and merge with the Supreme Reality—God—Divinity—Brahman or Allah or Lord, whatever name one may like to call, would make us real sons whom Mother India is anxiously awaiting.

•

NINE-FOLD WAYS OF BHAKTI

To be a man or a woman, Caste name and ashrama are not pre-requisites for being devoted to me.

Those who have no devotion for me can never see me with the help of sacrifice, charity, penance or Vedas. Therefore, O lady I shall tell you the means of my devotion.

The first means is association with pious people.

The second is to narrate the stories of my birth and actions.

The third is to enumerate my virtues.

The fourth is to discuss and understand the commentary on my speeches, like GEETA, etc.

The fifth is to serve your Guru with all devotion.

The sixth is, pious nature, practice of YAMA-NIYAMA and to be delighted in my worship.

The seventh is to see me in all beings.

The eighth is to worship my devotees more than me.

The ninth is to be unattached with the external world and to practise self-control, etc.

The Bhakti thus attained results in the experience of my reality which in turn leads to Liberation in this life.

Therefore Bhakti is the cause of Liberation.

..(**Adhytma Ramayan**).

•

'YOGIJI' AND I

— **M. M. Sahai**, M.A.

I first met Yogiji over two decades ago. Yogi Shri Hriday Narain was sitting on the open terrace of his Lucknow residence. He was wearing only a loin—Cloth and had around him quite a large number of books and several cloth bags. I was taken to him by a friend in search of a cure for threatened attack of hernia, the first symptom of which was a slight pain in the abdomen. Doctors who were consulted had told me there was nothing to worry about. If I got hernia, they would just operate it.

Yogiji talked to me in his simple confident manner as if he had known me for a long time. It was a measure of his simplicity that even before he had listened to me, he entrusted me with some work that seemed to have come up in his mind just then. His advice to me was very simple. The intestines have to be strenthened and relieved of load. He explained in just a few sentence this "one—main—meal plan." By God's grace, I accepted it whole-heartedly and was cured of my trouble. In addition to physical benefits, this change in diet suddenly relieved me of my lustful desires in a miraculous manner. This state of blessedness was with me for a long time.

A few days later, I invited Yogiji to my house to give a discourse on his interpretation of the Ramayan of Sant Tulsidas. Shri Hriday Narain did not have the look or the garb of a Yogi and this was a disappointment to my wife and a few others present. I had invited a number of journalists whom Yogiji did not impress by his looks or discourse. They and I tried to understand his message but what Yogiji said was so far removed from our norms of thinking that we failed to understand him. I was to know in the coming months why Tulsidas wrote that although his 'GURU' explained his teachings again and again, Tulsi could grasp only a fraction of it. How then could we get it in one sitting !

Those who visited the Kaiserbag fruit and vegetable market in Lucknow those days saw a tall lean person there every morning on his way to office with half a dozen cloth bags hanging from the handle of his bicycle. He would purchase quite a lot of fresh fruits and some vegetables for salad. This was none other than our Yogiji. He carried the load to his office day after day for the benefit of his colleagues who had adopted his one—main—meal plan and took fruits and salad at mid-day.

Early in his life, Yogiji laid stress on nature cure to solve bodily ailments but later he became aware of its shortcomings and came to regard it as just another method of treatment. Later Yogiji began to lay stress on fasting, prayer and charity, the three basic fundamentals of all great religions. He believes that the three must go together for the integrated development of human personality.

Shri Hriday Narain lays no claim to sainthood. He does not even pretend to be a saint. Far from it, he describes himself as an humble student of the Ramayan and nothing more. He is always prepared to examine what others have to say and to learn from them. He has no airs about him. The name Yogi was given to him by his Guru, Shri Badri Narain Tripathi, M.A., after his initiation.

Yogiji has no time as his own; one and all are welcome at any hour of day or night. No man is small for him and none big., for all can claim him equally as their own and take hours of his time to present their problems and seek his guidance.

Yogiji is not anxious to address large gatherings. In fact, he avoids them, for he believes in dialogue between two persons—the guide and the seeker. It was iudividuals, Parvati, Bharadwaj and Kak Bhasund, who asked for and got the Ramayan. So, Yogiji is happy to meet the individual who has a problem in his life to be solved. He alone profits who is prepared to unlearn and begin anew, for Yogiji's interpretation of the Ramayan is esoteric in the extreme. It is unfolded slowly as the seeker performs one experiment after another with his body and mind as the laboratory. Therefore, many have rejected him having made no serious attempt to understand him. His is the way to the Lord and only those will tread it who have been "Called". May be, dear reader, you are one.

Like Mahatma Gandhi, Yogiji believes that the Ramayan and the Mahabharat depict the struggle between good and evil in the mind and heart of man. This is not to doubt the historical character of these Epics but to bring out their double purpose—to present history in the most pleasing manner and simultaneously to give a philosophy of life and society. Those who cannot go to the meaning behind the written words enjoy only the story part. Between the lines and behind every episode there is a treasure to be unfolded by the Guru to the disciple. Yogiji got the basic knowledge from his Guru to whom the light of God came early in youth but who was called early to his heavenly abode.

Yogiji is not out to reform the world. He is only carrying out the wishes of his Guru who had said that after his death he would speak to the world through Yogiji. So Yogiji has been travelling on and on, day after day, month after month and year after year for 14 years, meeting people and trying to serve them. It is an endless journey. Not many listen to him and few follow him. But this does not effect Yogiji for he is not out in search of praise or recognition. He is trying to change lives. Many a time during his discourse he will put out interpretations of events in the Ramayan which he had never even thought of. This happens for he is speaking under inspiration. That is why he wants silence during his discourses.

Yogiji is a householder, wife, son and two married daughters, Early in his life, the contract with his Guru gave him such a detachment with the world that the death of a son and a daughter within the space of six months left him unmoved. Even the death of the Guru, whom he dearly loved and respected, did not unsettle him. The Guru had given advance notice of his end but Yogiji continued non-stop Ramayan and Bhajans around the death-bed till end came at 2 a. m.

Yogiji spends a couple of days every month with his family but the actual time he is able to spend with his wife and son is very small., for he has his visitors and discourses as usual. Yogiji calls his disciples as just colleagues or co-aspirants. His charity knows no limits, depending on what he may have in his pocket at the moment. This is naturally disliked by his wife who herself practices fasting and prayer but is opposed to Yogiji's charity which, according to her, is indiscriminate.

Yogiji has a liking for books. He is ever purchasing new ones although he never finds time to read them but his friends are ever asking for them and often never returning them. He has lost at least 500 books in this way. After taking his B.A. degree, Yogiji joined law for the elders in the family wanted him to practise at the bar. To their disappointment, Yogiji gave up law after a year for he was convinced that it was not possible to practise law without taking recourse to falsehood. He took voluntary premature pension about five years in advance so that he could devote his time to fulfill the mission entrusted to him by his Guru.

Fairly advanced on the wrong side of sixty,

(Contd. page 3)

THE ESOTEFRIC MEANING OF THE TEN AVATARAS

—**Swami Chidananda**

The prayer Asato Maa Sat Gamaya,

Tamaso Maa Jyotir Gamaya, Mrityor Maa Amritam Gamaya epitomises the purpose of the Lord's Creation, the grand culmination of going back into that Transcendence out of which these countless names and forms have been evolved as a blissful act of play by the One without a second. The plan of the Divine will is that out of the One infinite names and forms may flow out and for a time there may be a blissful play of this divine multiplicity and then once again, when the Divine wills, there may be a going back into the pristine glorious source.

Multiplicity is the antithesis of eternal Truth which is ever One. It is unreal. It is in the nature of darkness. This cycle of becoming and perishing, birth and death, is the characteristic of this world-play. Thus ,a going back into the original grandeur of **Brahman** means an ascent from this unreality **into that** Supreme Reality, from this darkness of ignorance to the Light of Knowledge, from this cycle of birth and death into that state where there is Immortality. This process is being worked out by all evolved beings.

From time to time great ones have come, who have systematised this Cosmic plan and formulated a method so that individuals in whom this purpose has been awakened may make use of this method and reach the goal quickly, that they may consciously achieve this process in themselves. These methods have come to be the various religions of humanity. Gradually, these religions have had a greater and ever-widening group of followers. These great groups exist as the great section of Hindus, Buddhists, Muslims, Christians, as so on.

But the one inescapable fundamental fact about these religions remains that all these various religions are but methods which seek to work in some way or other the ascent of man from birth and death to Immortality.

The ten Avataras of the Lord, which are described in the Scriptures, are an order calculated to teach us a sublime spiritual lesson.

The first of the ten Avataras is Matsya (Fish) Avatara. The fish lives in water, shut out from the two elements that we consider as most important for the preservation of life pure air and sunlight. And yet if you liberate the fish from its aquatic prison and place it in life-giving sunshine surrounded by fresh air, it is greatly distressed and would die in a few minutes.

Similarly, the man who is sunk in worldliness who is worse than a beast, cannot bear the sunlight of godliness and fresh pure air of divine life. He reveals in his own dark region deprived of all spiritual light.

The second Avatara is the Kurma (Tortoise) Avatara. The Tortoise lives in water, but is able, to an extent, to live on the shore, too. This corresponds to the first stages of man's career from bestiality to humanity and from humanity to divinity. He likes to live sunk in ignorance, but does not seriously mind the light of truth.

Yogiji knows no fatigue. He began the Navratra fasts on water only about forty years ago and although one may see him eating a full and heart meal at any time at the insistence of his disciples, he eats very little if left to himself.

In the final analysis, Yogiji, believes in 'SHARANAGATI', or surrender to the Lord. His surrender has certainly earned rich dividends for, without doubt, he has been accepted by the Lord as His. He is not a Yogi in the technical sense of the word, but a 'BHAKTA' or servant of the Lord. This service has taken many forms, the smallest being the distribution of sweets, lemon drops and baloons to children.

Third comes the Varaha (Boar) Avatara. Here the Evolution has taken the Jiva completely away from the worse-than-beast stage, away from the aquatic prison; and the boar, though considered as the lowest among the animals, is yet an animal and lives on mother earth, basking in sunshine and breathing fresh air.

The fourth Narasimha (the Manlion) Avatara rerpesents the crown of animal-creation; the lion is the king among animals. And, the composite personality of Narasimha (the man-lion(is suggestive of the beast in man. What is the great characteristic of this Avatara? It was taken with the only purpose of killing; it was a great great violent Avatara. Here, we have the man who is trying to transcend the bestiality, but who is yet so gross in his nature that violence and the spirit of destruction characterise him.

Fifth comes the Vamana (the Dawrf) Avatara. The animal nature is completely gone now. The person is completely human. But he is greatly limited. He is a dwarf. His capacities are greatly limited. He got himself lodged in such narrow limits that he goes to a king and and begs of him three foot-measures of land. Vamans's assumption of the universal form suggests to us that the same man is capable of transcending all limitation and realising his unity with Brahman.

Sixth we have the Parasurama Avatara where we have the Man. Now bestiality is completely gone; and humanity has supervened. We get three object-lessons from Parasurama's life. In obediance to his father's command, he cut off his mother's head. His brothers had refused to do this. But Parasurama had perfect faith in his father. This faith gave birth to implicit obedience and perfect subservience to the higher will. In the spiritual path, the Guru is our father. We should learn to subserve our life to his will. We should have implicit obedience as our great motto. This can come only out of perfect faith, faith in the divinity of our Guru. Parasurama had it. And, therefore, pleased with his obedience, when his father asks him to choose a boon. Parasurama without hesitation says "Let my mother live," she gets back her life.

Then Parasurama killed many great kings, who were proud, haughty and were inimical to Brahmins. In this description, we have the perfect pictures of a mixture of Rajas and Tamas. This is the very antithesis of Sattva, represented by the Brahmin. In our Yoga Sadhana, we should never forget that a certain amount of destruction is absolutely necessary. Unless we destroy the needs, the beautiful crops will not grow. Unless we annihilate our bestial nature and sublimate the human nature, we cannot rise into our divine nature. Are kings bad then? Is Rajas bad then? No. just as righteous kings are an essential to the world as pious Brahmins, Rajas properly directed and canalised is as important to Sadhana as Sattava. Unrighteous kings can cause havoc. Rajas mixed with Tamas not only veils the Atman but makes man stray into the lethal chamber of lust, anger and greed. This must be completely rooted out, if we are to progress towards establishment in sattva. The third great lesson we learn from Parasurama's life is this : The Kamadhenu (the milch cow),

With best Compliments from :

THE SCINDIA STEAM NAVIGATION COLTD.
"Scindia House", Dougall Road,
Ballard Estate, Bombay-1.
Gram : "JALANATH" Phone :**268161.**

TOSHNIWAL BROTHERS PRIVATE LTD.
198, Jamshedji Tata Road, Bombay-20.
M. G. Road, Ajmer. 85-A, S. B. Road, Calcutta-26.
3E/8 Jhandewalan Extn. New Delhi-55. Round Tana Mount Road, Madras-2.

which was in the possession of his father Jamadagni Rishi, is stolen by a king. In order to avenge this Parasurama kills the kings. He thinks his father would be pleased with his conduct, but he finds a different attitude in his father. He severely reprimands him : "You have forgotten your own Dharma. You are a Brahmin, and the foremost duties of a Brahmin are forebearance and forgiveness. We should never retaliate. Bear patiently with everything. Since you have swerved from you rduty, as an expiation, you should undertake a countrywide pilgrimage.' Parasurama had to go round Bharatavarsha on such a pilgrimage. From this we learn that we should first completely annihilate our bestial nature and then, when we have become human being truly, we should learn to subserve outselves to our Guru, and then we should destroy all the evil propensities in us that stand in the way, as would be seen from the Rama Avatara.

In the Rama Avatara, the Seventh, Sri Rama killed many Asuras under the instructions of his Guru Visvamitra, and by his grace Sri Rama followed Sattvic virtues like truthfulness, love, compassion and purity. Similarly, we should serve our Guru with love, sincerity and obedience for attaining liberation or God-realisation. Then comes the eighth Krishna Avatara, which is also called the Purna Avatara. Sri Krishna served humanity in all respects without distinction of caste, creed or sect. For instance, He served as an ambassador, and went on a peace mission to avert the war between the Pandavas and the Kauravas. He washed the feet of guests who attended the Rajasuya sactifice performed by Yudhishthira and also cleaned the plates of the guests after their meals. He also served as a charioteer to Arjuna during the Mahabharata War. Sri Krihna practised and preached the gospel of selfless service, in the Bhagavad Gita. Thus, the Kirshana Avatara provides the spiritual aspirant with all necessary teachings to attain one-ness with God.

The ninth is the Buddha Avatara. Bhavavan Buddha taught non-injury (Ahimsa) in thought, word and deed. Lord Buddha showed to humanity that by the practice of even a single divine virtue, *viz.*, Ahimsa, one can attain God-Realisation. The Scriptures say that the last Avatara, the tenth, is the Kalki Avatara, which is meant for removing the ignorance in humanity. So long as one is in sleep, one is not aware of the waking consciousness. As one has to awaken into the waking consciousness so as to be freed from the sleep, even so humanity has to be awakened from its slumber of ignorance to the waking consciousness of Divinity, which is the purpose of Kalki Avatara. The Lord says in the Bhagavad Gita-"Sambhavami Yuge Yuge"— at every juncture He incarnates Himself to teach mankind the correct path to evolve into Divinity. The ten Avataras teach us to negate the animal in man and to transcend the human into the divine by leading the Divine Life of selfless service, universal love, purity, truthfulness, sincerity and adaptability.

With best Compliments from :

Messrs. INTER DOMINION TRADING AGENCY
25/27, Netaji Subhas Road, Calcutta-1

Mr. and Mrs. B. D. Sharma.
13, Kabir Road, Calcutta-26.

Gram : RAIANI Tel No. **381** (3 lines)
DAMODAR MANGALJI AND CO: (PVT.) LTD.
P. O. Box 32, Panjim—Goa,
(Miner—Owners—Exporters—Importers)
Branches : Vasco da Gama—Sanquelim—Sanvordem.

H. GOKALDAS AND COMPANY
Nitin Dye-Chem Industries Dyes & Chem. Merchants
Associates : **RASHMI NOVELTY WORKS,**
Mfgs. in Presentation Novelties and Brassware Articles
70, Garibdas Street, Vadgadi, Bombay-3 B.R.

WAY TO GOD

—Shri Shivanand shastri

Generally, the three major paths trodden by the wise Hindus for attaining God are the path of devotion, the path of yoga and the path of knowledge, Vedanta or Advaita philosophy. A devotee searches for and serves God in a temple, a yogin searches for God and meditates on Him in his own body, while a Vedantin searches for and sees God in every atom of the world. While a devotee is interested in a search of the personal God, a yogin in the search of the immanent aspect of God, a Vedantin in the search of the transcendent aspect of God, a truth-seeker is very much interested to know God in all the three aspects. Therefore, he engraves the quality of warm affection for God on his heart, the state of serenity on his mind, sharp-sightedness on his intellect and with the aid of these three human qualities, he experiences everywhere the very essence of the Supreme. Lord Krishan also emphasises that "Among thousands of people some rare soul strives to know God and of those striving souls, Scarcely one knows Him perfectly."

Perfect knowledge of God is not possible without perfect intelligence. Perfect intelligence is not possible without perfect mental equipoise, and equilibrium of the mind cannot be attained without regular practice of yoga and complete detachment. Hence, a truth-seeker should be determined to cultivate Samyama-the practice of the three together i. e. Dharana (contemplation), Dhyana (mediation) and Samprajnata or Savikalpa Samadhi-lower concentration. Maharshi Patanjali, the founder of Raja-Yoga, counts the first five disciplines as the indirect means of yoga or enlightenment, because they prepare a practitioner for Dharana contemplation; and the last three called Samyama-attainment of perfection in contemplation, meditation and lower concentration—as the direct means of the highest wisdom that enables a truth-seeker to know God perfectly.

Complete detachment is possible only by realizing the vanity of worldly objects. The wise have said "All are suffering-the body is suffering, because it is the temple of diseases; the mind, the senses and the sense-objects are also suffering, because they lead to sufferings; pleasure is an episode in life like delight in a dream which is followed by disappointment in the waking state. Every person is liable to fall a prey to the torture of the three kinds of pains-i. e. pains caused by diseases, pains caused by the celestials and pains caused by nature. Therefore, emancipation of oneself from all pains and sufferings must be the goal of one's life. The root of all the sufferings is the cosmic illusion and the confusion caused thereby. The psycho-mental life, in fact, belongs to the intellect, the mind and the senses, but the individual takes it as belonging to his Self. As long as a person confuses Spirit, with the psycho-mental states, he remains subject to all pains from birth to death.

By constant practice of Smayama of Raja-Yoga, mental modifications cease, the intellect along functions and by a long practice of detachment to both joy and sorrow the intellect itself is Nirvikalpa or Asamprajnata Samadhi—the highest concentration, observed in the Supreme and the Soul shines perfectly identical with Brahman, the Absolute. Thus the Spiritual aspirant attains the highest perfection and becomes one with God.

With best Compliments from :

DALMIA CEMENT (BHARAT) LTD.

Dalmiapuram P. O. , Tiruchirapalli Distt.
Manufacturers of : '**Rockfort**' Brand
Dalmia Portland & Pozzolana Cements, Also
Mine-Owners and Suppliers of :
High Grade Iron Ore for Export.
H. O. : 4, Scindia House, New Delhi-1.

HINDUISM

ITS FUNDAMENTAL CHARACTER AND GOAL

(**Shri C. Parameswaran, New Delhi.**)

At the outset, it seems proper to take note of the fact that 'Hinduism', strictly speaking, is the name given to the religion followed by 'Hindoos' or 'Indoos' as they were originally called by other people. Unlike every other religion, which assumes its name after its founder, there is no record of the "founding" of Hinduism in the annals of the world. It is generally admitted that it has a prehistoric beginning; that its teachings, known as the **Vedas,** were orally transmitted from generation to generation. Later these came to be recorded in the four books of the Vedas which preach immutable and eternal truths valid for all time and all countries.

It is this religion of the Vedas which later came to be popularly called Hinduism, and which true to the dynamic nature of the truth it symbolised, has sent forth many a ramification. It is a body of teachings by which is predicated the Absolute Truth of God, the Supreme creator and Lord of all and man's relationship with God and Nature. The 'Name' it calls itself by is DHARMA, a universal guiding principle of human life and progress. Hinduism, fundamentally, is thus a concept of the way of life of being and becoming.

According to Hinduism, the one truth, the one Principle, pervades all life, Every human person, in his essential being, is immortal. He is thus a distinct entity in his own right. It is this fact of his being a distinct entity with a natural right to immortality that brings him face to face with his Dharma. Man cannot shirk or run away from it without at the same time adding to the accumulated heap of misfortunes and sorrows. Hinduism stoutly rejects all ideas and theories of vicarious redemption or salvation through proxy.

Hinduism, initially takes due account of the fact that human nature is made up of two distinct categories of instinctive urges—animal and divine. There are powerful innate urges in man which, enslave him to the pleasures of his senses and impel him to covet, to amass, to dominate, to deceive, to alienate and divide, to destroy, and to subjugate other people and do many other things for his personal self-exaltation—also there are urges inherent in every man which inspite him to love, to give, to trust, to help. to unify and unite, to create and to acquire knowledge. Though these qualities are in him by nature, he can distinguish the one category from the other as he is endowed with 'BUDDHI, or the faculty of discrimination. If he clings to the propitiation of his animal nature, he comes to thwart, to neglect and deny the truths of the divine in him, thereby doing woeful harm not only to himself but also to the society of which he a part . If, on the other hand, he identifies himself with the divine in him, then a battle royal follows. The waging of the battle is a most vital and creative part of personal self-disciplines. The elements of these disciplines have been determined as the result of experiments and study. They are the five 'YAMAS' and the five 'NIYAMAS'. These ten elements of discipline appear in a new form as a result of the study of the Ram Charit Manas and the experiments carried on by

With best Compliments from :

THE JAIPUR UDYOG LTD.
Manufacturers of :
TRISHUL BRAND CEMENT
Registered Office. Sawaimadhopur Rajasthan
New Delhi Office. P. N. B. House, 3rd floor, 5, Parliament Street, N.D. -1.

THE INDIAN RAYON CORPORATION LTD
Industry House,
159, Churchgate Reclamation, Bombay-1.
Works : **Veraval** (Gujarat)

Messrs. GANESH TRADING COMPANY,
Mineral Merchants and Commission Agents,
Rajaji Nagar, P. O. Ariyalur

'Yogiji' (Shri Hriday Narainji) and his friends. The vital disciplines according to Yogiji are : (1) proper feeding; (2) rational fasting; (3) discriminate service; (4) methodical meditation; and (5) unconditional surrender to the supreme Lord. What Yogiji aims at is the achievement of the goal of an integrated development of the personality of individual aspirant "on all the five planes" of his being—the physical, vital, emotional, intellectual and spiritual. Man attains (1) unfailing health, (2) vibrant vitality, (3) abiding happiness; (4) profound (true) knowledge, and (5) universal love by practising the five fold path given above.

Closely following the line of prescription and regulation of discipline in individual life, and as complimentary to it, is the guidance which Hinduism lays down for the organisation of society, known as 'VARNA VYAWASTHA' which is based on men's inherited and cultivated vocational or functional aptitudes. An American thinker and author, Gerald Heard, who made an extensive study of the Indian social system, has described the 'VARNA VYAWASTHA' as the "organic democracy". And he defines this organic democracy as or the rule of the people who have organised themselves in a living, and not in a mechanical relationship. Instead of all men being said to be equal, which is a lie, all men are known to of equal value; all would find a position in which their potential contribution could be released and their essential growth so persued." Heard calls the four 'VARNAS' by the names : the seers (Brahmins), the politicians (Kshatriyas), the technicians (Vaishyas), and the coherers (Shudras). "These four classes", Heard says, " are distinguished by unmistakable psychological characteristics which suit them to their particular purpose, function and place. And the normal existence and functioning and orderly development and progress of societies are possible only if this 'VARNA' system of social organisation is recognised and acted upon." But Hindu society as it exists and acts today is a complete travesty not only of the 'VARNA VYAWASTHA' but also of every great principle which the Hindu religion upholds for the well being and advancement of man and his society in unity and fellowship. Another aspect of the fundamental teaching of Hinduism, as noted earlier, is its emphasis on man's relationship with Nature. In the case of several other religions the position is that man is a unique creation; that he is the lord of every thing created in the world, including animals and birds; that he is entitled to use them to satisfy his needs. But man's relationship with Nature, according to Hinduism is that of kinship. The emphasis is on the unity of Nature, on the value of all created life. It is true that the fundamental position of Hinduism is that it is in the nature of man that he can achieve self-realization which is not possible for lower forms of life to achieve. But the same spark of Divinity exists within and animates all created beings. Hence human kinship with animals. It is perfectly in line with this position that Hinduism lays no less emphasis on the unity of all men, of all people, and of all nations of the world. Stress is laid not so much on tolerance as on assimilation and synthesis of diverse civilisations such as Aryan and Dravidians.

Another important characteristic of Hinduism is its open attitude to science, Hinduism is not a creed; it steered clear of all dogmatic claims. No serious conflict between Hinduism and science is known to exist. The discovery

With best Compliments from :

KOTA SERVICE STATION,
Jhalawad Road, Kota-1. (Rajasthan).

THE OUDH SUGAR MILLS LTD.
Regd. Office: Industry House, 159, Churchage Reclamation, Bombay-20
Sugar Mills : Hargaon, Dist. Sitapur, U. P.
Vanaspati Mills : Vanasdapeth, Akola, C. Rly, (Maharashtra State).

SAH BROTHERS
603/4 Niranjan 6th floor,
99 Netaji Subhas Road, Bombay-2.
Distributors of :
The Indian Oil Corporation Ltd.
The West Coast Paper Mills Ltd.
The Andhra Pradesh Paper Mills Ltd.

of Copernicus, that it is the earth that rotates round the Sun, took many decades before it could be stated publicly in Europe. And when it was announced it gave a "tremendous shock to the European world of belief." But Aryabhatta in India had announced the same discovery more than a thousand years before Copernicus, without causing any flutter in the Indian world of beliefs. Science is not likely to confront the religion of Hinduism with any unresolvable conflict. The direction in which modern science is advancing seems to show that it is not likely that it will want to pick up any serious quarrel with any of the grand truths Hinduism fundamentally stands for.

There are other aspects of Hinduism, no less cardinal than those we have touched above, that call for consideration. But it is outside the scope of this article to venture to do so. And yet there is a compelling necessity to touch upon, and add a word about, the cataclysmic crisis the world is facing at the present time. The forces of the criseis are diverse and titanic. Their influence is global, and so is the range of their destructive power. There is only one way by which the intensity and the continuing ascendancy of these forces can be counteracted and removed. This is the way of religion—of reinforcing and strengthening the sense of human unity and peace, of oneness and fellowship. The task may be arduous and seem gigantic. But all difficulties are bound to melt away if the true spirit of of religion is aroused, enriched and strengthened and canalised towards this Goal of 'DHARMA'.

HOW OLD ARE YOU ?

By Thomas A. Davis.

There is a story of a visitor asking a little boy, "How old are you"?

"Well", replied the boy, "according to my latest personal check my psyehological age is twelve, my moral age is four, my anatomical age is seven, and my physiological age is six; but if you wish to know my chronological age, I am eight years old."

The story is amusing, but it serves to point up the fact that we cannot measure our true growth by a date on the calendar. A friend of mine was told, at forty, that his heart was in the condition of a man much older than that. Some unfortunate people never get beyond the mental age of five or six. We call them imbeciles. There are others of mature years, chronologically, whose hearts may be perfectly normal, and whose intellects may be well above average, but who never "grew up" so far as their emotional age is concerned. Conversely, there are some young people who have an amotional maturity beyond their years.

Coffee, tea, and cola drinkers may be compared with the instalment buyer who borrows from the bank in ever-increasing amounts in order to keep up his monthly payments on purchases. The caffeine drinkers are borrowing on their reserve stocks of physical and nervouse energy. The more they drink the closer they come to nervous exhaustion and physical bankruptcy. It is a wise plan to take inventory now and establish health habits that will build your physical reserves against the day of stress.

It is the stimulating effect of the caffeine content that makes tea and coffee habit-forming. But caffeine is only one of the drugs found in these beverages. Both contain tannin. In coffee it is in the form of caffeotannic acid, in which form it does not precipitate proteins. or act strongly in the way of an astringent as in tea.

Tannin is used in the tanning process of leather to coagulate, or fix" the protein of the hide. To a smaller degree, but with marked effect the tannin contained in a cup of tea produces a coagulating and an irritating effect on the lining of the stomach.

Tannin also has the effect of binding, or changing to an insoluble form, the iron contained in the food with which it comes in contact, so that the body can not use it. There

THE DIVINE HERITAGE OF PRASANTHI NILAYAM TEACHINGS OF BHAGAVAN SRI SATHYA SAI BABA

Man must have contentment, whatever the gain or loss or state, for it grants deep satisfaction and increase it. For the contented man, life is an endless festival. The mind worried by desire will have no rest, and concentration is impossible. Desire is the flame in the frame that reduces it to ashes, while contentment is the effective drug to destroy it. A treasure richer than the three worlds, in contentment one experiences indescribable divine glory. One blessed with it can immerse within himself and realize unending bliss. Through it ,discrimination, renunciation, and the spirit of inquiry are developed. Contentment will never transform one into an idler, but incline the mind to travel toward the divine and grant peace. It will hinder unessential activities which have as their aim profit for oneself, for the contented man will lead an inner life in communion with the soul. He can then accomplish any work without the need for rest and without complaint.

---

can be no doubt that this action is one of the contributing causes of low haemoglobin in habitual tea drinkers.

Tannin is present in tea as a drink in amounts depending on the length of the time the leaves are allowed to steep.

There are other effects of tea drinking, perhaps less marked, but influencing digestion.

It should be noted that all excessively hot or excessively cold drinks have a marked effect on the stomach muscle and digestive secretions of the stomach. Even water taken too hot may not only damage the delicate secretory glands contained within the stomach wall but also arrest digestion in the stomach until normal stomach temperature is regained. Very cold water or food may stop the digestive process temporarily. but permanent damage to the stomach tissues is much less likely to occur.

Hot or cold liquids taken with the meal in quantity retard digestion by diluting digestive secretions. Drinking large quantities of liquids with meals is detrimental and should be discouraged.

PRAYER AND DEVOTION

—Bhagavan Shri Ramakrishna Paramahamsa

Q : Shoud we pray aloud to God ?

A : Pray to Him in any way you like. He is always sure to hear you. He can hear even the footfall of an ant.

Q : Is there really any efficacy in prayers?

A : Yes. When mind and speech unite in earnestly asking for a thing, that prayer is answered. Of no avail are the prayers of that man who says with his mouth, "These are all Thine, O Lord !" and at the same time thinks in his heart that all of them are his. Be not a traitor to your thoughts. Be sincere; act according to your thoughts; and you shall surely succeed. Pray with a sincere and simple heart, and your prayers will be heard.

What you think, that you should speak. Let there be harmony between your thoughts and words. Otherwise, if you merely say that God is your all-in-all while in your mind you have made the world your all-in-all, you cannot derive any benefit thereby.

There is little fear that the ship will drift or run into danger as long as its compass points to the North.

So the ship of life steers clear of every danger, if the mind, its compass needle, is always turned towards God without oscillation.

One is sure to realise God, if only one has great devotion to truth. On the contrary, if one has no regard for truth, everything of his will be destroyed gradually.

With best Compliments from :
PACK PRINT PAPERS
Distributors :
The Andhra Pradesh Paper Mills Ltd.
Dealers n all kinds of Papers and Packing Materials.
C/o. **The Reliance Agency Pvt. Ltd.,**
24-B Hamam Street Fort, Bombay-1.

BANARSI SWEET MART,
Khar,
Bombay-52.
Tel. No. **533864.**

THE BASIC CONCEPTION OF HEALTH AND VITALITY

—**Dr. C. D. Singh,** M.B., B.S.

Health and vitality, though very commonly used terms, are, incidentally, the most ill understood or so to say mis-understood terms as well. People are prone to believe that absence of signs of disease in a human body is health. Most of us are away by the rosy and stout appearance of an individual and regard him to be a picture of health, quite ignoring the fundamental fact that a good looking person may not necessarily be a healthy person as well. We should realise that there is a wide gulf between the appearance and performance of a person. There is no death of patients in a sanitorium or clinic who are apparently healthy and good looking but are full of filth and disease. During my long practice as a physician I have myself come across a good number of people who appeared to be quite healthy in the eyes of the common man but were actually far from being healthy on examination. The age old standard of health as judged by the specifications of height, weight, chest, abdomen, etc. of an individual has failed to present a correct picture of health of the person. Similarly, it is not always easy even for the best physician, equipped with all the clinical and laboratory aids at his command, to pronounce a clear verdict whether a person is free from any disease or not because at times a person may be apparently healthy by all measurements but he may be actually having some latent focus of a fatal disease. As a matter of fact he may not even feel that there is any thing wrong with him but even then he may happen to harbour the seeds of some such disease which may prove dangerous to his very life. It is a well known fact that various infectious diseases have different incubation periods. The time of contact of an infection till the manifestation of definite signs of the actual disease is known as the inculation period of that particular disease because it is, in fact, the period when the person had been actually incubating the disease in his system. The person may not show any sign or feel any symptom of the disease he may be incubating and sometimes even the clinical as well as the laboratory and other investigations may not be fruitful in spotting out the disease during that period. So, to define health as absence of disease in an individual or measure the health of a person with a tape or machine is not only erroneous but also misleading and delusive. Perfect health, as a matter of fact, may be defined as that state of the human system which assures a person freedom from proneness to diseases and may be judged by the capacity of the individual to recover from fatigue by rest alone and be capable of facing atmospheric variations, psychological shocks or onslaught of infections without any adverse effect on his constitution. In other words true health is that state of a person which cannot be assessed simply by the physical measurements of an individual but the actual performance of his

With best Compliments from :

Tle.: AJA PRINCE ! T. No. **365209** Garage.
T. No. **318467** Office.

ADARSH TRADING COMPANY

Tourist and Luxurious Taxis on Hire Kedia House, 29, F. Dongershi Road, Walkeshwar, Bombay-6.

Tel. :**317013, 255034.**

Messrs. C. PARIKH AND COMPANY

Advertising Agents & Consultants,
109, Parsee Bazar Street,
Fort, Bombay-1.

body has also to be taken into consideration before taking a decision in the matter because it is only through the performance of the body that we can judge the true state of its component tissues with a certain degree of accuracy.

Vitality, on the other hand, is the vital human force which sustains and motivates the cells of the body for action. So the fundamental difference between health and vitality is quite obvious. While health denotes the physical condition of the human tissues, vitality relates to the dynamic of the human system. Truly speaking vitality is a multiface term with a composite meaning and in this respect it is more or less akin to the common term 'personality' which relates to many and not merely one aspect of the person concerned. Just as the word 'personality' encompasses the physique, behaviour, conduct, intellect and a host of such other aspects of the individual, so also 'Vitality' implies the power of effective performance of the physical functions of the body, the adaptability of the individual to various stress and strains, his adjustability to climatic and environmental variations, the power of resistance of the human system against infections, etc. Vitality or vital power or human energy or life-energy or conscious energy whatever the nomenclature just to differentiate it from the so called energy (which is commonly used by physiologists in relation to the body) usually liberated from food or other sources, is in true sense of the term the vital or supreme human force which not only permeates and influences various cells of the human body but it also controls and regulates them according to the needs of the individual. Vitality, therefore, is the composite but at the same time controlling human force which acts on all the five different planes of a human being viz. physical, vital, emotional, intellectual and spiritual and is respectively responsible for health, vitality, happiness, knowledge and love in the individual.

It should not be difficult by now for any intelligent reader to grasp the fact that 'health' and 'vitality' do not mean the same thing. They are two distinct entities. Just as health and vitality are quite different so also there is a clear distinction between vitality (which may be termed as 'Human Energy') and 'Nutritional Energy' (commonly known as energy which is said to be liberated from food in the human body). Whereas vitality or **'Human Energy'** is the supreme controlling force of the human system, **'nutritional energy'** is merely a product of consumption of human nutrition While the former is absolutely independent of food the latter is wholly dependent on it. But, unfortunately, somehow or other an erroneous belief has gained ground not only among the ignorant masses but also among the intelligent classes that health and vitality are synonymous and that in order to be in perfect health and full of vitality a person should consume as much of a balanced diet as is capable of yielding the amount of calories needed for his daily activities and also some more for future reserve to be utilised during the rainy season of his life on the ground that the vitality of a person is actually derived for the ingestion of food but they simply fail to realise that the nutritional energy usually liberated from food is itself dependent upon the human energy or vitality for the output of work—physical, mental or otherwise—of an individual. It is significant to note that vitality is needed even for the digestion and animilation of the ingested food as also for the elimination of the waste products of human metabolism.

GOVIND M. POY RAITURCAR & FILHOS

Margao—Goa,

(A) BUSINESS HOUSE FOUNDED IN THE YEAR 1869)

GANERIWALA AND SONS,

33, Netaji Subhas Road,

Calcutta-1.

Gram : "NISKAMA" Phone : **22-2795/6.**

Such a proposition goes contrary to the present belief and may also sound a bit strange, at the face of it, but nevertheless it is quite true and can very easily be understood with the help of the following illustrations :—

We usually find that at the end of a day's hard work one feels :—

1. Loss of human energy or vitality and a feeling of exhaustion.

2. Cell destruction through wear and tear of tissues.

In every day practice we see that food replaces the lost tissues—but it fails to restore the lost human energy or vitality which can usually be gained only through deep sleep and never through food however rich and substantial it might be.

It is every body's experience that whenever a person receives a shocking news he becomes broken hearted and lifeless for all intents and purposes for quite some time (which varies from individual to individual depending upon his vitality or human energy). Even though he may possess ample 'reserve' for the liberation of nutritional energy needed for his activities he is actually found quite incapable of doing anything. How is it then that his reserve stock of nutritional energy (which had already been stored up in his body for future use in the form of fact in the muscles and glycogen in the liver) does not come to his reseue in peforming his routine duties? If nutritional energy in itself were competent enough to make a person work such an individual should certainly be able to perform his duties but in actual practice we find such a person morose and idle. He is disinclined to listen even to the sweetest melody and has an abhorrence for his choicest dainties, not to speak of carrying out any physical or mental work. This affords ample proof of the fact that the nutritional energy of a person is in itself not quite competent to make him work.

It is often noticed that a person who has just recovered from an acute illness e.g. Typhoid or some such disease and who happens to pass through the convalescent period (whien he is supposed to be free from disease) is incapable of doing his work even though he consumes a nutritive diet of high caloric yield. If nutritional energy be adquately provided to such an individual through a properly balanced diet then, as a rule, he should also be capable of carrying out his routine duties but we find in actual practice that his highly nourishing food yielding the much needed calories does not enable him to take up his routine duties. It is not that he shirks his duties or does not wish to work but the grim fact is that he is simply incapable of doing his normal work for want of the human energy or vitality which is so essential for the effective utilisation of the nutritional energy derived from his food.

The above illustrations point to one basic fact that even when sufficient calories of nutritional energy are produced from the food ingested by the individual or if it is also taken to be granted that such nutritional energy could be liberated from the glycogen stored in the human body for future use, it is in itself not competent enough to drive the person for work if he lacks in vitality or human energy which is supposed to be absolutely essential for the utilisation of the nutritional energy produced from food as also for the proper conversion of

With best Compliments from :

Messers. PREMJI VELJI AND CO.
Suppliers of Old Gunny Bags and
Empty Cement Bags,
1272, Bhavani Peth, Poona-2.

Messrs. KHANDELWAL LABORATORIES PVT. LTD.,
Mnufacturer of :
ETHICAL PHARMACEUTICALS
79/87, Kalachowki Road, Bombay-33.

such energy developed by the body from its glycogen reserve and effective utilisation of this energy for the performance of work. From the above noted examples it should be clear to any observer that a shocking news or an acute disease or even the day's work saps the vitality or human energy of the person concerned and till this vitality is restored in the human system the individual is not in a position to utilise his nutritional energy which is derived from food or other sources even if he wants to at times. In this context it is significant to note that the same news or the same disease or the same work does not produce the same reaction in the individual in all cases and this difference is certainly due to the basic difference in the degree of vitality of the persons concerned and it should be quite clear by now that an effective utilisation of the nutritional energy of an individual is entirely dependent on the vitality of the person concerned and this vitality or human energy is not necessarily proportionate to his food intake—rather it is quite independent of it. As a matter of fact the lesser the impurities the greater the uninterrupted flow of vitality or human energy in the human system. The ingestion of food by an individual has definitely a direct bearing on his health and nutritional energy but it has decidedly nothing to do with his vitality which is potentially inherent in his system and it manifests itself best in the absence of his metabolic impurities. In fact vitality is not directly proportionate to the intake of food of a person but it is inversely proportionate to the presence of impurities in his system.

Before I conclude the subject of health and vitality I would like to strike a note of caution and request my readers to beware of a minute but at the same time clear distinction between muscular strength and vitality. People, laymen and experts alike, usually fail to realise this fundamental difference and confuse one with the other with the result that in their sincere effort at increasing their vitality they simply succeed in increasing to a certain extent their muscular strength which in the long run helps only in lowering and reducing their vitality to end in premature death of life long invalidation. Body builders succeed in increasing their muscular strength at the cost of their vital power or human energy. The muscular physique and physical feats of wrestles and gymnastics for a particular period naturally catches the imagination of every seeker of perfect health and they are certainly impressed by the triumphs of their muscular strength but they quite fail to see the sad and sorrowful end of their idols of health and vitality who really burn their candles of life at both the ends to give a short but impressive flash only to end in premature death or life long misery and invalidation as is evident from the life histories of Sandow, Ram Moorti or the world renowned wrestler 'GAMA'. Muscular strength and vitality are two different entities. While the former is the static or latent power of a muscle or a group of muscles the latter is the dynamic force of life itself. Whereas the muscular strength of a person can definitely be raised to a certain extent through proper food and regular exercise his vitality cannot be increased by any food whatsoever. It would not be far from the truth if I assert that every morsel of food is a tax on human vitality because the liberation of nutritional energy from food itself needs the valuable assistance of vitality. Muscular strength, in other

With best Compliments from :

THE PRINTING MACHINERY CO.
Star Type Foundry
Anees Chambers, Carnac Road, Bombay-1
Gram : PRINTMACHO

D. HARESHKUMAR AND CO.
Swadeshi Market, Bombay-2.
Shakti Senor Cashmere Suiting 100% Terene

Plywood and Timber Products Agencies,
Shirin Mansion, 14, Kolsa Cross Lane,
1st Floor, Room No. 21, Pydhoni,
Bombay-3.
Tele. No. : **321350.**

HOW ABOUT TEA ?

By Ronald W. Spalding, M.D.

Tea, the leafy part of the tea plant, and coffee, the berry of the coffee plant, are popular habit forming drinks because of their caffeine content. Nearly sixty years ago Lillian Eshelman, M.D., aptly said : "The real foundation for the tea and coffee habit is the desire for artificial felicity. It is an attempt to borrow from one's future store of energy."

Neither coffee nor tea contains any energy-giving properties if the milk and sugar are omitted. An average cup of coffee contains about two grains of caffeine; a cup of tea, one and a half to two grains. The cola drinks contain from half to one grain of caffeine per bottle. People who use these drinks can readily reckon the amount of the stimulant caffeine they drink every day.

Having fully understood the basic principles of rational fasting a person should, to begin with, give up his solid break-fast in the morning and should replace it with some such drink which may help in the excretion of toxins and waste products of metabolism. After some time one should give up this drink and try to live on air or plain water or water to which a little honey and fresh lemon juice is added uptil noon as routine. During the Navratra fasts or such other fasting periods a rational faster should first of all give up cereals, pulses and meat. He should, as usual, fast uptil noon

---

words, is the potential power of the muscles which could be acquired by the ingestion of food coupled with the practice of physical exercises while vitality can be described as the Electric Current flowing through the tissues which is inherent in the human system and could simply be manifested by casting off the impurities of metabolism but never acquired through food or exercise. As a matter of fact by increasing his muscular strength a person merely raises the load on his life current on vitality which is absolutely essential for the proper utilisation of his muscular strength and this is really the reason why stout persons get easily tired and need long hours of rest to recoup their lost vitality in comparison to thin built individuals.

SUMMARY : To sum up, it can be said that health and vitality are separate entities; while the former is just a gross state of the human body the latter is an abstract force of the human system. It has been explained that nutritional energy(commonly known as energy) has nothing to do with vitality (which is termed human energy to distinguish it from nutritional energy which is usually liberated from food) because while the former is purely dependent on food the latter is independent of it. Finally a clear distinction has been drawn between muscular strength and vitality or human energy- the former is the potential power of the muscles while the latter is the dynamic human force which permeates every cell and motivates the tissues of the body for action and controls them.

With best Compliments from :

S. D. SHETHIA AND CO. PVT. LTD.
67, Podar Chambers,
S. A. Brelvi Road,
Fort, Bombay-1.
Phone : **258705-6** Telex : **011/2473.**
Gram : "SHETHIACO"

BOMBAY SALES AGENCIES
51 Podar Chambers,
Parsee Baxar St.,
Fort, Bombay-1.
PAPER AND BOARD MERCHANTS
Distributors :
The West Coast Paper Mills Ltd.
The Andra Pradesh Paper Mills Ltd.

on air or water or water sweetened with a little honey and then he should take some seasonal and locally available sunripe fruits. At night he may take some cooked vegetables, 'salad' and milk. If he feels no difficulty in following the above routine during a few fasts he may then give up cooked vegetables during his subsequent fasts and live on fruits and 'salad' only. Slowly and steadily as the person is able to bear the fast he may give up 'salad' and consume only fruits during this fasting days and that too as usual after mid-day and at night till a stage may come when he can very easily give up all articles of food and may fast on fruit juice or water sweetened with a little honey to which a little juice of fresh lemon is added.

But this is not all. The real technique of rational fasting lies in the fact that the usual food saved during a fast should invariably be offered to the needy and hungry in order to share it with the immanent Lord present around us in various forms. And lastly a rational faster should never miss to take a simple plain water tonic enema during his fasting periods, specially a couple of hours after his routine morning defecation to assist the body in getting rid of its waste products. element is secured through fasting because the sky indicates vacuum which reeally means fasting or keeping the stomach empty or in a state of vacuum. The etherial component of the body is supposed to stimulate the eliminatory process of the human system for the expulsion of the waste products of metabolism. Thus it can safely be deduced that whereas the four components of human composition—air, fire, water and earth—are needed for the construction of the body or replacement of its tissues, the fifth one—sky—is required for its purification. Sky or ether, therefore, is an essential constituent of the body and plays a vital role in its proper maintenance.

Every one is aware of the fact that the natural period for the excretion of the impurities of the human system e.g. faeces, urine, etc. is early part of the day or morning. And as the etherial component is utilised by the body for the effective elimination of its waste products or accumulated impurities it would not be far from the truth to presume that early part of the day is the appropriate period for the proper use of the etherial constituent of the human body. So in order to be healthy it is absolutely essential that all the five components of the body viz. ethery, airy, fiery, watery and earthy should be supplied to our system in a definite proportion and that too as a routine. As the etherial component could only be supplied to the human body through fasting one should make it a point to fast for a few hours in the morning every day for the effective elimination of the waste products of metabolism. This should be a regular practice. But it is our common experience that inspite of our best efforts it is difficult, rather impossible, to stick rigidly to a regular routine with the result that some impurities or toxins are bound to accumulate in our body. These accumulated waste products or toxins are definitely harmful because they form the nucleus of future diseases. So a person desirous of maintaining perfect health (that state of the human system which assures a person freedom from proneness to diseases) has got to get rid of these impurities through

With best Compliments from :

C. AGRAWAL AND COMPANY PVT. LTD.
43 Laxmi Building,
Sir Phirozshah Mehta Road,
Bombay-1.

ASSOCIATED BUSINESS CORPORATION,
Court Chambers, 35 New Marine Lines,
Bombay-20.
Distributors of :
The West Coast Paper Mills Ltd.
The Andhra Pradesh Paper Mills Ltd.

fasting which is the only means of elimination of the accumulated toxins or waste products. The Navratras fall twice a year at regular intervals and **the Navratra fasts** offer the much needed opportunity for a thorough cleansing of the human system. Coming at a period when there is a climatic change either from hot to cold or cold to hot when there is a natural tendency for the pent up impurities to be stirred up they afford the best chance for getting rid of the harmful and accumulated waste products of metabolism.

It is usually customary and sometimes even obligatory for a Hindu, Muslim or Christian to fast in one form or the other during the year but the grim fact remains that the manner in which the fast is undertaken does not lead to the regeneration of vitality. People have been fasting merely as a ritual without knowing it real purpose or understanding either its fundamental principles or its scientific techniques. A person who really wishes to gain his vital power or vitality through a rational fast must know :

1. What is a rational fast ?
2. Why is it undertaken ?
3. How should one fast ?

Or, in other words, the what, why and how about a rational fast must fully be understood before it is actually undertaken.

Fasting has a scientific basis and as such it has a definite practical technique as well. As stated previous the underlying principle of 'UPVAS' or fasting, as it has come to be called, is that there is an inherent vital power in the human system which is capable of manifesting itself fully when the body is freed of its impurities through rational fasting. Rational fasting is a technical term which means scientific fasting adopted by a person after fully understanding the fundamental principles and then carefully adhering to the practical and scientific techniques of a fast. It is undertaken mainly for raising the vital power of the human body.

The scientific technique of rational fasting is primarily to deprive ourselves of our food or alter and reduce our food in such a planned and systemic way that it does not produce any harmful effect on our system but is capable of raising the vitality to the maximum extent possible. Fasting must naturally be slow but steady because if we proceed quickly out of enthusiasm to achieve early results, the latent and accumulated impurities of the body may be stirred up in such a violent form that it may, at times, become difficult and sometimes even impossible for the impaired vitality to get rid of them with equal force and speed. So the utmost caution and restraint is called for while undertaking a rational fast. Fasting, as a rule, should never be undertaken without a prior change in the thinking and feeling about the actual role of fasting and feasting in the human system. In other words, it should never be adopted without fully understanding the rational and technique and that too never without a proper guide. A fast undertaken without the above mentioned pre-conditions does not deserve to be called a rational fast because the very word rational relates to thinking. ★

With best Compliments from :

SHREE KRISHNA COMMERCIAL CORPN.
75/79 Old Hanuman Lane, Bombay-2.
Distributors for :
The West Coast Paper Mills Limited.
The Andhra Pradesh Paper Mills Ltd.
The Bengal Paper Mills Co. Ltd.
Phone : **316997** *Gram :* "ANJNIPTRA"

UNIVERSAL CABLES LIMITED
Registered Office : 15, India Exchange Place' Calcutta-1.
Principal Office and Works : Post Box No. 8, Satna (M. P.).
Unistar Cables keep the nation on the go.

RAM DAHIN SINGH VIDYALAY

(An Experimental Centre of the Ramayan)

Ram Dahin Singh Vidyalay (a Higher Secondary School), foundation of which has been laid at Amghat in the district of Ballia in U. P. by Param Poojya Yogiji on the 27th November 1961, has been established in the memory of Shri Ram Dahin Singh who was a great educationist and ideal teacher, rotarian and philanthropist.

The Manas Sadhana Mandal is trying to develop this institution into an experimental centre of the Ramayan by laying stress on the following points :—

1. Dissemination of the esoteric interpretation of the Ram Charit Manas for the integrated development of human beings irrespective of caste, cread, religion, race or sex.

2. Provision for investigations and researches on the fundamental principles propounded in the revealed scripture (The Ram Charit Manas).

3. Adoption of a scientific and constructive approach towards personal and social problems in accordance with the study of Humanology based on the Ram Charit Manas.

4. Inspiration to the teachers and the taught for self-help, character building and adoption of a righteeous life.

5. Encouragement for self-less social service.

6. Provision for regular contacts between the teachers and guardians for the proper development of students in the school and their homes.

7. Revival of the ancient ideal relations between the teachers and their pupils.

Governor's impressions :

The Governor of Uttar Pradesh had been kind enough to pay a visit to the school on the 22nd November 1965 and was pleased to express his impressions about the institution in his visit note in the following words—"I was glad to visit Ram Dahin Singh Vidyalay, Amghat (Ballia) and was pleased to observe the experiments the organisers are making in discovering ways of living based on ancient scriptural injunction of the country."

Needs of the Vidyalay :

By the grace of God, generous assistance from the benefactors of the institution and regular grant-in-aid from the government of U. P. it has now been possible to meet the recurring expenses of the vidyalay but we need some financial assistance to wipe out the initial deficit incurred on account of capital and

revenue expenses and construct a suitable building because the temporary building which houses the institution is in a damaged and dangerous state.

As Appeal :

In the name of the Lord we appeal to the generous and the good for financial assistance to this unique institution of its type and we hope that philanthropists and charitable orgasations will come forward with their valuable donations and help the vidyalay in wiping out its deficit and construct a building of its own.

Donations made to 'Ram Dahin Singh Vidyalay, Amgha (Ballia), qualify for exemption under section 88 of the Income Tax Act, 1961, in the hands of donors, subject to the limits prescribed therein as per order No. C 58/59(I)/65-566 dated 20th December 1965 of the Commissioner of Income Tax, U. P. Lucknow.

In the name of the Lord we appeal to the generous and the good for financial assistance to this unique institution of its type and we hope that philanthropists and charitable organisations will come forward with their valuable donations and help the vidyalay in wiping out its deficit and contsruct a building of its own.

Donations made to 'Ram Dahin Singh Vidyalay, Amghat (Ballia)' qualify for exemption under section 88 of the Income Tax Act, 1961, in the hands of donors, subject to the limits prescribed therein as per order No. C 58/59(I/65-66 dated 20th December 1965 of the Commissioner of Income Tax, U. P., Lucknow.

The health of the people is really the foundation upon which all their happiness and all their powers as a State depend.

—**Benjamin Disraeli**

●

Look to your health; and if you have it, praise God, and value it next to a good conscience; for health is the second blessing that we mortals are capable of; a blessing that money can not buy.

—**Isaac Walton**

●

With best Compliments from :

"SHREE BASAVESHWAR PRASANNA"

MESSRS. K. A. VASTRAD,
Cement Stockists,
Hubli

LIGHTS OF YOGA

By Shri Aurobindo.

There is not much spiritual meaning in keeping open to the Mother if you withold your surrender. Self-giving or surrender is demanded of those who practise this Yoga, because without such a progressive surrender of the being it is quite impossible to get any where near the goal. To keep open means to call in her Force to work in you, and if you not surrender to it, it amounts to not allowing the Force to work in you at all or else only on condition that it will work in the way you want and not in its own way which is the way of the Divine Truth. A suggestion of this kind is usually made by some adverse Power or by some egoistic element of mind or vital which wants the Grace or the Force, but only in order to use it for its own purpose, and is not willing to live for the Divine Purpose,—it iswilling to take from the Divine all it can get, but not to give itself to the Divine. The soul, the true being, on the contrary, turns towards the Divine and is not only willing but eager and happy to surrender.

In this Yoga one is supposed to go beyond every mental idealistic culture. Ideas and Ideals belong to the mind and are half-truths only; the mind too is, more often than not, satisfied with merely having an ideal, with the pleasure of idealising while life remains always the same, untransformed or changed only a little and mostly in appearance. The spiritual seeker does not turn aside from the pursuit of realisation to mere idealising; not to idealise, but to realise the Divine Truth is always his aim, either beyond or in life also—qnd in the latter case it is necessary to transform mind and life which cannot be done without surrender to the action of the Divine Force, the Mother.

To seek after the impersonal is the way of those who want to withdraw from life, and usually they try by their own effort, and not by an opening of themselves to a superior Power or by the way of surrender; for the Impersonal is not something that guides or helps, but something to be attained and it leaves each man to attain it according to the way and capacity of his nature. On the other hand, by an opneing and surrender to the Mother one can realise the Impersonal and every other aspect of Truth also.

The surrender must necessarily be progressive. No one can make the complete surrender from the beginning, so it is quite natural that when one looks into oneself, one should find its absence. That is no reason why the principle of surrender should not be accepted and carried out steadily from stage to stage, from field to field, applying it successively to all the parts of the nature.

★

Fasting is a potent weapon in the Satyagraha armoury. It cannot be taken by everyone. Mere physical capacity to take it is no qualification for it. It is of no use without a living faith in God. It should never be a mechnical effort nor a mere imitation. It must come from the depth of one's soul. —Gandhiji

With best Compliments from :

The Indian Plywood Manufacturing Co. Ltd.,

9, Wallace Street,

Fort, Bombay-1.

PSYCHOLOGICAL ASPECL OF YOGA

(**G. N. Purandare,** Advocate, Bombay).

(Extract from the Writer's unpublished book on "Patanjali's Yogasutras")

Western Psychology recognises only three conditions of the mind; unconscious, sub-conscious, and conscious. It does not recognise any super-conscious state of mind. Western Psychology is a science of the tangible mind. It wants to understand everything mental in terms of physiology of the brain and the nervous system and the primary biological reactions. They are discouraged however by the fact that mind when put to their experimental test defies all laws relating to time. space and causation. Mind is less manifest in the physical world and more in the non-physical world and it is the latter realm of the mind that defeats all attempts of physiological scrutiny. The Western phychologists use the terms, mind, self, spirit and soul with little discrimination. The latter two terms belong to the province of the super-conscious state of mind.

In Indian Philosophy the word '**चित्त**' includes four connotations; mind, intellect, ego or self and the soul. Mind thinks the pros and cons of the subject; intellect decides; ego appropriates that knowledge and here ends the working of the physical manifestations of the term '**चित्त**'. The mind has five stages or conditions (i) **चित्त** " i. e. agitated (ii) " **मूढ**' i. e. perverse or confused; (iii) **विक्षिप्त**" i. e. partially evolved; (iv) '**एकाग्र**' i. e. concentrated and (v) **निरुद्ध** " i. e. fully controlled. Phychology concerns itself with the first four stages of the mind. Yoga concerns itself with the next two stages. Yoga concerns more with the super-conscious condition of the mind untouched by phychology.

In Indian Philosophy both tangible things and the mind are '**प्रकृति**' ...Purely tangible things are gross while the mind, intellect. egoism are subtle. Tangible things are capable of being represented in dimensions in space while the subtle things are not so capable; but still they are '**प्रकृति**". All the qualities of the mind, feelings, impulse, emotion are born out of this materials nature of the mind. The soul, the spirit are concepts beyond the tangible domain. Experimental science has not worked on it. The material part of the mind is governed by the general principles of phychology.

Phychology, however, steps in, a bit in the domain of the super-conscious condition of the mind when it branches off in psycho-analysis and psychiatry or parapsychology. The

With best Compliments from :

M I D A S

MARKETING AND INDUSTRIAL DEVELOPMENT ASSOCIATES,

Agra Building, 121, M. G. Road,

Bombay-1.

Gram : "MIDASURVEY" Telephone : **294448.**

methods used by psychiatrists are very similar to those advised by Patanjali in his Sutras on securing an appeasement of mind and on neutralising a particular tendency by its opposite tendency. The psychiatrists work on the sub-conscious condition of the mind of their patients; find out the root cause of the patients' malady, analyse it and give them a counter-suggestion (**प्रतिपक्ष भावना**) so as to remove that mental impression which has caus-ed that malady.

Reference may be had to Patanjali's Yoga-sutras, viz. Sutra 33 in **'समाधिपाद''**

'मत्रीकर णामुदितोपेक्षाष्णं सुखदुःखपुण्यापण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ।।१-३३।। The Sutra says that one should entertain feelings of friendship towards the miserable ,of joy towards the virtuous and disregard towards the viciousones for the purpose of banishing away the unpleasantness of the mind.

Then Patanjali suggests a way of neutralising a particular feeling arising in the mind by thinking the opposite of it. by thinking about the mind of the other person in respect of whom the particular feeling is entertained; as for instance in observing **'अस्तेय'** i.e. non-cousciouoness think of the feeling of the person who is to be robbed in committing theft; think of the agony of the mind of the victim who is to be robbed.

'वितर्कबाधनें द्धतिपक्षभावनम् ' ।।२-३३।। पतंजलियोगसूत्र

This method of neutralising a feeling in the mind by giving a counter-suggestion is used in psycho-anlysis and has been found useful in reforming juvenile offenders.

★

Temperance and labour are the two true physians of man.

—Rousseau.

●

THE WEALTH OF HEALTH

Nor love, nor honour, wealth nor pow'r,
Can Give the heart a cheerful hour
When health is lost. Be timely wise;
With health all taste of pleasure flies.

—John Gay

●

It has been increasingly evident, as pointed out by doctors everywhere, that physical health is closely associated with, and often dependent upon, spriritual health.

—L. T. Swaim, M.D.

●

HELP YOURSELF BY FORGETTING YOURSELF

By Constance Quinlay Stills.

Do you ever wake up in the morning with your first thought, "How do I feel?" and then the rest of the day dwell on all your real, and imaginary, aches and pains and troubles.

The best cure for this is to stop thinking about yourself and start thinking constructively about some good you are going to do, even if it is only making chuda. Get your viewpoint away from your self, and become hiter estel in outside things and other people—especially other people. Do things for them. Give of yourself, your time and effort. You will be surprised how rewarding this is, both in broadening your own horizon and in making friends.

I have several acquaintances who, when I pass the time of day and ask, "How are you"? answer by going into along account of their aches and pains. It makes me sorry I asked. Their lives have turned inward. They are their own big interest, and they acuse others to be bored. Some of the worst offenders are those people who live alone or have never had any children.

Being a parent is one of the greatest antidotes to selfishness. Babies won't take 'No' for an answer. You have to get up in the middle of the night, no matter how tired you are, to feed them or soothe them. Someone else is the big interest now, and you are forced to forget self. By the time they are grown you should be cured of all self-centredness.

My mother often quoted this saying to me : "The busy have no time for tears". How true ! If you keep busy, you foreget yourself. If you have time on your hands ,why not cultivate some hobbies? There is nothing like using your hands and your head to forget your troubles and aches.

Get out in the garden, make some biscuits, try your hand at painting—above all, do something for somebody else. Take a shut in for a ride, or give a piece of cake to a neighbour. If you are invited out to dinner, take a surprise box of sweets or a bunch of flowers to your hostess, especially if the sweets are home-made or the flowers out of your garden.

Making someone else happy will bring an inner glow into your life and stop your thinking of yourself.

With best Compliments from :

BHARAT OVERSEAS PRIVATE LIMITED

Calcutta, New Delhi, Bombay Jaipur Chandigarh Sawaimadohpur, Bagalkot.

Registered Office :
18-A, Brabourne Road,
Calcutta-1.

Regional Office :
Stadium House, Block No. 1, 6th floor,
Veer Nariman Road, Bombay-20.
Phone : **295456** & **66** Tele.r : **011239**
Gram : PUNEET

Sole Selling Agents for :
Trishul Brand Cement manufactured by the JAIPUR UDYOG LTD.
Bagalkot Brand Cement Manufactured by the BAGALKOT CEMENT C O: LTD.

Manufacturers of :
Albion Plywood, Block Boards, Flush Doors, Veeneers, etc.

THE RATIONALE AND TECHNIQUE OF FASTING

(**Dr. C. D. Singh,** M.B., B.S. **and M. M. Sahai,** M.A.)

(This article is part of the book entitled 'Our Navratra Fasts' which is in the press. —**Editor**).

Before discussing the rationale and technique of fasting it is absolutely essential to know the actual role of a fast in human life and the most appropriate time for it. According to Shri Ram-charit Manas (which we are fully convinced is an authentic book of Humanology—the science of integrated development of human personality) the gross human body is composed of five components viz. sky, air, fire, water and earth as is evident from the following lines :

"CHHITI JAL PAVAK GAGAN SAMEERA
PANCH RACHIT ATI ADHAM SAREERA"
(*Kishkindha Kand X*, **4**)

Of these, the finer elements of only four i.e. air, fire, water and earth are absorbed in our food. Air is inhaled as such and it also enters the body through leaves which represent an interchange of oxygen and carbon dioxide from the air. The finer element of fire enters the body by bathing in the sun—the source of fire—and eating sun-ripe fruits. We all drink water which is also part of the watery vegetables in our diet. The finer elements of earth are absorbed in the body by rubbing mud, sleeping on earth, inhaling sweet smelling flowers springing from the earth or consuming cereals, pulses and non-vegetarian food preparations. The fifth constituent of our body—sky—which is loosely called Ether, is not a food. Its etherial

There is little that we can do regarding our intelligence level if it is not as keen as we would wish. There is little that we can do about our hearts if they are not as strong as we would desire. But there is something that we can do with respect to our emotional maturity, for our emotions, or at least our reactions to our emotions, may be under our control. It has been well said that a man's character is measured not by the emotions that control him, but by the emotions that he controls.

Let us ask a few questions, merely as points of departure in evaluating our own emotional maturity.

Can I laugh at myself ? The ability to see the funny side of our own mistakes and peculiarities and failings is a wonderful cushion to absorb the shocks of life. One writer tells how he was approaching two children playing. A little girl, about eight, was being taught to ride a bicycle by a boy somewhat younger. She kept falling off. Just as the writer passed she fell off again, then mirthfully exclaimed to the boy, I tell you, Jimmy, it takes real brains to be as dumb as I am." That little girl was well on the way towards being a mature person.

Do I show patience, forbearance, and calmness when things go wrong? The person who loses his temper, uses bad language, and becomes abusive and impatient when things

With best Compliments from :

RAJENDRA VASUDEO DESHPRABHU,
H. O. Dr. Atmaram S. Borkar Road,
Panjim (Goa)

Banches : Pernem, Mapusa and Margao
Gram : APARNA, MARGAO
Phone : Pernem Ext. 1

do not go the way he wishes demonstrates that he is immature,. An acquintance of mine, who has admirable selfcontrol, confessed that at one time he had a terrible temper, but that gradually he conquered it.

Do I put myself, or others, first ? We are all basically selfish. But the more mature a person becomes the more he is willing to give others precedence over himself.

Am I willing to forgo present pleasures for better and more lasting, future satisfaction? When a baby wants something he wants it nww this minute. He cannot understand or tolerate delay. But a mature person will realize there are times when the impulsive desires of the moment, if satisfied, will endanger the future, Thus, a mature young couple, desiring marriage, may realize that it is better to wait until their education is complete. Or a man wishing to go into business may decide that, although he would like to begin at once, it will be wiser to wait for more solid financial backing than he has at present, as insurance against possible failure.

If you are not as emotionally mature as you feel you should be, do not become discouraged. It is the striving toward maturity that counts. Remember, all life is growth.

CHINMAYA LAHARI

" Resigning to Brahma " : Total detachment is imposslibe for the human mind and that is exactly what the spiritual seekers often fail to understand. So long as there is a mind it has to attach itself to something. Therefore, detachment from the false can be successful only when we attach ourselves to the Real. This psychological fact is scientifically enunciated in Geeta, wherein Lord Krishna advises that a seeker should renounce all his attachments to Brahma and continue striving on. To remember constantly an ideal is to become ourselves more and more attuned to the perfections of our ideal. In order that we may surrender all our sense of agency in our actions to Brahma, we have to remember this concept of Truth as often as we now remember our limited ego. When the frequency of our thought on the Lord becomes as high as the frequency with which we remember now the ego idea, we shall come to realise the Brahman ideal as intimately as we now know our own ego.

In short, to-day, we are "ego-realised souls "The Geeta's call to man is to become "Soul-realised egos."

—Swami Chinmayananda.

With best Compliments from :

DHRANGADHRA CHEMICALS WORKS LTD.

Manufacturers of Heavy Chemicals
"Nirmal", 3rd Floor, Nariman Point,
Bombay-1.

*Gram*fi: SODACHEM, BOMBAY. Phone : **293294. 293295. 293330.**

WORKS

1. SAHUPURAM ARUMUGANERI P. O.,
Tirunelveli Dist. Tamilnadu.
Gram : CHEMICALS, Arumuganeri
Phone : **30** Kayalpatnam.

2. DHRANGADHRA,
Gujarat State,
Grams : CHEMICALS, Dhrangadhra.
Phone : **32** & **67** Dhrangdhra.

KEYS TO A HAPPY LIFE

The Key of Thankfuless
By Norma Norris.

Old Father Time sits dangling a bunch of keys from a long forefinger. His face is lined and weather-beaten, his hair long and grey, but his eyes are kind and there is a wise smile around his mouth. "Come," he calls, and his voice is like a long long, whisper of wind in the trees, "Come and take a key. You need the whole bunch to open the doors to a full and happy life, but each one in itself is a blessing. Come, dear friend, and take a key today."

It can not possibly come within the scope of this short article to mention the many things for which we should be thankful —the countless riches seen and unseen, material and spiritual, that surround us. One of the best ways to bring sleep to yourself if you are tossing and turning on a sleepless pillow, is to lie quietly counting your blessings. This is far more effective than counting sheep, for it brings peace and happiness as the list grows and grows. And you will find that you will never come to the end of the list before falling asleep—for the list is far too long.

Here are just a very few things for which we can be deeply thankful.

FOR LIFE. Here is something that no man—no matter how brilliant he may be—can create at will—a moving, vital, wonderful thing, that beats within one's veins and sends the good blood coursing through the body. Life is a precious gift. How we love the indication of its presence in the sparkling eye of a little child, the ripple of muscles under the smooth brown shoulders of a youth, the flush in a girl's cheek. Life is rich and wonderful. Thank God for it.

FOR HEALTH. Not only for the fact that our body is working as it should, for this can be but a negative approach, but we should be continually thankful for our faculties—for our eyesight that can perceive the beauty of the world, the faces of our loved ones, the lights and shades in all the different colours. We should be thankful for the gift of hearing that can detect the song of a bird, the sound of rain in the night on the thirsty garden. Oh, so many wonderful things we can enjoy through our ears—the reassurance in the words of love, and the sound of a baby laughing. Our sense of touch and taste and smell—what would we do without those gifts? Do we start the day thanking God for this ability ?

FOR REASON. All these things, no matter how wonderful, would be useless to us if we did not have the mind to interpret them. The story is told of a man, who, while walking along a busy street, was suddenly stopped by another man. Looking the first man in the eye, the second man had a strange question to ask. "Have you ever thanked God that you are in your right mind"? he asked abruptly. The first man stepped back startled and dismayed at the sudden question. "Why, no", he answered. "Well thank him now". cried the other, and hurried on. A few minutes later a car came tearing down the street, and uniformed

With best Compliments from :
HIND WATCH COMPANY CHARITY FUND
78-A Abdul Rahman Street,
Bombay-3.

warders sprang out to accost the questioner, who had not gone very far. Yes, he was a mental patient escaped a few hours before from a nearby hospital. He had just enough reason left to know he was not to be envied. The first man went thoughtfully on his way. It is something to be thankful for, that you have your reason, that you can consider, weigh up arguments, make decisions agree or disagree, with full clarity of mind.

FOR WORK. Let me quote from a writer who had learned to be thankful for this great gift of being able to work. She says, "Whether you believe it or not, this is one of the greatest blessings an all-wise God bestows upon humankind. Without something to occupy the time and thought, and on which to spend physical strength, how empty, how meaningless, life would be." We sometimes grumble at the necessity which drives us to our daily talks: but, really, work is one of the most important keys to the House of Happiness. Here, of course, we are speaking of thankfulness for work as a general thing, not of any specific king of work. Because there is work for us to do in this world, life becomes more interesting, more challenging. Without something to work at we would mope, and die of boredom. Work gives us an aim, a pleasure and an interest for which few people are as truly thankful as they should be.

FOR FRIENDSHIP. Have you paused today to be thankful for your friends? Can you imagine life without them? Without kindred souls about us, life becomes rudderless. We need each other, and above all, we need understanding from our fellows. Put understanding into another, and call that person friend, and you are rich indeed. Have you suffered sorrow and bereavement? Who brings the strength of comfort—one's friends. Have you suffered financial loss? This makes no difference to the love of one's friends. When you are misunderstood, it is a great comfort to have someone in whom you can confide. Friends are a blessing without whom life would become very grey and cold. Thank God for your friends today.

And we could go on. The list is endless. Our hearts should be filled with thanksgiving day by day, for, in spite of the disappointments and frustrations of life, there is so very much left for which to be thankful.

—*The Harald of Health, August 1966.*

Ram Charit Manas of Tulsidas is a great book and a good book. "A good book", said Milton, "is the precious life-blood of a master spirit embalmed and treasured up on purpose to a life beyond life". Such has been the history of Ram Charit Manas in India during the last three or four centuries. The book has given solace and comfort to millions of our country men in their everyday life. Valmiki wrote his Ramayan in Sanskrit, and as the name Sanskrit implies, it is intelligible only to the cultured few. But Ram Charit Manas has brought the nectar of the life-story of Rama to the door-steps of the average villager in the whole of Northern India. It has been book for ennobling and elevating the life and character of millions of Indians in this land of ours. The famous historian Vincent Smith made an important observation in his book, "Akbar : The Great Moghul". He said, "In the sixteenth century the greatest Indian was Tulsidas and not Akbar," I think no better praise could have been made baout Tulsidas. The memory of Tulsidas has been engraved on the tablets of eternity."

"Yogiji"

" In fact the present pattern of society can change beyond recognition if only people will entertain a little faith in the unseen, a little service of the Lord in the form of humanity and a little control of food."

THE CONTAGION OF CHEERFULNESS

By William G. Wirth.

"Did you ever notice", said Neighbour Singh to me the other day. "how a man with a cheerful countenance and a hearty expression of goodwill toward everybody, who joins a group of people, makes every last member of that group put a smile on his face ? It acts just like the coming of the sunshine after a dark thundershower. I have seen folk with a worried look and with dark lines of despair on their faces change into charming people by the magic of a man's or woman's cheerfulness. The contagion of smallpox or diphtheria has nothing on the contagious effect of a happy face, a glad word. The contagious diseases of the body will be outrun every time by the contagious cheerfulness of a joyful soul. If cheerfulness were catching with us human beings what a better world this would be."

What a heap of truth in these words, I thought to myself, with a good measure of personal shame that I was altogether too immune to this contagion. May be Singh made the observation for my benefit. But when you look around it must be admitted that a lot of us have this immunity and need the lesson Singh was attempting to put over for my benefit.

Psychologists tell us that this matter of being cheerful is largly a matter of how you are born. If you have the good fortune to be an extrovert you will just naturally be sunny, optimistic, joyful. If you are brought into this world as an introvert, then you will find it easy to be self-absorbed, serious, anxious. And they are right, But let us not surrender to the sorrowful because we may have been born with a slant in that direction. There are no greater heroes than those who conquer their own self-absorbed, saddened souls and make them the vehicles of good-will and happiness in their converse with others. He that "ruleth his spirit", that will not allow himself to cast a gloom and depression upon others because of his troubles and cares, is indeed better "than he that taketh a city." Why should we make others suffer because of the difficulties we have to overcome? The handicaps of birth need not keep us down. Many are born with weak eyes, but the glasses of the oculist have made reading a success for them.

It was Lincoln who said, "I have found that most people are about as happy as they make up their minds to be." There is profound truth here. Do you want to be a blessing to others, to spread gladness as you mingle with them ? Then take yourself in hand, take inventory of your good and bad points of character, and determine, as Vash Young expressed it, to be "worth something to yourself". Have faith in God and confidence in your fellows; do not be depressed by the discontent and unhappiness around you.

Having done this, we should then realize that we can get good cheer only as we give it. It never comes by one-way traffic. Was it not Lord Byron who sang, "All who joy would win must share it—happiness was born a twin?" There is small wonder that so many of us are gloomy, joy kiling in our influence, since we live withdrawn from others in the castle of our own selfish thoughts and deeds. Do good to those about you, and you have found the the best way to be good to yourself. Give joy to your fellows and you will find a full reservoir of joy for yourself. Our likeness to the Divine can not be attained without this altruistic attitude. If it is true that "God is love", so it must be with us as His offspring. If it is true that "God so loved the world, that He gave", this spirit of giving to others is a "must" if we would be radiant and cheerful.

LORD GANESA AND HIS WORSHIP

—**H. H. Sri Swami Sivananda**

Salutations to Lord Ganesa Who is Brahman Himself, Who is the Supreme Lord, Who is the energy of Lord Siva, Who is the source of all bliss, and Who is the bestower of all virtuous qualities and success in all undertakings.

Lord Ganesa is the Lord of power and wisdom. He is the eldest son of Lord Siva, and the elder brother of Skanda or Karttikeya. He is the energy of Lord Siva, and so He is called the sone of Sankara and Uma. By worshipping Him, mothers hope to earn for their sons the sterling virtues of Ganesa.

Ganesa Chaturthi is one of the most popular of Hindu festivals. This is the birthday of Ganesa. It is the day most sacred to Him. It is observed on the fourth day of the bright fortnight of Bhadrapada (August-September) throughout India, Gold, silver, copper or clay figures of the deity are made and worshipped according to one's faith and capacity.

Symbolic Philosophy of Lord Ganesa's Form

Lord Ganesa is the elephant-headed God. The following story is narrated about Lord Ganesa's birth and His having the head of an elephant. One upon a time, at bathing time, Goddess Gauri, the spouse of Rudra, created Ganapati as a Suddha, or pure white being, out of the mud of Her body, and placed Him at the entrance of the house. She told Him not to allow anybody inside and went for a bath. Lord Siva Himself returned home quite thirsty and was stopped by Ganesa at the gate. Siva got angry and cut off Ganesa's head, taking Him for an outsider. Gauri came to know of this and grieved much. Siva ordered His servants to bring the head of any creature that might be sleeping with its head northwards. The servants made a thorough search and found only an elephant in that position. The head of the elephant was cut off and brought before the Lord. Siva joined the head of the elephant to the body of Ganapati.

Lord Siva made Ganapati worthy of worship by men at the beginning of all their undertakings—marriage, journey, expedition study, etc. He ordained that the annual worship of Ganesa should take place on the fourth day of the bright half of Bhadrapada (August-September).

Lord Ganesa rides on the small mouse. It is His *Vahana* or vehicle. Riding on the mouse represents that h e has killed egoism. Mouse is a small creature. Riding on a mouse and wearing the head of an elephant denote that He is the Creator of all creatures, from the biggest elephant to the smallest mouse. Elephants are very wise. The elephant-head, therefore, indicates that Lord Ganesa is an embodiment of wisdom. It also denotes the the process of evolution. The mouse gradually evolves into an elephant and finally becomes a man. That is the reason why Ganesa has a human body, the head of an elephant, and a mouse as His vehicle. He holds an *Ankusa.* This represents that He is the Ruler of the world. This is the emblem of Divine Royalty. The two feet are His Jnana Sakti and Kriya Sakti. Lord Ganesa represents OM or the Pranava. Pranava is the most sacred among Mantras. Nothing is done without uttering it. Hence the practice of invoking Lord Ganesa before beginning any rite or religious work. Lord

Ganesa has the elephant-head, as that is the one figure in nature which is of the form of Pranava.

He is the Lord of *Ganas* or groups, such as the group of elements, the group of senses, the group of Tattvas. He is the head of the divine troop of Lord Siva.

Vaishnavas also worship Lord Ganesa. They have given Him the name of Thumbikkai Alwar, i.e., Alwar with the proboscis. He is the presiding deity of the Muladhara Chakra. Lord Ganesa's two Saktis are Kundalini Sakti and Vallabha Sakti. His elephant-like ears teach humanity that one must hear more and talk less. The proboscis indicates that one must gather wisdom from all corners of the world. The single tusk signifies that one must repeat and follow one formula. The big belly signifies that one must be always self-contented. His short form suggests that one must be simple and humble towards others. His four hands signify that one must be ready to serve others at all times, without expectation of results. This is the symbolism of His form.

Legends connected with Lord Ganesa

Lord Ganesa is very fond of Modaka, i.e. sweet balls made of rice. On one Ganesa Puja day, He was going from house to house, accepting the offerings of Modaka. Having eaten a good number of these offered to Him, He set out moving on a mouse at night. Seeing a snake, the mouse got afraid and stumbled, with the result that Ganapati fell down. The stomach burst open and the Modakas came out, but Ganapati stuffed the Modakas into the stomach, and catching the same snake, tied it round His belly. Seeing all this, the moon in the sky heartily laughed. Ganapati was annoyed at the behaviour of the moon and pulled out one of His tusks and hurled it against the moon and cursed that no one should look at the moon on the Ganesa Puja Day. If anyone looks at the moon, he will earn bad name or censure or ill-repute. If anyone happens to see the moon on that day by mistake or by chance, if he repeats or hears the story of Lord Krishna's clearing His character in respect of the Syamantaka jewel, he will be free from that ill-repute or blame. Lord Ganesa was pleased to ordain thus Glory to Lord Ganesa ! How kind and merciful He is unto His devotees !

Ganesa and His brother Lord Subrahmanya or Karttikeya had once a dispute as to who was the elder of the two. The matter was referred to Lord Siva for final decision. Lord Siva decided that whoever would make a tour round the world and come out first to the starting point had the right to be the elder. Lord Subrahmanya flew off at once on His vehicle, the peacock, to make a circuit of the world. But Ganesa went round His parents and asked for the prize of victory. Lord Siva said :"Beloved and wise Ganesa ? You did not go round the world." Ganesa replied : "No, but I went round my parents. My parents represent the manifested world." The dispute was settled in favour of Lord Ganesa. Ganesa was thereafter acknowledged as the elder of the two brothers. Ganesa got a fruit as prize for this from Mother Parvati.

In the Ganapati Upanishad, Ganesa is identified with the Supreme Self. The legends that are connected with Lord Ganesa are recorded in the Ganesa Kanda of the Brahma Vaivarta Purana.

Ganesa Mantra and Ganesa Gayatri

During Aksharabhasa, the commencement of learning, children are initiated into the Mantra of Lord Ganesa, Viz., *Om Sri Ganesaya Namah*, first and then only the alphabet is taught,. The following are some of Lord Ganesa's most common names; Sumukha, Ekadanta, Kapila, Gajakarnaka, Lambodara, Vighnaraja, Vinayaka, Dhoomaketu, Ganadhyaksha, Bhalachandra, Gajanana, Vakratunda, Surpakarna, Heramba, Skandapoorvaja,

Siddhivinayaka, Vighneshwara. He is also known as Maha-Ganapati. His Mantra is *Om Gam Ganapataye Namah.* Spiritual aspirants who worship Ganesa as their Ishta Devata (favourte Deity) repeat this Mantra or *Om Sri Ganesaya Namah.*

Ekadantaya Vidmahe Vakratundaya Dheemahi; Tanno Danti Prachodayat—this is the Ganesa Gayatri. Devotees of Lord Ganesa can do Japa of this Mantra also.

Worship of Lord Ganesa

The Ganesa Chaturthi which is observed on the fourth day of the bright fortnight of Bhadrapada (August-September) has become a compuslory observance, as a matter of tradition. Apart from this annual Puja, the Ganesa Vrata—also known by the name of Siddhi-Vinayaka Vrata—is done as a special Vrata for the attainment of some particular end in view, usually for clearing oneself of falony, unjust accusations and charges, recovering lost object, regaining lost status, and removal of obstacles in an enterprise. It is to be per formed on the fourth day of the dark fortnight. It consists of elaborate worship of Lord Ganesa with Shodashopachara and various offerings, after appropriate Sankalpa. He is the Lord Who removes all obstacles in the spiritual path and brings worldly success. So, He is called Vighna Vinayaka.

The divine sage Narada prescribed this Vrata to Sri Krishna who wished to wipe off the dishonour of the charge of stealing the Syamantaka Gem. Much later, Krishna instructed Yudhishtira to perform this Vrata at the time of the Mahabharata war. This renowned Vrata was effectively celebrated by Devas to obtain Ambrosia on the eve of churning the ocean, by Damayanti to find her lost husband, by Lord Rama to get back Sita, by Indra to defeat Vritra Asura, by Bhagiratha to get down the celestial Ganges, by Draupadi for the welfare of her husbands, and by Samba to get cured of his incurable disease.

He who performs this Puja with faith, devotion, and concentration obtains all that he desires and attains the Highest Abode.

May the blessings of Sri Ganesa be upon you all ! May He remove all the obstacles that stand in your spiritual path and bestow on you both Bhakti and Mukti !

★

With best Compliments from :

BAGALKOT CEMENT COMPANY LIMITED

Reg. Office : Stadium House, Veer Nariman Road,
BOMBAY-20

Gram : LIMESTONE !

Phone : **295456/295469**

Works : Bagalkot (Dist. Bijapur—Mysore).
Bombay-20.

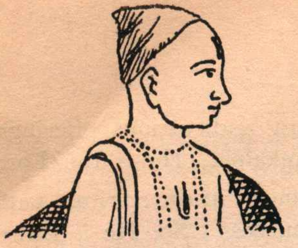

TULSIDAS

By Dr. K. M. Munshi.

I consider it an honour to be able to pay my humble tribute to Tulsidas, one of the greatest of Indian poets and by far the greatest poet of the Indian renaissance of the 15th and 16th centuries. Between the 13th and 14th centuries, tremendous political and social changes took place in the country as a result of foreign inroads. The destruction of the ancient universities in Northern India drove men of learning to seek an uncertain livelihood in the villages and to cater to the people in their own languages. They were terrible centuries, the 13th and the 14th and Indian culture was faced with a tremendous crisis. The "Collective Unconscious' of the race, thwarted in many directions, expressed its eternal vitality in a sweeping movement of *Bhakti*.

The roots of *Bhakt Sampradaya* are found in the *Bhagavata*. When North India was being overrun, the Acharyas of the South gave it a stimulus by providing a philosophical background to *Bhakti*. But the *Bhakti* movements were largely dominated by Vishnu in the form of Narayana or Shri Krishna. In the 11th century, however, owing to the influence of Ramanand, Sri Ramachandra became the centre of a devotional movement which was untinged by the *sringara bhakti* which revolved round Shri Krishna.

Of this movement Tulsidas was the greatest exponent. He wandered on the banks of the Sarayu, living in the memories of Shri Rama and Sita. Like Hanuman, he tore his heart open to find his God, and spoke of Him with exquisite art. The poet thus composed a literary masterpiece, which shares with the *Mahabharat*, *Ramayan*, *Shakuntala* and the *Bhagavat*, the distinction of being among the first twenty books in the world's literature. *Ramacharita Manas* is the scripture *par excellence* of the new upsurge in the Indian mind which kept alive the vitality of Indian culture during

(Shri K. M. Manohi)

the intervening centuries.

When we pay our tribute to Tulsidas, let us see what, apart from his literary heritage, he has helped to build. He has been one of the great architects of the 'Collective Unconscious' of India. This 'Unconscious', on which the continuous life of India has been built from the Vedic age onwards, has for its fundamental the law of the Spirit. God is, and permeates the world; the Spirit is His expression in the invidual and the goal of individual life is to uplift and transform the material by a progressive unfoldment of the Spirit. The supremacy of the moral order, the efficacy of truth and non-violence, the purity, nor merely of ends, but of means, are its necessary aspects.

Behind the whole life of India, hidden below the workings of the mind of our masses through the centuries, has been the belief that man is not merely a physical being; that material welfare is not his only concern; that he has a divine spark which gives him that higher destiny which drives him towards light, goodness, beauty, bliss, joy and a vast freedom.

It is this 'Collective Unconscious' which makes India the motherland of the Spirit and gives her the leadership of the world. In this mad world rushing towards chaos,this message of India—not a philosophic, other-wordly message, but a message to transform this world is the only hope,. It can only be realised, however, if we continue to draw inspiration from masters like Tulsidas and to live up to what they have taught us. ★

વિભાગ 'ગ'

આશીર્વાદ

ભોગવાદ તેમ જ જડવાદમાં અંધ બનેલો સુખ અને શાંતિને માટે અહીં તહીં ભટકે છે, બાહ્ય સુખો પાછળ ફર્યા કરે છે અને છેવટે દુ:ખી થઈને ખીન્ન અને મ્લાન બની જાય છે. શું બહારના વિષયો સિવાય બીજે કયાંય સુખ, શાંન્તિ, અને સ્વાસ્થ્યનું સ્થાનજ નથી? જરૂર છે પરંતુ આ યંત્ર યુગના જમાનામાં ઘણા લોકો જાણતા હોવા છતાં બોલવામાં ગભરાય છે. આવા કરાલ સમયમાં "માનસ સાધના મંડળ" એક લોકોત્તર અને દિવ્ય કામ કરી રહ્યું છે જેમાંથી અખંડ આનંદ, અખંડ શાંન્તિ અને અખંડ સ્વાસ્થ્ય, વ્યકિતને શી રીતે મળી શકે અને એને માટે કઈ સાધના જરૂરી છે તે દિશામા તે પ્રયત્ન કરી રહ્યું છે અને તે માટે મંડળે કેટલોક કાર્યક્રમ પણ નક્કી કર્યો છે તે જોઈ ખુબ આનંદ થયો. મંડળના સેક્રેટરી શ્રી ત્રિભુવનપાલ ગોપાલ એક ત્યાગી. શકિતશાળી, કર્મશીલ અને આધ્યાત્મિક વ્યકિતછે. તેમની સાથે વાતચિત કરવાથી મને આ મંડળનો જે કંઈ પરિચય થયો છે તેનાથી મને ફકત આશા જ નહિ પરંતુ પુરી શ્રદ્ધા છે કે આ કામની પાછળ ભગવાન ઉભા રહેશે જ અને કામને વધુને વધુ આગળ વધારશે.

હું બીજે કાર્યમાં રોકાયેલો હોવાથી આવી શકતો નથી મને દુ:ખ થાય છે. છતાં સમય કાઢી આવવા જરૂર પ્રયત્ન કરીશ.

આવા મહાન કાર્યની પાછળ ભગવાનની જ શકિત હોય છે અને તે જ આપણા સહુને યુગ પરિવર્તનના કામ માટે શકિત, બુદ્ધિ, અને સામર્થ્ય આપતી રહે છે.

— પાંડુરંગ શાસ્ત્રી

શ્રીમદ્‌ભગવદ્‌ગીતા પાઠશાળા માધવબાગ, બમ્બઈ—૪.

મન શુદ્ધિ

શ્રી જી. જી. મહાદેવિવા

સાધારણ રીતે આ શબ્દનો ઉપયોગ અવારનવાર કરવામાં આવે છે. જ્યારે તેનો વપરાશ કરવામાં આવે છે ત્યારે બોલનારની શ્રોતાઓ ઉપર અમુક પ્રકારની અસર પણ પડે છે. આ સ્વાભાવિક છે. પણ આ શબ્દનો અર્થ તેનો ઉપયોગ કરનાર અને સાંભળનાર બરાબર સમજ્યા છે કે નહિ તે સમજવું જરૂરી છે.

હમણાં એક રીતે ફેશન છે કે જેમ બને તેમ હૃદય શુદ્ધિ - મન શુદ્ધિ સંબંધમાં વધારે બોલવું. મહાત્માઓ જ્યારે પોતાના પ્રવચન કે વાર્તાલાપમાં આવી શુદ્ધિ સંબંધમાં બોલે છે ત્યારે તેનો અર્થ સ્પષ્ટ હોય છે અને વકતાનો પ્રભાવ પણ સારી રીતે પડે છે કારણ તેમનું વર્તન અનુસાર તે હોય છે. જ્યાં રાગ, દ્વેષ જીવનમાં મહત્ત્વનો ભાગ ભજવે છે ત્યાં શુદ્ધ અંતઃકરણની વાત એક જાતનો દંભ છે. જો માણસ પોતાના જીવનમાં થોડું ઘણું જતું આવતું કરે — give take ના સિદ્ધાંત પ્રમાણે વર્તે — તો સારા પ્રમાણમાં જે બોલે તેની છાપ પડે.

અત્યારે આપણા દેશમાં કોમી એકતાનો સવાલ મહત્ત્વનો છે. જાહેર સભાઓમાં વકતાઓ આ પ્રશ્ન ઉપર જેમ ફાવે તેમ બોલે છે. પણ માત્ર બોલવાથી આવી એકતા આવવાની નથી. રાજકીય — નેતાઓ અને પ્રધાનો તો એમ જ માને છે કે તેઓ સર્વગુણસંપન્ન છે અને કોમી એકતાના સ્તંભરૂપ છે અને તેમના હાથમાં કોમી એકતાની ભાવના એટલી બધી છે કે તેમના માટે કાંઈ કરવાનું રહેતું નથી. પણ તેમનું વર્તન એવું છે ? જો હોત તો આપણા દેશમાં ચાલતા પ્રાંતોના, ભાષાના વિગેરેના ઝગડાઓનો ક્યારનો અંત આવ્યો હોત. થોડા દિવસ ઉપર મુંબઈમાં "all religioms meet"નું સંમેલન થયું. ધર્મના પ્રચારકો સાથે બીજા ક્ષેત્રે ખ્યાતિ પામેલા વકતાઓ પણ સામેલ હતા. ભાષણો લાંબા થયાં. પણ તેની અસર કેટલી પડી તે જણાયું નથી.

એકતાની ભાવના ભાષણો કરે આવતી નથી. આને માટે અમુક માનસિક કસરતની જરૂર છે. શારીરિક કસરત જેટલે અંશે શરીર નિરોગી રાખવા જરૂરી છે તેનાથી વધારે અંશે માનસિક કસરત મન નિરોગી રાખવા માટે આવશ્યક છે. આને લગતું શિક્ષણ જો નાનપણથી આપવામાં આવે તો તેનું પરિણામ સારું જ આવે. "મારૂં મન શુભ સંકલ્પ કરે" તેવો વિચાર દરેક યુવાનના મનમાં ઠસાવવો જોઈએ. આવા યુવાનોના વિચાર પ્રમાણે તેમનું વર્તન બનશે અને બીજાઓ માટે યોગ્ય પ્રેરણા આપવામાં તેઓનો પુરુષાર્થ નિષ્ફળ નહિ જાય.

અત્યારે અપાતી કેળવણીમાં આવા શિક્ષણનો પાયો બિલકુલ નથી તે કહેવામાં અતિશયોક્તિ નથી. આવી કેળવણી ફરજીઆત અપાય તેવો પ્રચાર આપણા મંડળ તરફથી થાય અને સક્રિય પગલાં પણ સાથે સાથે ભરાય તો જરૂર મહત્ત્વનું કામ થાય.

શાંતિ સેનાઓ આપણા દેશમાં ઠેર ઠેર થઈ છે — આ પ્રવૃત્તિ જરૂર સારી છે. પણ શાંતિ, શાંતિ શબ્દો બોલવાથી શાંતિ થવાની નથી. જ્યાં સુધી હૃદય —પલ્ટો નહિ થાય અને એક બીજાના ગળા કાપવામાં — પછી ભલે તે આર્થિક ક્ષેત્રે હોય કે ધાર્મિક ક્ષેત્રે — જ્યાં સુધી માણસનું મન નહિ પ્રેરાય ત્યાં સુધી બધી શાંતિની વાતો પોકળ છે. જેટલો મને જીવવાનો અધિકાર છે તેટલો જ — વધારે નહિ તો — અધિકાર બીજાને પણ જીવવાનો છે. આ સિદ્ધાંત અનુસાર આપણે આપણા વ્યવહારમાં પ્રમાણિકપણે વર્તીએ. મારા કર્મ એવા ના હોવા જોઈએ કે હું એકલું મારૂં હિત જોઉં અને બીજાનું નહિ. આવી રીતનો મનમાં સંયમ આપણે કેળવવો જોઈએ, મનમાં નારાયણનું — રામનું — સ્મરણ અને માનસિક મિલન આવા સંયમ માટે મુખ્ય સાધન છે. અને આગળ જતાં મનની શુદ્ધિ would become a reality.

માનસ સાધના મંડળના અધ્યક્ષ

પરમપૂજ્ય શ્રી હૃદયનારાયણજી (યોગીજી)નો

ટૂંક પરિચય

['યોગીજી' શબ્દ સાંભળતાં જ ભગવાંધારી રુદ્રાક્ષથી શોભતા ભસ્મવિભૂષિત માતબર વ્યકિતની કલ્પના સમક્ષ ઊભી થાય છે. "માનસસાધના મંડળ" ના સ્થાપક શ્રી યોગીજીને પ્રત્યક્ષ જોતાં-સાંભળતાં એ કલ્પના ભ્રમ દૂર થાય છે. એક અદના સામાન્ય માનવી પણ સમાજમાં જ રહી, એક સામાજીક વ્યકિત તરીકે રહી આત્મનિષ્ઠાથી, ભગવાં વસ્ત્ર ધારણ કર્યા વિના, રુદ્રાક્ષથી ધારણ કર્યા વિના, ભસ્મ લગાડયા વિના, સાચા શબ્દમાં 'યોગીજી' બની શકે છે. આપ પણ યોગીજી બની શકો. એ સત્ય 'શ્રી યોગીજી'ના જીવનના ટૂંક પરિચયમાંથી મળી રહે છે.]

અમે પરમપૂજ્ય શ્રીહૃદયનારાયણજી (યોગીજી) નો ટૂંક પરિચય આપીએ છે. તેમની બાબતમાં પૂજ્યસંત શ્રી બદરીનારાયણજી ત્રિપાઠીએ સન ૧૯૨૯માં કહ્યું હતું: "તમારે રામચરિત માનસમાં જનતાના જીવનને ઉપયોગી જે તત્વ કહ્યું છે તે તત્ત્વનું જાહેર જનતામાં પ્રચાર કરવાનો છે જેથી મનુષ્યનું વ્યક્તિગત તેમ જ સામાજિક જીવનનાં સઘળાં દુ:ખો નિર્મૂળ થાય." જ્યારે પૂજ્ય યોગીજી મહારાજે કહ્યું કે આવા મહાન કાર્ય માટે હું સર્વે પ્રકારે અયોગ્ય છું ત્યારે તેમણે કહ્યું હતું કે, "આ મારું કર્તવ્ય છે અને એ મારું કર્તવ્ય હું તમારી પાસે જ કરાવીશ." જ્યારે સત્સંગ કે સંવાદ થતો ત્યારે શ્રી યોગીજી મહારાજ પૂજ્યસંત શ્રી બદરી નારાયણજીના વચનામૃતોની હંમેશ નોંધ લખી લેતા. ત્યારે પૂજ્ય સંત મહારાજ કહેતા: "આવી નોંધ લખવાની શી જરૂર છે? તમારી મારફત હું પોતે જ જનતા સમક્ષ બોલીશ." આજ ઉત્તર ભારત ના એક ખૂણેથી બીજે ખૂણે, કોઈ કોઈ વાર રાજસ્થાન, મધ્યભારત કે મુંબઈની જનતા, જેમણે શ્રી યોગીજી મહારાજનું પ્રવચન સાંભળ્યું છે તે બધા કહે છે કે જ્યારે શ્રી યોગીજી મહારાજ પ્રવચન કરે છે, ત્યારે એવું લાગે છે કે તે પોતે બોલતા નથી, પરંતુ એમની મારફતે કોઈ બીજું જ બોલી રહ્યું છે.

જે લોકોએ પૂજ્ય યોગીજી મહારાજને જોયા નથી તેમને 'શ્રી યોગીજી' નામથી ભ્રમ થવાનો સંભવ છે. સામાન્ય રીતે 'શ્રી યોગીજી' નામથી હર કોઈને માન્યતા બંધાય કે 'યોગીજી' યોગ શાસ્ત્રના કોઈ પારંગત સિદ્ધ પુરુષ હશે. એક સજ્જને પોતાનો અનુભવ લખતાં કહે છે કે: "જ્યારે શ્રી યોગીજીના પ્રવચનની શરૂઆત થઈ તો મને આશ્ચર્ય થયું અને શંકા પણ થઈ કે સફેદ ખાદીના ધોતીયું અને ઝભ્ભા પહેરેલી અને શરીરે નબળી-પાતળી વ્યકિત 'શ્રીયોગીજી' છે. મેં તો ધારેલું કે ભગવાં વસ્ત્ર ધારી સશકત તંદુરસ્ત જાજવલ્યમાન સંન્યાસી હશે. પૂજ્ય યોગીજી ફક્ત ગોસ્વામી તુલસીદાસ રચિત શ્રીરામચરિત માનસના સામાન્ય જનઉપયોગી તત્ત્વના વૈજ્ઞાનિક વિવેચકજ નથી પણ તેમણે માનસમાં રજુ કરેલા વૈદિક સિદ્ધાંતો અને તેની તાંત્રિક પ્રણાલિ પોતાના જીવનમાં ઉતારી છે અને તેમના અનુયાયી સાધકોના જીવનમાં સફળતાપૂર્વક ઉતારી રહ્યા છે. શ્રી રામચરિત માનસમાં માનવ જીવનનો આદર્શ સંન્યાસ નથી પરંતુ એક સદ્‌ગૃહસ્થના સ્વરૂપમાં રજૂઆત કરવામાં આવ્યો છે કે જે ભગવાન શિવજીની કથાના રૂપમાં રજૂ કરવામાં આવ્યો છે. પ્રશ્ન એ થાય છે કે એમને "યોગીજી"નું બિરૂદ કેવી રીતે પ્રાપ્ત થયું?

શરૂઆતમાં શ્રી હૃદયનારાયણજી સંતપ્રવર શ્રી બદરીનારાયણજી ત્રિપાઠીની પાસે યોગ શાસ્ત્ર શીખવાની ઈચ્છાથી ગયા, પરંતુ શ્રી ગુરૂમહારાજે એમને યોગશાસ્ત્રના ક્રિયાકાંડો વિગતવાર ન શીખવ્યા પરંતુ એમણે શ્રી હૃદયનારાયણજીને "યોગીજી"નું નામ આપી દીધું. ત્યારથી શ્રી હૃદયનારાયણજી "યોગીજી" ના નામે પ્રસિદ્ધ થયા.

જન્મ અને શિક્ષણ

પરમ પૂજ્ય શ્રી 'યોગીજી'નો જન્મ સન ૧૯૦૫ના જુલાઈ માસની છઠ્ઠી તારીખે ફૈઝાબાદમાં થયો હતો. એમના પિતાજી શ્રી હિંમતબહાદુરજી ત્યાંના પોલીસ કાર્યાલયમાં હિસાબી કારકુન હતા. સન ૧૯૧૦માં એમના પિતાશ્રીની અલ્લાહાબાદમાં ઈન્સ્પેક્ટર જનરલ ઑફ પોલીસના કાર્યાલયમાં બદલી થઈ. ત્યારથી બધાં અલ્લાહાબાદમાં આવ્યા.

શ્રી યોગીજી એ અલ્લાહાબાદની સી. એ. વી., ડી. એ. વી. તથા કે. પી. કૉલેજોમાં અભ્યાસ કર્યો અને સને ૧૯૨૭ માં બી. એ. ની ડિગ્રી મેળવી.

થોડો સમય શ્રી યોગીજીએ ઉત્તર પ્રદેશ સચિવાલયમાં કામ કર્યું અને પછી સી. એ. વી. કૉલેજમાં પ્રોફેસર થયા. થોડા સમય પછી એમણે ફરીથી સરકારી નોકરી લીધી અને પોલીસ વિભાગમાં અનુવાદક થયા. તા. ૧૭ મી ફેબ્રુઆરી ૧૯૫૬ ને દિવસે એમણે પોતાની નોકરીનું રાજીનામું આપી દીધું.

શ્રી. ગુરૂજી સાથે મિલાપ

સન ૧૯૨૭ માં પૂજ્ય યોગીજી અલ્લાહાબાદમાં પ્રથમ વર્ષ — કાયદાનો અભ્યાસ કરતા હતા તેજ સમયે શ્રી સંતપ્રવર પંડિત બદરીનારાયણજી ત્રિપાઠી અલ્લાહાબાદ યુનિવર્સિટીમાં એમ. એ. નો અભ્યાસ કરતા હતા. શ્રી બિન્દુજી મહારાજને ઘરે પહેલી વાર શ્રી યોગીજી અને શ્રી ગુરુજીની મુલાકાત થઈ. મુલાકાત ધીરે ધીરે ગાઢ મૈત્રીમાં પરિણમી. તેમના ફુઆજી તે સમયે મહારાણી બેટીઆ ને ત્યાં હતા, તેમની ભલામણથી મહારાણી બેટીજીના મુઠ્ઠીગંજમાં આવેલા મકાનમાં એક ઓરડો લીધો અને શ્રી યોગીજી તથા શ્રી ગુરુજી બંન્ને સાથે રહેવા લાગ્યા. રાત—દિવસ ક્લાકોના ક્લાકો આધ્યાત્મિક વિષયો પર ચર્ચા થતી રહેતી.

નાનપણથી જ શ્રી યોગીજીનું શરીર સ્વાસ્થ્ય સારૂં રહેતું ન હતું. સન ૧૯૨૯ માં શ્રી બનાર્ડ મેકફેડનનું પુસ્તક "ફાસ્ટીંગ ફોર હેલ્થ" એમના વાંચવામાં આવ્યું. એ પુસ્તક ધ્યાનપૂર્વક વાંચી લીધા પછી શ્રી યોગીજીએ ફકત જળાહાર કરી પંદર દિવસ ઉપવાસ કર્યા. ઉપવાસ પૂરેપૂરા સફળ થયા પરંતુ ઉપવાસ છોડતી વખતે ભૂલ થઈ. પરિણામે શ્રી યોગીજી બિમાર થઈ ગયા; બિમારી ગંભીર થતી ગઈ અને એક દિવસ શ્રી યોગીજીને લાગ્યું કે મોત હવે નજીક આવ્યું છે. તેજ દિવસે તેમણે શ્રી ગુરુજી મહારાજને પત્ર લખ્યો "જો ચાર દિવસ માં તમે અહીં ન આવો તો તમે મને જીવતો જોઈ શકશો નહીં."

શ્રી ગુરુજી મહારાજ તે વખતે તેમના ઘરે રાયબેરલીમાં હતા. જ્યારે પત્ર આવ્યો ત્યારે તે જમવા બેઠા હતા; પત્ર વાંચતાં જ ઉભા થઈ ગયા.. જમવાનું એમ જ રહ્યું. ૧૧ માઈલ પગે ચાલતા — દોડતા સ્ટેશને પહોંચ્યા અને અલ્લાહાબાદ આવી પહોંચ્યા. જ્યારે એમણે શ્રી યોગીજીને જોયા ત્યારે ફકત એટલું જ બોલ્યા : "અત્યારે જ સંપૂર્ણ સાજા-માજા થઈ જાવ." અને તે જ ક્ષણે શ્રી યોગીજીની બિમારી જતી રહી. ત્યાર બાદ શ્રી યોગીજી શ્રી ગુરુજીની સાથે રાયબરેલી જિલ્લામાં કુંદનગંજ સ્ટેશનની પાસે દુલમપુર, ગામમાં થોડા દિવસ રહ્યા. ત્યાં શ્રી ગુરુજીની કૃપાથી શ્રી ભગવાનની અનેક લીલાઓ જોઈ. અને ત્યાં જ જૂન ૧૯૨૯ માં એમણે દિક્ષા લીધી. 'દિક્ષા'ના સમયે પણ શ્રી ભગવાનની એક લીલા થઈ. જેનું ટુંક વર્ણન આપ્યા સિવાય નથી રહેવાતું.

એકતો ગામડું ગામ અને કાર્યક્રમ આધ્યાત્મિક દિક્ષાનો; તેથી ફકત પાંચ સાત મિત્રોને જ આમંત્રણ આપેલું. દિક્ષા આપવાનો કાર્યક્રમ પૂરો થતાં, ભોજનની તૈયારી થઈ. રસોઈ પાંચ — સાત માણસો માટે જ બનાવેલી. પરંતુ ઘણા માણસો 'દિક્ષા વિધિ' જોવા આવી પહોંચ્યાં હતાં. બધાં વિચારમાં પડયાં કે આ બધા માણસો માટે ભોજનનો પ્રબંધ કેવી રીતે કરવો. ભોજન વિના મોકલવાં તે પણ અનુચિત હતું. ગામ પણ એવડું નાનું કે જોઈતી વસ્તુઓ પણ જલદી મળી ન શકે. બધા વિમાસણમાં પડયા : શ્રી ગુરુજી મહારાજને આ વાતની ખબર પડી ત્યારે તે રસોડામાં ગયા. જે પાંચ — સાત માણસો માટેનું ભોજન બનાવ્યું હતું તેના પર એક ચાદર ઢાંકી અને સૂચના આપી કે કોઈએ ચાદર ઉપાડવી નહીં, પરંતુ એક બાજુથી ભોજન સામગ્રી કાઢી પિરસતાં જવું. શ્રી ભગવાનની લીલા અપાર છે. બધાં માણસોએ સારી રીતે ભોજન લીધું અને જે પાંચ — સાત માણસો માટે રસોઈ બનાવેલી, તેમને માટે તેટલી રસોઈ બાકી રહી હતી.

એ જ પ્રસંગે શ્રી યોગીજીની સાથોસાથ પરંતુ તેમની પહેલાં તેમનાં પત્ની શ્રીમતિ શ્યામા રાણીએ પણ દીક્ષા લીધી.

દુલમપુરથી પાછા ફર્યા બાદ સંબંધ વધુ ગાઢો થયો અને બંન્ને કુટુંબો સાથે જ રહેવા લાગ્યાં. સન ૧૯૩૭માં જ્યારે ઉત્તર પ્રદેશ સચિવાલય લખનૌ લાવવામાં આવ્યું ત્યારે શ્રી યોગીજી પણ લખનૌ આવ્યા. ત્યારથી શ્રી ગુરુજી સાથેની મુલાકાતો રજાના દિવસોમાં થતી, અને જ્યારે કાર્યાલય ઉનાળાના દિવસોમાં નૈનીતાલ લઈ જવામાં આવતું ત્યારે નૈનિતાલમાં મુલાકાતો થતી.

સત્સંગની વ્યવસ્થા

શ્રી ગુરુજી જ્યારે અલ્લાહાબાદમાં રહેતા હતા ત્યારે રામબાગમાં હનુમાનજીના મંદિરમાં શ્રી ગુરુજીનો સાપ્તાહિક સત્સંગ (તુલસી સત્સંગ) યોજાતો. કોઈ વાર શ્રી ગુરુજી ગેરહાજર હોય ત્યારે શ્રી યોગીજી પ્રવચન કરતા. લખનૌ આવ્યા બાદ પણ સત્સંગનો ક્રમ ચાલુ જ રહ્યો. શરૂઆતમાં સત્સંગ સ્વ. શ્રી જગતનારાયણજી ભાર્ગવના કલે સ્કવેરમાં આવેલા મકાનમાં થતો. આ જગ્યાએ ઘણો સમય સત્સંગ કાર્યક્રમ ચાલુ રહ્યો. ત્યાર પછી કેટલાક સત્સંગીઓના આગ્રહથી જુદા જુદા સત્સંગીઓના મકાન પર સત્સંગ ક્રમ થવા લાગ્યો. પછીથી શ્રી યોગીજીના મકબુલગંજના નિવાસ સ્થાન પાસે હાતા માયારામમાં સત્સંગનો ક્રમ હંમેશા માટે ચાલુ રહ્યો.

શ્રી ગુરુજીના બ્રહ્મલીન થયા પછી સત્સંગીઓએ પૂજ્ય શ્રી યોગીજીના સત્સંગ અને પ્રવચનો માટે ઘણો આગ્રહ રાખતા હતા. નોકરીમાંથી રજાના દિવસો એ જ શ્રી યોગીજી લખનૌ બહાર જઈ શકતા, અને તે પણ થોડા કલાકના સત્સંગ માટે, તેથી સાધકોને સંતોષ ન થતો શ્રી યોગીજીની આર્થિક પરિસ્થિતિ સારી ન હતી. સાધકોએ નોકરી ન છોડવા બહુ આગ્રહ કર્યો છતાં પણ શ્રી યોગીજી એ સાધકોનો પૂર્ણ સંતોષ થાય તેટલા જ માટે, પોતાની સરકારી નોકરીનું રાજીનામું આપી દીધું.

રાજીનામું આપ્યા બાદ જ્યારે શ્રી યોગીજી સહકુટુંબ દિલ્હી રહેવા લાગ્યા ત્યારે હાતા માયા રામ જ્યાં સત્સંગ ક્રમ થતો રહેતો તે સ્થળના બિસ્માર હાલત થતાં ગૌતમ બુદ્ધ માર્ગ પર આવેલા ગીતા ભવનના પૂજારીના આગ્રહથી સત્સંગ ક્રમ રાખવામાં આવતો. દરમ્યાન સત્સંગીઓના આગ્રહને માન આપી શ્રી યોગીજી ઉત્તર ભારત, બિહાર, પશ્ચિમ બંગાળ, ઉત્કલ, રાજસ્થાન, મધ્ય પ્રદેશ, મહારાષ્ટ્ર વિગેરે પ્રદેશોમાં દર માસ લગભગ ૩૦૦૦ માઈલોની મુસાફરી કરતા; ત્યારે લખનૌમાં જે અઠવાડિક સત્સંગનો ક્રમ રહેતો તે ક્રમ માસિક ક્રમ થયો. લખનૌના સત્સંગ દરેક મહિનાના બીજા રવિવારને દિવસે વરસોથી સીટી મોન્ટેસરી સ્કૂલ, ૧૨, મોતીલાલ નેહરુ માર્ગ પર નિયમિત થાય છે.

શ્રી યોગીજી મહારાજ માનવ દેહે આપણી સમક્ષ મોજુદ છે એટલે એમના સંબંધી બીજી ઘણી ઘણી વાતો કહેવાની છે પણ એ વાતો હાલ તુરત મુલતવી રાખીએ. અત્રે એટલું જ કહેવું બસ થશે કે શ્રી રામચરિત માનસમાં માનવ જીવન વ્યવહાર ઉપયોગી જે તત્વ આજ ૪૦૦ વર્ષોથી લોકનજરમાં આવ્યું ન હતું તે શ્રી યોગીજીના અથાગ પરિશ્રમથી તેમની વૈજ્ઞાનિક પ્રક્રિયાઓ સહિત બહુજનહિતાય લોકનજરે આવ્યું છે. કોઈ પણ સામાન્ય માનવ માટે શ્રી રામચરિત માનસમાં પ્રબોધેલું માનવ જીવન વ્યવહાર ઉપયોગી તત્ત્વ મેળવવાની સિદ્ધિ કેટલી સુલભ છે તે શ્રી યોગીજી એ બતાવ્યું છે. તે માર્ગ અપનાવવાથી માનવ જીવન ઉપયોગી અખંડ સ્વાસ્થ્ય, અખંડ શકિત, અખંડ આનંદ અખંડ જ્ઞાન, અને અખંડ પ્રેમની સિધ્ધી મેળવવાનો માર્ગ બતાવનાર શ્રી યોગીજી મહારાજ સંબંધી નિ:સંદેહ કહી શકાય કે

"राम भगत अब अमिय अघा हूं ।
कीन्हिहु सुलभ सुधा बसुधा हूं ।।

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा । जोग न जप मख व्रत उपवासा ।।
नर सरीर धरि जे पर-पीरा । करहिं ते सहहिं महा भव पीरा ।।

માનસનું ઉદ્દેશ્ય તથા રચના શૈલી

— પરમપૂજ્ય શ્રી હૃદય નારાયણ (યોગીજી)

[શ્રી રામચરિત માનસની ફલશ્રુતિ શું? ગોસ્વામી તુલસીદાસજીએ કહ્યું છે કે માનસપ્રેમીઓના ત્રિવિધપાપ દૂર કરવાનું અને રચનાશૈલી? એ છે પૌરાણિક સૈદ્ધાન્તિક વિવેચન વૈદિક અને સાધના પ્રણાલિ તાંત્રિક. શ્રી યોગીજી આ લેખમાં 'સુખ', અન્તસુખ' અને 'સ્વાન્તઃ સુખ'ની માનસમાં કરેલી ચર્ચાનું વિવરણ કરી વિશુદ્ધ પ્રેમની ઉપલબ્ધિ જ માનસની રચનાનો ઉદ્દેશ છે તે સમજાવે છે —]

શ્રીરામ ચરિતમાનસના પ્રારંભિક શ્લોકોમાં જ કવિકુલભૂષણ ગોસ્વામી તુલસીદાસજીએ માનસની રચનાશૈલી નીચેની શબ્દોમાં સ્પષ્ટ કરી છેઃ—

नाना पुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं कूचिदन्यतो ऽपि ।

એટલે માનસ જુદા જુદા પુરાણો અને નિગમાગમસંમત છે. ગુરુકૃપા અને સંતોના આશીર્વાદથી એનો અર્થ જે કાંઈ સમજી શક્યો છું, તે મારા મિત્રો માટે પ્રકટ કરું છું જેઓ માનસના આધારે જીવનમાં આમૂળ ક્રાંતિકારી પરિવર્તન ઈચ્છે છે, કારણ કે માનસની ફળશ્રુતિ જ માનસપ્રેમીઓના જીવનમાંથી ત્રણે તાપ દૂર કરનારી છે, જેમકે :

सुनु खगपति यह कथा पावनी ।
त्रिविध ताप भव दाप दावनी ।।

એનો અભિપ્રાય એવો છે કે માનસની રચના - શૈલી પૌરાણિક છે, સૈદ્ધાંતિક વિવેચનો વૈદિક છે અને સાધના— પ્રણાલી તાંત્રિક છે. બીજા શબ્દોમાં, રામાયણના કથાનકો મારફત વૈદિક સિદ્ધાંતોનું જ પ્રતિપાદન છે, જેથી સામાન્ય જનતા પણ તેમને સહેલાઈથી સમજી શકે. સાથે જ તે સિદ્ધાંતો સમજ્યા પછી જીવનમાં તેમનો પ્રયોગ કરવાની સરળ પદ્ધત્તિ પણ વર્ણવેલી છે, જે તંત્રનો વિષય છે. આવી રીતે ક્રમપ્રમાણે પુરાણ નિગમ — આગમનો સંબંધ સાંભળવા, સમજવા અને કરવાનો છે.

सुनहु तात मन मति चित लाई ।

એટલે પૌરાણિક કથાભાગ મન દઈને સાંભળ-વાનો છે, વૈદિક સિદ્ધાંતો બુદ્ધિ વાપરીને સમજવાના છે અને આગમનો અંશ ચિત્ત દઈને કરવાનો છે, ત્યારે જ જીવન બદલી શકાશે. 'માનસ'નો પૌરાણિક ભાગ ઘણો જ આકર્ષક છે :—

श्रवन सुखद अरू मत अभिरामा ।

પણ એનો સિદ્ધાંત ઘણો જ જટિલ છે; ઘણી વખત સાંભળ્યા પછી પણ થોડો જ સમજી શકાય છે: —

तदपि कही गुरु बारहि बार ।
समुझि परी कछु मति अनुसारा ।।

એક વખત સિદ્ધાન્ત સમજી લીધા પછી સાધનપ્રણાલી સહેલી થઈ જાય છે :—

सुगम उपाय पाइबे केरे ।

આ પ્રમાણે 'માનસ'ની કથાનો ભાગ રોચક છે પણ તે જીવન પરિવર્તનમાં વિશેષ સહાયક નથી. એના માટે તો સિદ્ધાંત સમજી લેવાની જરૂર છે :—

જો કે મજબૂત હોડી મેળવ્યા પછી પેલે પાર પહોંચવાની શક્યતા થઈ જાય છે, છતાં પણ હોડી હંકારવાની ક્રિયા અનિવાર્ય છે. એવી જ રીતે સિદ્ધાંત સમજ્યા પછી ખરો સાધનપંથ અપનાવ્યા પછી જ જીવનકાળમાં આત્યન્તિક દુઃખનિવૃત્તિનો અનુભવ થઈ શકે છે.

जीवनमुक्त महामुनि जेऊ ।
हरिगुन सुनहि निरंतर तेऊ ।।

આવી રીતે રામાયણના આધારે જીવનકાળમાં જ મુક્તિનો અનુભવ થઈ શકે છે.

'માનસ'નો પ્રતિપાદ્ય વિષય ભગવાન રામ છે :—

यहि महँ आदि मध्य अवसाना ।
श्रुति प्रतिपाद्य राम भगवाना ।।
तात सुनहु सादर मन लाई ।
कहहुँ राम कै कथा सुहाई ।।

એનાથી સ્પષ્ટ થાય છે કે 'માનસ'માં તુલસીદાસજીએ શ્રી રામની કથા રજુ કરી છે, પણ એની રચના શૈલીની સૌથી મોટી વિશેષતા એ છે કે પૌરાણિક રઘુવંશના નાયક રામને જ્યાં તેમણે મર્યાદા પુરુષોત્તમના રૂપમાં ચીતર્યા છે, ત્યાં તે જ રામને અખંડ શક્તિ, અખંડ જ્ઞાન અને અખંડ આનંદ એટલે સચ્ચિદાનંદના રૂપમાં પ્રતિપાદિત કર્યા છે, જે નીચેની લીટીઓમાં પણ વ્યક્ત કર્યું છે:—

रामसच्चिदानन्द दिनेसा । नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा ।।
राम ब्रह्म चिन्मय अविनासी । सर्व रहित सब उर-पुरवासी ।।
सब कर परम प्रकासक जोई । राम अनादि अवधपति सोई ।।
जगत प्रकास प्रकासक रामू । मायाधीश ग्यान गुनधामू ।।

આ મૂળ હકીકતને લક્ષ્યમાં રાખી જો આપણે રામાયણનું વિવેચન કરીએ, તો જોઈશું કે રામચરિત માનસમાં વચ્ચે વચ્ચે મનુ— સતરૂપા, શિવ—પાર્વતી, નારદ—મોહ, સીતા—સ્વયંવર વગેરે વિવિધ પ્રકરણોમાં ઉપાખ્યાયિકાઓ મારફત ગોસ્વામીએ માનવ માત્ર માટે જીવનોપયોગી દર્શનનું જ પ્રતિપાદન કર્યું છે. આ પ્રમાણે ગંભીર વિચાર કરવાથી જણાય છે કે શ્રી રામચરિત માનસની રોચક રચનાશૈલીમાં ખરી રીતે વિકાસવાદનો જ સિદ્ધાંત પ્રતિપાદિત થયો છે અને ટૂંકમાં તેઓ છે કે માનવજીવનમાં ભોજનથી શક્તિ, ધનથી સુખ અને અધ્યયનથી જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ નથી થતી, બલ્કે સાચું તો એ છે કે શરીર, મન અને બુદ્ધિમાં જે વિકારો મળ, વિક્ષેપ અને આવરણના રૂપમાં છે, તેમને લીધે જ મનુષ્યને એવી પ્રતીતિ થાય છે કે શક્તિ, આનંદ અને જ્ઞાનનો સંબંધ ભોજન, ધન અને અધ્યયન સાથે છે. પણ ભગવાનનો પ્રકાશ મેળવ્યા પછી આ ભ્રમ દૂર થઈ જાય છે. આ વિચારધારાની પુષ્ટિમાં 'માનસ'માં મનુ સતરૂપાની સાધનાનું નાનું સરખું એક પ્રકરણ આપેલું છે. આ પ્રકરણ મારફત ગોસ્વામીજીએ માનવીના આધ્યાત્મિક વિકાસ માટે સાધનાની વિભિન્ન અવસ્થાઓ— આર્ત, જિજ્ઞાસુ, અર્થાર્થી અને જ્ઞાની—નું સફળ દિગ્દર્શન કરાવ્યું છે. આપણે જોઈએ છીએ કે ગીતામાં જે વિષાદયોગનું વર્ણન છે, તેને જ તુલસીદાસજીએ નીચેના સોરઠા છંદમાં વર્ણાવ્યો છે:—

होइ न विषय विराग, भवन बसत भा चौथपन ।
हृदय बहुत दुख लाग, जनम गयो हरि भगति बिनु ।।

'**हृदय बहुत दुख लाग**' થી સ્પષ્ટ છે કે મનુ મહારાજને લૌકિક દષ્ટિએ દરેક પ્રકારનું સુખ સુલભ હોવા છતાં તેમને પોતાની વર્તમાન અવસ્થાથી અસંતોષ પેદા થયો. અસંતોષનું કારણ ગમે તે હોય, પણ સાધકના આધ્યાત્મિક વિકાસ માટે તેના પોતાની વર્તમાન અવસ્થાથી અસંતોષ પેદા થવો એ ઘણું જ આવશ્યક છે; કારણ કે એ જ એની સાધનાનું પહેલું પગથિયું છે, અને એનું જ નામ આર્ત અવસ્થા છે. આ અસંતોષ પેદા થવાની સાબિતી છે તે વસ્તુઓનો ત્યાગ જે તેને સંતોષ ન આપી શકી, તેથી '**बरबस राज सुतहि नृप दीन्हा**' (રાજાએ લાચાર થઈને રાજ્ય દીકરાને આપી દીધું). ત્યારે સ્વાભાવિક રૂપે જ આ જિજ્ઞાસા પેદા થાય છે કે અખંડ આનંદદાયક "હરિ—ભક્તિ" ના જેના વગર 'જનમ ગયો' એવો અનુભવ થઈ રહ્યો હતો તે કેવી રીતે મળે? પ્રકૃતિના વિધાન પ્રમાણે આ જિજ્ઞાસાની પૂર્તિ માટે પથ—પ્રદર્શક જાતે આવીને રસ્તો બતાવે છે.

'अत्ये मिलन सिद्ध मुनि ज्ञानी ।'

(સિદ્ધો, મુનિઓ અને જ્ઞાનિઓ મળવા આવ્યા.) એ જ અર્થાર્થી એટલે અર્થ (પરમ તત્ત્વની પ્રાપ્તિમાં લાગવું) સાધનાનું ત્રીજું પગથિયું અથવા ત્રીજી અવસ્થા છે અને એ સાધના જ્યારે સફળ થાય છે ત્યારે આ છેલ્લા પગથિયા પર પહોંચેલો એટલે જ્ઞાનિ કહેવાય છે. આ નોંધ લેવા જેવી વાત છે કે સાધના—માર્ગનું ત્રીજું પગથિયું—અર્થાર્થીમાં જ સાધક ને ચારે અવસ્થાઓને —તીર્થાટન, શાસ્ત્ર ચિંતન, ધારણા અને ધ્યાનને પાર કરવાની હોય છે. આ તથ્યનો ઉલ્લેખ શાસ્ત્રોમાં નીચે મુજબ કરવામાં આવ્યો છે.

उत्तमा सहजाऽवस्था, मध्यमा ध्यानधारणा ।
शास्त्रचिन्तनमधमा प्रोक्ता तीर्थाटनाधमाधमा ।।

(એટલે સ્વાભાવિક અવસ્થા ઉત્તમ છે, ધ્યાનધારણા મધ્યમ છે, શાસ્ત્રચિંતન અધમ છે અને અધમમાં અધમ તીર્થાટન છે.) મનુ—સતરૂપાનું પ્રકરણ જોવાથી જણાય છે કે તેમની સાધનામાં અર્થાર્થીની અવસ્થા આવતાં જ સિદ્ધ, મુનિ, જ્ઞાનિ તેની પાસે આવી પહોંચ્યા અને તેમણે સાધના-

માર્ગ બતાવ્યો. જ્ઞાનિ મુનિઓએ મોક્ષનો જ ઉપદેશ આપતાં જાતે પણ કાંઈક સાધન કરીને બતાવ્યું, જેવું કે 'માનસ'ની નીચેની લીટીઓ બતાવે છે :—

जहँ तहँ तीरथ रहे सुहाये ।
मुनिन्ह सकल सादर करवाये ।।

(જ્યાં જ્યાં સારાં તીર્થો હતાં તે મુનિઓએ આદર સાથે કરાવ્યાં) સાધનામાં એને જ તીર્થાટનની ત્રીજી અવસ્થા કહે છે અને તીર્થાટનથી જ વાસ્તવિક સાધના શરૂ થાય છે. આમાં ફક્ત સ્થૂલ ઈન્દ્રિયોનું જ કાર્ય છે. મન જો આમ તેમ ભટકતું પણ રહે તો પણ આ સાધનામાં મુશ્કેલી નથી આવતી.

ત્યાર બાદ મિશ્ર—સાધના અથવા શાસ્ત્રચિંતનની અવસ્થા આવે છે, જેને આ પ્રકરણમાં નીચે મુજબ સ્પષ્ટ કરવામાં આવી છે:—

सत समाज नित सुनहिं पुराना ।

આ સાધનામાં ઈન્દ્રિયો સાથે મનનો સહકાર જરૂરી છે, કારણ કે કાનોથી સાંભળેલા અથવા આંખોથી વાંચેલા શબ્દો મનના સહકાર વગર હમેશ અર્થવગરના બની રહેશે. પછી સાધનાની ત્રીજી અવસ્થા આવે છે, જેનાં સ્થૂલ ઈન્દ્રિયોનું કાર્ય બંધ કરાય છે અને ફક્ત મનથી જ સાધના કરાય છે. એ જ ધારણાની અવસ્થા કહેવાય છે, જેને એકાગ્રતાનો અભ્યાસ પણ કહે છે. આ અવસ્થામાં જે મન આમ તેમ ભાગતું ફરે છે, તેને કોઈ શબ્દ અથવા રૂપ અથવા તો બંનેની મદદથી એક બિંદુ ઉપર કેન્દ્રિત કરવામાં આવે છે અને આ પ્રકરણમાં નીચે લખેલા દોહરાથી આ સાબિત થાય છે કે મનુ—સતરૂપાએ પણ એ જ કર્યું :—

द्वादस अच्छर मंत्रवर, जपहिं सहित अनुराग ।
वासुदेव पद पंकरुह, दंपति मन अति लाग ।।

સાધનાની અંતિમ અવસ્થા ધ્યાનની છે, જેમાં સાધકનું મન નિર્વિષય બની જાય છે. એને 'માનસ'માં 'સુમિરન'નું નામ આપવામાં આવ્યું છે, અને આ સાધના— વિશેષમાં અન્નને ઓછું કરી ફળ, શાકભાજી વગેરેનું સેવન જરૂરી જણાવ્યું છે :—

करहिं अहार साक फल कंदा ।
सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानन्दा ।

આ અંતરંગ સાધનામાં જો મનના બંને મળો (લય અને વિક્ષેપ એટલે કે સૂવું અને ભાગવું) નીકળી જાય, તો સાધકના અહંકારનો નાશ થઈ જાય છે. અને એ જ અવસ્થા ધ્યાન અથવા સમાધિની અવસ્થા કહેવાય છે. મનુ—સતરૂપા ને પણ છેવટે ભગવાનનો સાક્ષાત્કાર થયો :—

भगत बछल प्रभु कृपानिधाना ।
बिस्वबास प्रगटे भगवाना ।।

આ ભગવત્—દર્શન પહેલાં સાધક ની પરીક્ષા પણ થઈ જાય છે કે તેનામાં કોઈ સાંસારિક અભિલાષાઓ તો નથી રહી. એટલા માટે :—

बिधि हरिहर तप देखि अपारा ।
मनु समीप आये बहु बारा ।।
माँगहु वर बहु भाँति लोभाये
परम धीर नहि चलहि चलाये ।।

પણ જો સાધકના મનમાં કોઈ બીજી ઈચ્છા ન હોય તો ભગવાનનું સમ્યક્ દર્શન જરૂર થાય છે. એથી સ્પષ્ટ છે કે મનુ—સતરૂપાના આખ્યાન મારફત સંતતુલસીદાસ જીએ ઘણી જ સારી રીતે સાધકને માટે ફક્ત સાધનાની ચાર અવસ્થાઓનું જ વર્ણન નથી કર્યું બલ્કે તેના સફળ પ્રયોગનો પણ માર્ગ બતાવ્યો છે. એવી જ રીતે જો આપણે 'માનસ'ના દરેક પ્રકરણ ને ધ્યાન થી વાંચીએ તો તેમાં આપણે માનવજીવનના આધ્યાત્મિક વિકાસનું સુંદર અને સફળ દિગ્દર્શન મેળવીશું.

વર્તમાન સમયમાં એવી પ્રથા છે કે દરેક લેખક પોતાના પુસ્તકના પ્રારંભમાં જ 'પ્રાક્કથન' 'પ્રસ્તાવના' 'આમુખ' અથવા 'ભૂમિકા' કે એવું જ બીજું કોઈ મથાળું આપીને પોતાના પુસ્તકની રચનાનું ઉદ્દેશ્ય લખે છે. પણ પ્રાચીન કાળમાં લેખકો પોતાનું પુસ્તક મોટે ભાગે ભગવત્-વન્દના અથવા પ્રાર્થનાથી શરૂ કરતા હતા. તેથી એમાં પણ જૂની શૈલી પ્રમાણે જ વિનાયકની વંદનાથી ગ્રંથનો આરંભ થયો છે. છતાં પણ વંદનાના શ્લોકોમાં જ ગોસ્વામી તુલસીદાસજીએ 'માનસ'ની રચના શૈલી—' **नाना पुराण**

निगमागम सम्मत' અને રચનાનું ઉદ્દેશ્ય—"**स्वान्तः सुखाय**"— સ્પષ્ટ રીતે જણાવ્યું છે. આ જ સંબંધમાં થોડા વિસ્તારથી વિચાર કરીએ.

'**स्वान्तः सुखाय**' નો બરાબર અર્થ સમજવા માટે આપણે બીજી એક બે ચોપાઈઓ શોધવી પડશે, જેમાં 'માનસ' ની રચનાનું ઉદ્દેશ્ય કવિએ સ્પષ્ટ શબ્દોમાં કહ્યું હોય.

मैं पुनि निज गुरुसन सुनी, कथा सो सूकर खेत ।
समुझी नहि तस बालपन, तब अति रहेऊँ अचेत ।।

. . . .

भाषाबद्ध करबि मैं सोई । मोरे मन प्रबोध जेहि सोई ।।

. . . .

निज संदेह मोह भ्रम हरनी ।
करउँ कथा भवसरिता तरनी ।।

ગોસ્વામી તુલસીદાસ કહે છે કે જે કથા મેં મારા પૂજ્ય ગુરુદેવ પાસેથી શૂકરક્ષેત્રમાં સાંભળી હતી, તેને જ હું ભાષામાં ગૂંથી રહ્યો જઉં. જેથી મારા મનમાં પ્રબોધ થાય; આ પવિત્ર કથા સંસાર સાગર ને પાર કરવા માટે નૌકા સમાન છે અને મારા સન્દેહ, મોહ અને ભ્રમને મટાડનાર છે.

મોહ અથવા અંધકારને લીધે જ સંદેહ થાય છે. અંધારામાં પડેલું દોરડું સાપ કે દોરડું – એ સંદેહની અવસ્થા છે. મોટે ભાગે સંદેહની અવસ્થામાં કાર્ય થતું નથી. જ્યારે સંદેહ ભ્રમનું રૂપ ધારણ કરી લે છે, ત્યારે એક રીતે નક્કી જ થઈ જાય છે કે આ સાપ જ છે, ત્યારે ભાગવાની ક્રિયા થાય છે. જેનું પરિણામ વાગવું અથવા દુ:ખ છે. તેથી દુ:ખના નાશ માટે મોહ અથવા અન્ધકારને દૂર કરવો જરૂરી છે. અન્ધકારના વિનાશથી દુ:ખનાશ. તેથી રામાયણમાં રામભક્તિની ઉપમા મણિ સાથે આપવામાં આવી છે, જે મળ્યા પછી બધાં દુ:ખો દૂર થઈ જાય છે.

राम भगति मनि उर बस जाके ।
दुख भवलेस न सपनेहुं ताके ।।

એ જ પ્રકાશ ને 'પ્રબોધ' નું નામ આપવામાં આવ્યું છે, જેની પ્રાપ્તિ રામાયણની રચનાનું ઉદ્દેશ્ય કહેવામાં આવ્યું છે :—

मोरे मन प्रबोध जेहि होई ।

આ સંદર્ભમાં '**स्वान्तः सुखाय**' ની વ્યાખ્યા કરવાની છે. (રામાયણમાં ત્રણ પ્રકારનાં સુખ માનવામાં આવ્યાં છે. એક સુખ ઈન્દ્રિયો મારફત વિષયોનું પ્રાપ્ત થાય છે. એ સુખ બાહ્ય છે, જેને 'માનસ' માં 'સુખ' વર્ણવ્યું છે. બીજા પ્રકારના સુખની અનુભૂતિ આપણ ને ગાઢ નિદ્રાની અવસ્થામાં થાય છે. ગાઢ નિદ્રામાંથી ઊઠયા પછી આપણે કહીએ છીએ કે નિરાંતે સૂતા. આ સુખમાં ન તો ઈન્દ્રિયોનું કાર્ય થયું અને ન કોઈ બાહ્ય વસ્તુનો આધાર રહ્યો, છતાં પણ સુખની અનુભૂતિ થઈ. આજ સુખ અંદરનું સુખ અથવા "અન્ત: સુખ" કહેવાય. સુખનો આધાર બાહ્ય જગત્ છે અને તેની પ્રાપ્તિનું સાધન ઈન્દ્રિયો છે. 'અન્ત: સુખ' ની પ્રાપ્તિ માટે ઈન્દ્રિયોનું કાર્ય બંધ હોવું જરૂરી છે. "માનસ" માં આ બંને સુખોથી જુદું – 'સુખ' અને 'અન્ત: સુખ' થી પર એક ત્રીજા પ્રકારના સુખની ચર્ચા છે, જેને 'સ્વાન્ત: સુખ' નું નામ આપવામાં આવ્યું છે. આ પ્રેમનું સુખ છે, જેનો આધાર સમર્પિત હૃદય છે.

સુખ ઘણી જાતનું હોય છે. આંખથી સુંદર રૂપ જોવું, કાનથી મધુર શબ્દ સાંભળવા, જીભથી સ્વાદિષ્ટ પદાર્થો ખાવા, વગેરે. આ બાહ્ય સુખમાં ક્ષણભંગુરતા છે, તેમાં એક—રસતા નથી. ખાતાં ખાતાં તૃપ્તિ થવા લાગે છે, અને નીરસતા આવી જાય છે. 'અન્ત: સુખ' માં આ દોષ હોતો નથી. તે અખંડ છે. જ્યારે ઈન્દ્રિયોનો વ્યાપાર બંધ થઈ જાય છે અને મન અટકી જાય છે તો દર વખતે એક જાતની શાંતિ મળે છે. 'સ્વાન્ત : સુખ' અથવાં પ્રેમની ખાસિયત એ છે કે તે અખંડ પણ છે અને અનંત રસવાળું પણ છે. પ્રેમી હમેશ પોતાના પ્રેમપાત્રનું ચિંતન કરે છે, તેની સ્મૃતિનો અખંડ રસ રહે છે, સાથે જ અનંત રસનું પણ આસ્વાદન કરતો રહે છે. પ્રેમપાત્રનું રૂપ જોવામાં, તેની વાણી સાંભળવામાં અને તેની અનેક તરેહની સેવાઓમાં અનંત રસની અનુભૂતિ થાય છે.

આ પ્રમાણે 'સુખ' 'અન્ત : સુખ' અને 'સ્વાન્ત: સુખ' એક મેકથી ચઢિયાતાં છે. પહેલું અનેકરસ ખંડિત છે. બીજું અખંડ પણ એકરસ છે, પણ ત્રીજું અખંડ અને અનંત રસ છે. આજ 'સ્વાન્ત: સુખ' ને 'પ્રેમ-રસ' અથવા 'ભકિત-રસ' કહે છે. આ પ્રભુની

બખશીશ છે. 'માનસ'ના મોટે ભાગે બધાં પાત્રોએ પ્રભુ પાસે એની જ માગણી કરી છે, અને સુંદર કાંડના વંદનાના શ્લોકમાં 'માનસ' કારે પણ પ્રાર્થના કરી છે:—

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवान खिलान्तरात्मा ।
भक्ति प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे ।
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च ।।

આ પ્રમાણે 'માનસ'ની રચનાનું ઉદ્દેશ્ય 'સ્વાન્તઃ સુખ'ની પ્રાપ્તિ છે. અને આ ગ્રંથના અધ્યયનથી ત્રણે પ્રકારનાં સુખોની પ્રાપ્તિ થઈ શકે છે. આ તથ્યનું દર્શન અયોધ્યા—કાંડમાં આવેલા કોલ—ભીલોના પ્રકરણથી થઈ શકે છે. જ્યારે ભગવાન રામ ચિત્રકૂટમાં નિવાસ કરે છે, ત્યારે ત્રણ ટોળીઓ તેમને મળવા આવે છે. પહેલી ટોળી દેવોની, બીજી ઋષિઓની અને ત્રીજી કોલ—ભીલોની છે, જેઓ અનુક્રમે સુખ (સ્વર્ગ), અન્તઃ સુખ (મોક્ષ), અને 'સ્વાન્તઃ સુખ' (પ્રેમ) ના અધિકારીઓ છે. દેવો જ્યારે આવ્યા ત્યારે —

राम प्रनाम कीन्ह सब काहू ।
मुदित देव लहि लोचन लाहू ।।

એટલે શ્રુતિ—સેતુ પાલક રામે દેવોને પ્રણામ કર્યા અને તેઓ ભગવાનનાં દર્શન કરીને આનંદ પામ્યા. તેમણે પોતાના અસહ્ય કષ્ટો રામને કહ્યાં અને તેમના તરફથી આશ્વાસન પામી તેઓ પોત પોતાના લોકમાં ચાલ્યા ગયા.

ઋષિ મુનિઓની ટોળી જ્યારે આવી ત્યારે રામે તેમને સાષ્ટાંગ પ્રણામ કર્યા, જેથી સિદ્ધ થાય છે કે રામે તેમને દેવો કરતાં વધારે માન આપ્યું. દેવો રામને જોયા પછી મુદિત થયા હતા પણ મુનિઓ 'આવત દેખિ મુદિત મુનિવૃન્દા' એટલે કે માર્ગમાં આવતાં જ તેઓ મુદિતા અવસ્થા પ્રાપ્ત કરે છે, જે દેવતાઓને રામનાં દર્શન પછી પ્રાપ્ત થઈ હતી.

'મુનિ રઘુબરહિં લાઈ ઉર લેહીં' થી પણ સ્પષ્ટ થાય છે કે દેવોને આ સૌભાગ્ય પ્રાપ્ત ન હતું કે ભગવાનનું આલિંગન કરી શકે, મુનિઓ રામ, લક્ષ્મણ અને જાનકી ત્રણેને જોઈને પોતાનાં બધાં સાધનોને સફળ માને છે:—

सिय सौमित्र राम छबि देखहिं ।
साधन सकल सफल करि लेखहि ।।

આ સાધનો ભકિતયોગ, કર્મયોગ અને જ્ઞાન યોગ છે, જેમની સફળતા સીતા, લક્ષ્મણ અને રામનાં દર્શનમાં છે, કારણ કે આ ત્રિમૂર્તિ ભકિત, વૈરાગ્ય અને જ્ઞાનનો આદર્શ છે.

'भगति ग्यान बैराग्य जनु सोहत धरे सरीर ।'

છેવટે કોલ—ભીલોનું ટોળું આવે છે. જે આનંદ દેવોને રામનાં દર્શન પછી અને મુનિઓને માર્ગમાં આવતાં મળી ગયો હતો, તે જ આ કોલ—ભીલોને આ સમાચારના શ્રવણ માત્રથી જ, કે રામ ચિત્રકૂટમાં આવીને વસ્યા છે, ઘેર બેઠાં પ્રાપ્ત થઈ ગયો. તેઓ કંદ મૂળ, ફળના પડિયા ભરીભરીને એવી પ્રસન્નતાથી ભેંટવા નીકળી પડ્યા, જાણે કોઈ ગરીબ સોનું લૂટવા દોડી પડ્યો હોય —

कन्द मूल फल भरि भरि दोना ।
चले रंक जनु लूटन सोना ।।

રસ્તામાં રામની ચર્ચા કરતાં આ લોકો આવ્યા —

कहत सुनत रघुबीर निकाई ।

અને એમની જ ચર્ચા કરતા પાછા ફર્યા —

प्रभु गुन कहत सुनत घर आये ।

રામનાં દર્શન સમયે દેવોને યાદ હતું કે તેઓ રાક્ષસોના અત્યાચારથી પીડાયેલા છે અને પોતાનાં કષ્ટોના નિવારણ માટે તેમણે રામને વિનંતિ કરી. મુનિજનોને રામ-દર્શન સમયે સ્મરણ હતું કે તેમણે ત્રિકાંડની સાધના કરી છે અને તેમની સાધનાની સફળતા સીતા, રામ અને લક્ષ્મણનાં દર્શનમાં છે. પણ કોલ—ભીલોને રામદર્શન વખતે કશાનું પણ સ્મરણ ન રહ્યું. તેઓ પોતાપણું જ ભૂલી ગયા —

चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े ।

રામે પણ જાણ્યું કે તેઓ પ્રેમમાં મગ્ન થઈ ગયા છે, તેઓ ભાવસમાધિમાં છે.

राम सनेह मगन सब जाने ।

રામે દેવોને સ્વર્ગ આપીને અને મુનિઓને મોક્ષ આપીને સંતોષ્યા, પણ કોલ—ભીલોને તો ન્હોતું જોઈતું સ્વર્ગ કે ન્હોતો જોઈતો મોક્ષ, તે તો પ્રેમના પુજારી છે જેમને કશું નહિ જોઈએ.

जाहि न चाहिय कबहुँ कछु ।
तुम्ह सन सहज सनेहु ।।

આવા વિશુદ્ધ પ્રેમીઓનો જ્વલંત દાખલો રજૂ કરવા માટે જ માનસકારે કોલ—ભીલોનું ચિત્રાંકન કર્યું છે. પ્રેમમાં તો આપવાનું ને આપવાનું છે, લેવાનું કશું નથી. માટે જ્યારે આ ભાવ—સમાધિમાંથી ઊઠ્યા ત્યારે તેમણે—

हम सब भाँति करब सेवकाई

અને

हम सेवक परिवार समेता ।
नाथ न सकुचब आयसु देता ।।

(અમે દરેક રીતે આપનું સેવકપણું કરીશું,. અમે અમારા આખા પરિવાર સાથે આપની સેવા કરીશું. હે નાથ, આજ્ઞા કરતાં કાંઈ પણ સંકોચ કરશો નહિ.) ની જ વાત કરી. પોતાના સુખ કે શાંતિની વાત તેમના મગજમાં આવી જ નહિ. તેથી જ કવિએ લખ્યું છે કે જે વેદોનાં વચનો અને મુનિઓને પણ અગમ્ય છે એ જ કરુણાના ધામ પ્રભુ રામચંદ્ર ભીલોનાં વચન સાંભળી એટલો બધો આનંદ મેળવે છે, જેમ પિતા બાળકોના બોલ સાંભળીને ખુશ થાય છે. કારણ કે :—

रामहिं केवल प्रेम पियारा ।
जानि लेहु जो जाननिहारा ।।

(રામને તો ફક્ત પ્રેમ જ પ્રિય છે. જે જાણનારાઓ હોય તે જાણી લે)

આ પ્રકરણમાં વિશુદ્ધ પ્રેમનું વર્ણન છે. અને એના ઉપસંહારમાં માનસકાર લખે છે:—

एहि विधि सियसमेत दोउ भाई ।
बसहि बिपिन सुर मुनि सुखदाई ।।

(આવી રીતે દેવો અને મુનિઓને સુખ આપનાર બંને ભાઈઓ સીતા સાથે વનમાં રહે છે.) અહીં દેવો અને મુનિઓ સાથે કોલ—ભીલોનું નામ નથી લેવામાં આવ્યું. કારણ કે પ્રભુ દેવોને સ્વર્ગનું અને મુનિઓને મોક્ષનું સુખ આપે છે, પણ આ કોલ—ભીલોથી તો તેઓ જાતે જ પ્રેમનું સુખ મેળવે છે. તેથી એ ત્રણેને એક પંક્તિમાં સ્થાન આપવામાં નથી આવ્યું. ખરી રીતે પ્રેમ તે સર્વોત્કૃષ્ટ તત્ત્વ છે, જેની પ્રભુને પણ જરૂર છે અને ભક્તોની કલ્પના છે એ આ જ માગણીની પૂર્તિ માટે તે 'અજ' અવતાર લઈને અયોધ્યા અને વૃન્દાવનની ગલીઓમાં વિચરણ કરે છે.

व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद ।
सो अज प्रेम भगति बस, कौसल्याकी गोद ।।

(વ્યાપક પરમાત્મા નિરંજન, નિર્ગુણ અને વિનોદરહિત છે. તે અજ ભગવાન પ્રેમભક્તિને વશ છે અને કૌશલ્યાના ખોળામાં બેસે છે.)

આ વિશુદ્ધ પ્રેમની પ્રાપ્તિ જ '**માનસ**'ની રચનાનું ઉદ્દેશ્ય છે.

काम क्रोध मद लोभ रत, गृहासक्त दुख रूप ।
ते किमि जानहिं रघुपतिहिं, मूढ़ परे तम कूप ।।

રામચરિત માનસનો મૌલિક સિદ્ધાંત અને તેને અનુકૂળ સાધન પ્રણાલી

— લે. પરમપૂજ્ય 'યોગીજી'

શ્રી રામચરિત માનસ માનવીની વ્યક્તિગત અને સામૂહિક સમસ્યાઓ ઉપર જે પ્રકાશ પાડે છે તે યુગો સુધી પથભ્રષ્ટ માનવીને માર્ગદર્શન કરવામાં પૂર્ણરૂપે સમર્થ છે એવો મારો દૃઢ વિશ્વાસ છે. ભગવાન શંકર અને માતા પાર્વતીને સાક્ષી રાખીને માનસકારે રામાયણની ફળશ્રુતિ નીચેના શબ્દોમાં સ્પષ્ટ કરી છે :—

जे एहि कथहिं सनेह समेता, कहिकहिं सुनहिं समुझिसचेता ।।
होइहहिं रामचरन अनुरागी, कलिमलरहित सुमंगलभागी ।।
सपनेहुँ साचेहुँ मोहि पर जो हर गौरी पसाउ ।
तौ पुर होउ जो कहेऊँ सब, भाषा मनिति प्रमाउ ।।

એટલે જે વ્યક્તિ આ ગ્રંથને મન લગાડીને સાંભળશે, બુદ્ધિ વાપરીને સમજશે અને ચિત્તથી તે પ્રમાણે આચરણ કરશે, તેના જીવનમાં આમૂલ ક્રાંતિકારી ફેરફાર થશે. તેના બાહ્ય જીવનમાં દરેક રીતે મંગળ થશે— અભાવો દૂર થશે અને સુખ મળશે. તેનું આંતરિક જીવન કલિ--મળરહિત થશે—દોષોની નિવૃત્તિ થશે, શાંતિ મળશે અને તેને રામના ચરણોમાં પ્રીતિ બંધાશે, જે સુખ શાંતિ અને સ્વર્ગમોક્ષથી પર વસ્તુ છે.

બીજી જગ્યાએ ગોસ્વામી તુલસીદાસજીએ આ પ્રમાણે લખ્યું છે :—

सुनु खगपति यह कथा पावनी ।
त्रिविध ताप भवदोष दावनी ।।

એટલે ભગવાનની આ પવિત્ર કથા ત્રણે તાપોને, દૂર કરનાર છે. શરીરમાંથી રોગ, મનમાંથી ચિંતા, અને બુદ્ધિમાંથી ભયને દૂર કરીને મનુષ્યના જીવનમાં શક્તિ, આનંદ અને જ્ઞાનનો સંચાર કરનારી છે.

હવે એ સમજવાનું છે કે રામાયણના આ દાવાઓનો આધાર શું છે? જો કે આ પવિત્ર ગ્રંથ, જેમાં પ્રભુની લીલાનું વર્ણન છે, તે પ્રભુના જેટલો જ અનંત છે અને એના રહસ્યને તે પ્રભુજ છે, અથવા જેને તેઓ જણાવે તે પણ કેટલેક અંશ જાણી શકે છે, એના રહસ્યને તે પ્રભુ જ જાણી શકે છતાં પણ પોતાની તુચ્છ બુદ્ધિ પ્રમાણે અને ગુરુકૃપા અને સંતોના આશીર્વાદથી હું જે કોઈ સમજી શક્યો છું, તે મારા તે મિત્રો માટે રજૂ કરું છું, જેઓ રામચરિત માનસમાં પ્રતિપાદિત સિદ્ધાંતો મુજબ કાંઈક સાધના કરીને પોતાના જીવનમાં ફેરફાર કરવા માગે છે.

માનસનો આ સિદ્ધાંત છે કે આપણે કોઈ પણ દુઃખનું નિવારણ કરવા માગતા હોઈએ તો પહેલાં તેના મૂળ કારણને જાણવાનો પ્રયત્ન કરીએ. જેમ કે શરદી થયા પછી આપણે કઈ દવા લઈએ તેનો વિચાર ન કરી આપણે વિચાર કરવો જોઈએ કે શરદી થઈ જ કેમ? આ સંબંધે માનસના પેલા પ્રકરણમાં સ્પષ્ટ સંકેત મળે છે, જેમાં લક્ષ્મણે ભગવાન રામને પ્રશ્ન કર્યો હતો અને દુઃખની નિવૃત્તિનું સાધન જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય સમજીને તેની બાબતમાં જ પહેલાં જાણવા ઈચ્છ્યું હતું.

'कहहु ग्यान विराग अरु माया ।
कहहु सो भगति करहु जेहि दावा ।'

' ईश्वर जीवहिं भेद प्रभु, सकल कहहु समझाइ जाते होइ चरन रति, सोक मोह भ्रम जाइ ।।'

આ પ્રશ્નના ઉત્તરમાં ભગવાન રામે દુઃખનું મૂળ કારણ માયા બતાવીને તેના ઉપર જ સૌથી પહેલાં પ્રકાશ પાડ્યો છે. ત્યાર બાદ તેની નિવૃત્તિનાં સાધનોનું જ્ઞાન--વૈરાગ્યને સમજાવવાનો પ્રયત્ન કર્યો છે. તેમણે કહ્યું—

थोरेहि महँ सब कहहुँ बुझाई ।
सुनहु तात मन, मति, चित लाई ।।
मैं अरु मोर तोर ते माया ।
जेहि बस कीन्हे जीवनिकाया ।।
गो गोचर जहँ लगि मन जाई ।
सो सब माया जानहु भाई ।।

અહીં ભગવાને માયાનાં બે રૂપ બતાવ્યાં છે. એક "મૈં--મેરા" (હું--મારું) જેને લીધે પ્રાણી સંસારમાં દુ:ખ ભોગવી રહ્યું છે અને બીજું "પ્રપંચ". જ્યાં સુધી ઈન્દ્રિયો અને મનનો વ્યાપાર છે, એ બધી માયા છે.

માયાનો શાબ્દિક અર્થ છે (મા=નહિ, યા=જે) જે નથી નથી છતાં પ્રતીત થાય છે. અંધારામાં પડેલા દોરડામાં સાપનો ભ્રમ થાય છે, જો કે ક્યાંય સાપ નથી. આમાં બે પક્ષો છે: (૧) જે છે તે માલમ નથી પડતું, (૨) જે નથી તે માલમ પડે છે, એટલે દોરડું છે પણ જણાતું નથી અને સાપ નથી તે માલમ પડે છે. એજ શ્રુતિપ્રતિપા'દિત સિદ્ધાંત છે—

'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या ।'

એટલે બ્રહ્મ વાસ્તવિક સત્ય છે જો કે (મોહને લીધે) તેની પ્રતીતિ નથી થતી અને પ્રપંચ (જગત) ભાસતું સત્યમાત્ર છે, વાસ્તવિક નહિ. જેવું દેખાય છે, તેવું નથી.

એ જ માનસ' દર્શન છે, જેને હું પ્રકાશવાદ અને વિકાસવાદ કહું છું અને એજ દર્શનને જીવનમાં મેળવવાની પ્રણાલીનું 'માનસ'માં વિશદ વિવેચન છે, જેને 'વિશ્વાસ' અને 'શ્રદ્ધા'નો માર્ગ કહેવામાં આવ્યો છે.

મારો વિશ્વાસ છે કે જો 'માનસ'ના આજીવન દર્શન--પ્રકાશવાદ અને વિકાસવાદ ને મનુષ્ય સમજી શકે તો તેના જીવનમાંથી દુ:ખનો સદંતર નાશ થઈ શકે છે. પ્રકાશવાદ લાગણીપ્રધાન સાધકો માટે ભક્તિ કે શરણાગતિનો માર્ગ છે. અને વિકાસવાદ વિશ્લેષણનો માર્ગ છે, જે વિદ્યા-પ્રધાન સાધકો માટે છે. એકમાં સરળ અંત:કરણવાળા સાધકો સત્સંગવડે અદૃશ્ય પ્રભુમાં વિશ્વાસ રાખીને ભગવાનનાં દર્શન કરે છે અને તેમનો પ્રેમ પ્રાપ્ત કરીને, બધાં દુ:ખોથી મુક્ત થઈ જાય છે. બીજામાં, બુદ્ધિપ્રધાન સાધકો દશ્ય જગતનું અબાધિત જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરીને તપસ્યાનો માર્ગ સ્વીકારે છે અને આત્મદર્શન કરી બધાં દુખોમાંથી મુક્ત બની જાય છે. બંને માર્ગોથી દુ:ખોનો નાશ થાય છે.

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वास रूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ।।
'उभय हरहिं भवसंभव खेदा ।'

પ્રકાશવાદનો સિદ્ધાંત નીચેની લીટીઓમાં પ્રતિપાદિત કર્યો છે:—

यहि महँ आदि, मध्य, अवसाना ।
प्रभु प्रतिपाद्य रामभगवाना ।।

એનાથી સ્પષ્ટ છે કે 'માનસ'ના પ્રારંભમાં, મધ્યમાં અને અંતમાં એટલે કે આદિથી અંત સુધી રામ જ પ્રતિ-પાદિત છે, જેમના વિષે કહેવાયું છે—

सहज प्रकाशरूप भगवाना ।

એટલે ભગવાન સહજ પ્રકાશરૂપ છે, 'માનસ' બે જાતના પ્રકાશકોનું વર્ણન છે, એક તો પરાશ્રિત પ્રકાશક જેવો કે દીવો, જે કોડિયું, ઘી અને દીવેટને આધારે જ પ્રકાશ આપે છે અને દીવેટ બળી ગયા બાદ, ઘી ખલાસ થઈ ગયા પછી અથવા કોડિયું ભાંગી જવાથી હોલવાઈ જાય છે. અને બીજો છે કુદરતી પ્રકાશક, જેને કોઈ બાહ્ય આધારની અપેક્ષા રહેતી નથી, જે આપમેળે પ્રકાશરૂપ છે. આ પ્રકાશકની ઉપમા મણિ સાથે આપવામાં આવી છે, જે દિવસ--રાત બાહ્ય સાધન વગર પ્રકાશ આપે છે. 'માનસ'માં પ્રતિપાદિત ભગવાન મણિના જેવા પ્રકાશ આપનાર છે, જે સ્વયં પ્રકાશરૂપ છે, દિવસ--રાત પ્રકાશ આપે છે અને અંદર બહાર પ્રકાશ કરે છે.

'सहज प्रकाशरूप दिनराती ।
नहिं तहँ चहिय दिया घृत बाती ।'

રામાયણમાં આ સ્વયં પ્રકાશ રૂપ ભગવાનના એક રૂપ અને એક સ્વરૂપનું વર્ણન આવે છે. સ્વરૂપ પ્રકૃતિથી પર છે, જ્યાં મન વાણી પહોંચી શકતાં નથી.

राम सरूप तुम्हार, बचन अगोचर बुद्धि पर ।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति निगम कह ।।

તેમ જ

मनसमेत जेहि जानन बानी ।
तरकि न सकहि सकल अनुमानी ।।
महिमा निगम नेति करि कहई ।
जो तिहुँकाल एकसर अहई ।।

અહીં વેદોના આત્મ-તત્ત્વ વિષે પણ કહેવામાં આવ્યું છે—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।
(तैत्तिरीय उपनिषद् २.४)

એવી જ રીતે રામાયણમાં ભગવાનનું એકરૂપ પણ બતાવવામાં આવ્યું છે.

'सीय राममय सब जग जानी ।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ।।'

'जड़ चेतन जगजीव जत, सकल राममय जानि ।
बन्दउँ सबके पदकमल, सदा जोरि जुगपानि ।।'

અને જે વેદોમાં આ પ્રમાણે વર્ણવ્યું છે—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किंच जगत्यांजगत् ।।
(ईशावास्योपनिषद्–१)

એટલે પ્રભુ જડ અને ચેતન બધામાં વ્યાપ્ત છે.

'માનસ'નું માનવું છે કે જે વ્યક્તિ ભગવાનના સ્વરૂપનું ચિંતન કરશે તેનાં બધાં દુઃખો મટી જશે. 'માનસ' માં ચિંતન માટે સુમિરન અને સેવા માટે ભજનશબ્દનો પ્રયોગ થયો છે. સાધકે હમેશ ભગવાનનું સુમિરન અને ભજન કરતો નથી. આ હકીકતને નીચેની લીટીઓ સ્પષ્ટ કરે છેઃ—

'कह हनुमंत विपति प्रभु सोई ।
जब तव सुमिरन भजन न होई ।।'

સુમિરનની પ્રણાલી નારદ અને મનુ–સતરૂપાના પ્રકરણોમાં જોવામાં આવે છે. સુમિરનમાં મનને ભગવાનના કોઈ પણ નામરૂપને આધારે એક બિંદુ પર કેન્દ્રિત કરવામાં આવે છેઃ—

निरखि सैलसर बिपिन बिभागा ।
भयेउ रमापति पद अनुरागा ।।
सुमिरत हरिहि साप गति बाधी ।
सहज बिमल मन लागि समाधि ।।

અથવા

'द्वादश अक्षर मंत्रबर, जपहिं सहित अनुराग ।
वासुदेव, पदपंकरुह, दंपति मन अति लाग ।।'

'करहिं अहार साक फल कंदा ।
सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानन्दा ।।'

સુમિરનની આ પ્રક્રિયામાં મનને બધી બાજુઓથી હટાવી એક બિંદુ પર કેન્દ્રિત કરવામાં આવે છે, જેને એકાગ્રતા કહે છે. અને એના પછી એકાગ્રતાની એવી ગાઢ અવસ્થા આવી જાય છે, જેમાં જો મનમાં લય અને વિક્ષેપની અવસ્થાઓ રુકાવટ ન કરે, તો તે બિંદુ પણ હટી જાય છે અને મન નિર્વિષય બની જાય છે. એ જ સુમિરનની અવસ્થા છે, જેને ચિંતન અને ધ્યાન પણ કહે છે. એની પરિભાષા નીચે મુજબ છેઃ—

'ध्यानं निर्विषय मनः ।(સાંખ્યસૂત્ર ૬/૨૫) સુમિરનની સાધનામાં કોઈ વખત મન બિંદુ પરથી ખસીને આમ તેમ ભાગે છે, એને વિક્ષેપ કહે છે અને કોઈ વખત ઊંઘ આવી જાય છે, જેને લયનું નામ આપવામાં આવ્યું છે. મનના આ જ બે મળ છે. અને જો મન આ બે મળોથી રહિત બની જાય તો—

' सहज विमल मन लागि समाधी ।

ની અવસ્થા પ્રાપ્ત થશે એટલે અહંકારનો વિલય (નાશ) થઈ જશે અને એવી સ્થિતિમાં મન, બુદ્ધિ, ચિત્ત અને અહમ બધાં જ વિલીન થઈ જશે. આ અવસ્થા સાધનથી પ્રાપ્ત કરાય છે, જે નારદ, મનુમહારાજ અથવા શિવજીના પ્રકરણમાં જોવામાં આવે છે.

शंकर सहस सरुप सम्हारा ।
भाजि समाधि अखंड अपारा ।।

પ્રેમના અતિરેકમાં પણ સમાધિની એ જ અવસ્થા વગર મહેનતે પ્રાપ્ત થઈ જાય છે. જેમ કે—

' परम प्रेम पूरन दोउ भाई ।
मन बुद्धिचित अहमिति बिसराई ।'

માતા શબરીએ અવસ્થા સહેજે જ મેળવી લીધી હતી—

'स्याम गौर सुन्दर दोउ भाई ।
सबरी परी चरन लपटाई ।
पुनि पुनि पदसरोज सिर नावा ।
प्रेम मगन मुख वचन न आवा ।'

એજ દશા સુતીક્ષ્ણજીની પણ જાતે જ થઈ જાય છે—

दिसि अरु विदिति पंथ नहि सूझा ।
को मैं चलेऊँ कहाँ नहि बूझा ।।

કોલ–ભીલો વિષે પણ કાંઈક એવી જ વાત છે—

करहिं जुहार भेंट धरि आगे ।
प्रभुहि बिलोकहिं अति अनुरागे ।

चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े ।
पुलक शरीर नयन जल बाढ़े ।।
राम सनेह मगन सब जाने ।
कहि प्रियबचन सकल सनमाने ।।

આ અવસ્થા પ્રાપ્ત થતાં જ ભક્ત પોતાની બુદ્ધિમાં એક અપૂર્વ પ્રકાશ અનુભવે છે, જેનાથી દ્વૈત ભાવના મટી જાય છે અને બધે એક જ સત્તા હાજર રહેલી દેખાય છે. અને ત્યારે ભય જેવી કોઈ ચીજ જ રહેતી નથી. સાથે જ કર્તાપણું પણ મટી જાય છે અને તેથી જ બંધન એટલે આવાગમન મટી જાય છે, કારણ કે બંધનનું કારણ કર્મ છે, કર્તાપણું નથી—

तत्रको मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः ।
(ईशावास्य उप०)

મનમાં એક અનેરો આનંદ સમાઈ જાય છે, જેને લીધે મોટામાં મોટા દુ:ખમાં ભક્ત વિચલિત થતો નથી—

यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ।।
(ગીતા)

અને એવો પ્રત્યક્ષ અનુભવ થવા લાગે છે કે દુ:ખનું કારણ પરિસ્થિતિ નથી પણ આસક્તિ છે, જે તે આનંદમાં આપોઆપ મટી જાય છે. શરીરમાં પણ અથાગ શક્તિનો અનુભવ થાય છે અને સાધક એવો અનુભવ કરે છે કે શક્તિનું કેન્દ્ર ભગવાન છે કે ભોજન. આંતરિક શક્તિના જાગરણથી જ તેના બધા રોગો મટી જાય છે. તેથી જ ત્રણે તાપ દૂર કરવાની વાતનો સંબંધ 'માનસ' માં ભગવાનના પ્રેમ સાથે જોડવામાં આવ્યો છે. અને ભગવાનના ચરણોના નિરાદરથી (તેમનાં ચરણોમાં પ્રેમ ન હોવાથી રોગ, વિયોગ, ગરીબાઈ, મલિનતા અને આવાગમન થાય છે, એ વાત શિવજીએ ભગવાન રામની સ્તુતિ કરતાં સ્પષ્ટ કરી છે:—

बहु रोग वियोगन्हि लोग हये । भवदंघ्रिनिरादर के फलये ।
अतिदीन मलीन दुखी नितही । जिनके पद पंकज प्रीति नहीं ।।
भवसिंधु अगाध परे नर ते । पद पंकज प्रेम न जे करते ।।

અહંકારના વિલયની આ અવસ્થાને સૂફી સંતો અને કવિઓએ પણ ઘણા જ સુંદર શબ્દોમાં વર્ણવી છે.

वह सिज़दा क्या रहे एहसास जिसमें सर उठाने का ।
इबादत और बके दे होश तौहीने इबादत है ।।

અથવા

बेखुदी छा जाये ऐसी दिल से मिट जाये खुदी ।
उसके मिलने का तरीका अपने खो जाने में है ।।

એક બીજા કવિએ એ જ ભાવને આ પ્રમાણે વ્યક્ત કર્યો છે:—

झलक होश की है अभी बेखुदी में,
वही खामियाँ हों मेरी जिन्दगी में ।
कैसे कहूँ कि खत्म हुई मंज़िले खना ।
इतनी तो खबर है कि मुझे कुछ खबर नहीं ।।

સાચું છે કે અહંકારનું કાયમ રહેવું ઉપાસનાના માર્ગમાં પહેલી અને છેલ્લી રુકાવટ છે.

चश्मबन्दी गोशबन्दी लब बे बन्द ।
गर नबीनी सूए हक बर मा बेखंद ।।

ભજનના સંબંધમાં પણ 'માનસ'ની આ વિચાર ધારા છે કે ભગવાન બધામાં વ્યાપ્ત છે, એવું જાણીને જે બધાની સેવા અને બધાને પ્રેમ કરાય છે તે જ ભજન છે. (ભગવાન રામે પોતાના શ્રીમુખે પોતાના મિત્રોને વિદાય કરતી વખતે સ્પષ્ટ કહ્યું:

अब गृह जाहु सखा सब, भजहु मोहि दृढ़ नेम ।
सदा सर्वगत सर्वहित, जानि करहु अति प्रेम ।।

એટલે પ્રભુની વ્યાપકતાનો ખ્યાલ રાખી સ્વાર્થપરતા તજીને પ્રભુને નાતે બધાની સેવા કરવી જોઈએ.

સેવા એ ભગવાનના વ્યાપકત્વનો ક્રિયાત્મક આદર અને સાધનાની આધારશિલા છે. પણ આપણે એક વાતમાં સાવધ રહેવાનું છે. આપણે જે સેવા કરી રહ્યા છીએ, તેનાથી આપણા અહંકારની તો ઉલટી પુષ્ટિ નથી થઈ રહી? શું આપણે ભૂખ્યાંને એટલા માટે તો નથી ખવડાવી રહ્યા જેથી આપણે સમાજમાં મોટા દાનવીર કહેવાઈએ? લોકોને મોઢે દાનવીર કહેવડાવી આપણે પ્રસન્નતાથી ફુલાઈ તો નથી જતા? અહીં જે સેવાની ચર્ચા કરીએ છીએ, તેનું રૂપ ઉપરથી ભલે દરિદ્રને ભોજન આપવાનું છે, પણ ભીતરની ભાવના કાંઈ જુદી જ હોય છે.

આ ભાવનાને બાઈબલમાં ઈશુ ખ્રિસ્ત અને તેમના શિષ્યો વચ્ચે એક વાર્તાલાપમાં સ્પષ્ટ શબ્દોમાં વર્ણવી છે. ઈશુ ખ્રિસ્ત એમના શિષ્યો પર ખુશ થઈને કહે છે કે જ્યારે હું ભૂખ્યો હતો, ત્યારે તમે મને ભોજન આપ્યું, જ્યારે મને તરસ લાગી ત્યારે મને પાણી પીવડાવ્યું, જ્યારે હું નાગો હતો ત્યારે તમે વસ્ત્રો આપ્યાં. શિષ્યોને ઘણી નવાઈ લાગી. તેમણે ઈશુને ભોજન વસ્ત્ર વિગેરે ન્હોતાં આપ્યાં. જ્યારે તેમણે પૂછ્યું કે તેમને (ઈશુને) એમના તરફથી ભોજન વસ્ત્ર વગેરે ક્યારે મળ્યાં, ત્યારે ઈશુએ જવાબ આપ્યો જો તમે મારા કોઈ પણ નાનામાં નાના ભાઈ માટે એવું કર્યું, તો તે મારે માટે જ કર્યું. સેવાનું આ રૂપ તે નથી. જે સંસારમાં સમજવામાં આવે છે. સાધકે બીજાને મદદ એમ સમજીને નથી કરવાની કે તે ભૂખ્યો, નાગો કે ગરીબ છે. તેણે તો પોતાનામાં એવી ભાવના લાવવાની છે, જે ભરતજીના વનમાં પધાર્યા પછી કોણુલ--ભીલોની અયોધ્યાના નિવાસીઓ પ્રત્યે હતી...

तुम प्रिय पाहुन बन पगु धारे ।
सेवा जोग न भाग हमारे ।

એવી સેવાની તક માટે સાધક ભગવાનને ધન્યવાદ આપે છે. સાધક રોગી, ગંદા દરિદ્રને ચીંથરે હાલ જોઈને પાછળ ખસી જતો નથી. કારણ કે

जब से सुना है यार लिबासे बशर में है ।
अब आदमी कुछ और हमारी नजर में है ।।

એવી જ નજર (દૃષ્ટિ) મળ્યાથી ગાંધીજીએ પોતાના હાથે કોઢીની સેવા કરી હતી. કોઢના રોગીના રૂપમાં પ્રભુને આપણી સેવાની જરૂર નથી, ઉલ્ટું, આપણને જરૂર છે તેની સેવા કરવાની તક અથવા સૌભાગ્ય મેળવવાની.

(મનનવિષે 'માનસ'નો મત છે કે ભગવાન બધામાં વ્યાપ્ત છે એવું સમજીને બધાની સેવા કરવી અને બધાને પ્રેમ કરવો એ જ ભજન છે. ભગવાન રામે જ પોતાના શ્રીમુખે પોતાના મિત્રોને વિદાય દેતાં સ્પષ્ટ કહ્યું હતું—

"अब गृह जाहु सखा सब, भजेहु मोहि दृढ़ प्रेम ।
सदा सर्वगत सर्वहित जानि करहु अति प्रेम ।।"

એટલે પ્રભુની વ્યાપકતાનો ખ્યાલ રાખીને સ્વાર્થતાપરતા તજીને પ્રભુને નાતે બધાની સેવા કરવી જોઈએ. આ પ્રકારની સેવા--"ભજન"—ના પરિણામે માણસના જીવનમાં કોઈ જાતનો અભાવ નથી રહેતો, કારણ કે સેવક બની જાય છે, તેથી સુમિરન અને ભજનથી મનુષ્યનાં અભાવ અને અશાંતિ મટી જાય છે. આ સિદ્ધાંતનો જે સાધક પોતાના જીવનમાં પ્રત્યક્ષ અનુભવ કરવા માગતો હોય, તેણે દરરોજ ૨૪ કલાકમાં અર્ધો કલાક કોઈ એકાંત સ્થાનમાં સૂર્યોદય પહેલાં પૂર્વ તરફ અથવા ભગવાનની કોઈ મૂર્તિ હોય તો તેના તરફ મોઢું રાખીને બેસવું જોઈએ અને ભગવાનના કોઈ પણ નામ કે રૂપનો આધાર લઈને પોતાના મનને એકાગ્ર કરવાનો પ્રયત્ન કરવો જોઈએ. ઘણા દિવસના સતત અભ્યાસ પછી મનના બંને દોષો--લય અને વિક્ષેપ મટી જાય છે અને અહંકારના વિલયની અવસ્થા આવી પહોંચે છે. આ સાધનાનાં બે અંગ છે: સેવા અને તપ. સેવાનો અર્થ છે પોતાના ધનનો ઓછામાં ઓછો દસમો ભાગ અને સમય તેમ જ શક્તિને યથાશક્તિ વ જનતા--જનાર્દનની સેવામાં નિ:સ્વાર્થ ભાવે લગાડવા જોઈએ. (દસેય ઈન્દ્રિયો પાસેથી મનુષ્ય સુખ મેળવવા ઈચ્છે છે તેથી જ આ દશાંશનો નિયમ છે.) તપમાં ભોજનને, ખાસ કરીને અન્ન ને ઓછું કરવાની જરૂર છે. પોતાના ભોજનમાં થોડાંક શાકભાજી, ફળ, કંદનો સમાવેશ કરવો તે આ સાધનામાં વિશેષ સહાયક પુરવાર થાય છે.

આ વિષે મારે ઉલ્લેખ કરવો જોઈએ કે મારા ઘણા મિત્રોએ પોતાની યોગ્યતા અને શક્તિ મુજબ સાધનત્રય ચિંતન, સેવા અને તપનો અભ્યાસ કર્યો છે, આ ત્રણેને જ બાઈબલમાં Preyer charity and Fasting અને કુરાને શરીફમાં નમાજ, જકાત અને રોઝા તેમ જ ગીતામાં યજ્ઞ, દાન અને તપ તેમજ 'માનસ'માં સુમિરન અભોગ અને ઉપવાસ કહેવામાં આવ્યાં છે. મારા મિત્રોનો પ્રત્યક્ષ અનુભવ છે કે તેમના જીવનમાંથી રોગ, દુ:ખ અને ભય ઔષધનું સેવન કે પરિસ્થિતિમાં ફેરફાર કર્યા વગર મટી ગયા છે અને તેમનાં મન પરિસ્થિતિથી અતીત થતાં જાય છે. સાધના પહેલાં જે બનાવો તેમનાં મનને વિચલિત કરી મૂકતા હતા, હવે તેની તેમના પર કશી અસર થતી નથી અને જે વાતોનું તેમને હંમેશ ભય રહેતો, હવે તેનું નામ પણ રહ્યું નથી. આ સંબંધે મારે આ નિવેદન કરવું ઘણું જ જરૂરી છે કે અમે લોકો 'રામચરિતમાનસ'માં પ્રતિપાદિત ફક્ત ભગવાનના સુમિરન અને ભજનની જ

વાત કરીએ છીએ. બીજી કોઈ પણ જાતની ગુપ્ત સાધના અથવા સામ્પ્રદાયિકતા સાથે અમારો સંબંધ નથી અને એવી કોઈ સાધના કરતા કે કરાવતા પણ નથી, જે સામાન્ય માણસ ન કરી શકે. મારા મિત્રોનો પ્રત્યક્ષ અનુભવ છે કે તેમના શરીરમાં શક્તિ, મનમાં આનંદ અને બુદ્ધિમાં જ્ઞાનનો સંચાર થઈ રહ્યો છે.

શ્રી રામચરિતમાનસમાં વિકાસવાદનો સિદ્ધાંત માયાવાદના રૂપમાં પ્રતિપાદિત છે. એ વેદોક્ત છે. મુંડકોપનિષદમાંની કેટલીક ઋચાઓ એનું સમર્થન કરે છે—

द्वा सुपर्णा सधुजा सखाया समानं वृक्षं परिषरचजाते ।
ययोरन्यः पिप्पतं स्वाद्वत्ति,
अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीतिं ।।३।१।१
समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया लोचति मुह्यमानः ।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य,
महिमामिति वीतशोकः ।। ३।१।२
यदा पश्यः पश्येत रुक्यवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ।
तदा विद्वान् पुण्यपाये विधूय
निरंजनः परमं साम्यमुपैति ।। ३।१।३

આ ઋચાઓનો સંક્ષેપમાં એ અર્થ છે કે બે પક્ષીઓ મિત્રભાવે એક વૃક્ષનો આશરો લઈને રહે છે. તેમાં નું એક વૃક્ષનાં ફળ ખાય છે એટલે બહિર્મુખી **પ્રવૃત્તિવાળું** છે અને બીજું તેનાં ફળ ખાતું નથી એટલે **અંતર્મુખી** પ્રવૃત્તિવાળું છે. જે પક્ષી બહિર્મુખી પ્રવૃત્તિવાળું છે તે અસમર્થતા, શોક અને મોહથી ગ્રસ્ત છે એટલે એના શરીરમાં શક્તિને સ્થાને કમજોરી, મનમાં આનંદને સ્થાને દુ:ખ અને બુદ્ધિમાં જ્ઞાનને સ્થાને મોહ છે. જ્યારે તે અંતર્મુખી પ્રવૃત્તિવાળા પક્ષીને જુએ છે અને તેનામાં સામર્થ્ય, આનંદ અને જ્ઞાન જુએ છે અને પોતાની હીનદશાનું કારણ પોતાની બહિર્મુખી પ્રવૃત્તિને જાણીને તે પ્રવૃત્તિને તજી દે છે, બહિર્મુખી પ્રવૃત્તિને જાણીને તે પ્રવૃત્તિને તજી દે છે, ત્યારે તે પણ શોકરહિત બની જાય છે. આજ સિદ્ધાંતનું દિગ્દર્શન ગીતાના ત્રીજા અધ્યાયમાં મળે છે. અર્જુને જ્યારે પૂછ્યું કે એ કઈ શક્તિ છે, જેનાથી પ્રેરાઈને માણસ ન ચાહવા છતાં બળજબરીથી પાપનું આચરણ કરી બેસે છે—

अथकेन प्रयुक्तोऽयं पापंचरति पुरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ।।३।३६

એના ઉત્તરમાં ભગવાન કૃષ્ણ કહે છે:—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम् ।।३।३।१

એટલે એ કામ જ છે, અને તેનું સ્થાન ઈન્દ્રિયો, મન અને બુદ્ધિ છે—

इन्द्रियाणि मनो बुद्धि रस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयन्येष ज्ञानमावृत्यदेहिनम् ।। ३।४।

એટલે ઈન્દ્રિયોમાં કમજોરી, મનમાં દુ:ખ અને બુદ્ધિમાં ભય એ કામને લીધે જ થાય છે એટલે ત્રિવિધ તાપનું કારણ કામ છે. કામનાશના પરિણામે માણસ ત્રિ--તાપથી મુક્તિ મેળવે છે. તેનાં બધાં રોગ, ભય અને દુ:ખ મટી જાય છે 'માનસ'માં બધાં દુ:ખોનું કારણ મોહ જ બતાવવામાં આવ્યું છે—

मोह सकल व्याधिनकर मूला ।'

મોહ એટલે અંધકાર. જેમ અંધારામાં પડેલું દોરડું સાપ ભાસે છે અને આ ભ્રમને લીધે કે તે સાપ છે, એ ભ્રમ પેદા થાય છે કે તે ડંખ દેશે અને એના પરિણામે એ ખોટી ક્રિયા થાય છે કે તે બી જઈને નાસે છે તેના હૃદયના ધબકારા વધી જાય છે અને તે લથડિયાં ખાઈને પડી જાય છે એવી જ રીતે મોહરૂપી અંધકારને લીધે ખોટું જાણવું, ખોટું માનવું અને ખોટી ક્રિયાને કારણે તેને દુ:ખની પ્રાપ્તિ થાય છે. અને એ બધાંનું મૂળ મોહ એટલે અંધકાર જ છે. આ મોહને લીધે જ માણસ માને છે કે શક્તિનો સંબંધ ભોજન સાથે છે અને ભોજન જેટલું પૌષ્ટિક હશે, તેટલી જ તાકાત વધશે, એને લીધે જ વધારે ભોજનની ક્રિયા થાય છે અને પરિણામે શરીરમાં મળનો સંચય થાય છે, જે વખત જતાં રોગનું રૂપ ધારણ કરે છે. આવી જ રીતે મોહને લીધે જ ધન અને ધન વડે મેળવેલી વસ્તુઓમાં સુખ છે એવી ધારણા થાય છે અને ધન ભેગું કરવાથી સુખ મળશે એવી માન્યતા થાય છે અને ધનસંગ્રહ કરવાની જે ક્રિયા થાય છે તેના પરિણામે મનમાં વિક્ષેપ આવી જાય છે, જે ચિંતાના રૂપમાં પ્રકટ થાય છે. એવી જ રીતે વાંચવા--સાંભળવાથી જ્ઞાન થાય છે. આ ધારણાને આધારે જેટલું વાંચીશું, સાંભળીશું તેટલું જ જ્ઞાન વધશે, એ માન્યતાને લીધે વધારે અધ્યયન કરાય છે એને લીધે જ બુદ્ધિમાં જ્ઞાનને સ્થાને અહંકાર ભેગો થાય છે અને એ જ આવાગમનનું મૂળ કારણ છે. એને જ શરીરમાં મળ, મનમાં વિક્ષેપ અને બુદ્ધિમાં

આવરણ કહેવામાં આવ્યું છે. એના જ પરિણામે રોગ, દુઃખ, અને ભય નામના ત્રણ તાપ થાય છે. તેથી ત્રણે તાપમાંથી મુક્ત થવાનું સાધન એ છે કે આપણે ભોજન, ધન અને અધ્યયન વિષે ઊંડાણથી કરીએ. વિચાર શોધને અંતે આપણ ને સંસારમાં એવા માણસો મળશે જેઓ વધારે ભોજનથી પોતાના શરીરમાં કેટલેક અંશે પશુબળનો સમાવેશ તો કરી લે છે પણ ભયાનક રોગોથી પીડાતા હોય છે. અને સંપૂર્ણ આયુષ્ય ભોગવ્યા સિવાય જ સ્વર્ગે સિધાવી જાય છે. એની વિરુદ્ધ કેટલાક એવા પણ મળશે, ભલે તેઓ ગણ્યા ગાંઠયા કેમ ન હોય, જેઓ શકિતનો સંબંધ ભોજન સાથે ન માની ભોજન--સંયમ તરફ આગળ વધે છે અને તેની મારફત શરીરમાં એક આંતરિક શકિત જાગ્રત થયાનો અનુભવ કરે છે. જેના પરિણામે તેઓ રોગ મુક્ત બનીને વેદના આ વાકય મુજબ—

जीवेत शरदः शतम् अदीनाः स्याम शरदः शतम् ।।

નીરોગ રહીને સો વર્ષનું પૂરું આયુષ્ય ભોગવે છે. આપણી વચ્ચે આ સંસારમાં ડૉ. બારબરા મૂર, એમ. ડી. એક રશિયન મહિલા છે, જેઓ આજથી (૧૯૬૨ થી) આશરે ૨૮ વર્ષ પહેલાં ભારતમાં આવ્યાં હતાં અને હિમાલય પર્વત પર કેટલાક મહાત્માઓને મળીને તેમણે કહેલી વાતોનો, જેમનું એક અંગ ભોજનનો ક્રમિક ત્યાગ પણ છે, પોતાના જીવનમાં પ્રયોગ કર્યો છે. તેમણે લખ્યું છે કે હું પહેલાં ત્રણ વખત ખાતી હતી, જે મેં અનુક્રમે ત્રણ પરથી બે, અને બે પરથી એક વખત કર્યું અને ત્યાર બાદ અન્ન તજીને શાકભાજી, ફળ તેમ જ થોડાંક પાંદડાંનું સેવન કર્યું. છેવટે ફકત રસ અથવા થોડુંક મધનું સેવન થોડા પ્રમાણમાં કરવાનું શરુ કર્યું, અને ૨૬ વર્ષોના આવી જાતના પ્રયોગ પછી તેમનું કહેવું છે કે હવે તેઓ ફકત પાણી પર મહીનાઓ સુધી રહી શકે છે અને સ્વિટઝરલેન્ડ અને ઈટાલીમાં બરફ અને બરફના પાણી પર જ રહીને દરરોજ ૪૦--૫૦ માઈલ ચાલે છે, ૮૦૦૦ ફુટ ઊંચા ડુંગર પર ચઢે છે અને ઊતરે છે, છતાં પણ તેમને કોઈ દિવસ થાક લાગતો નથી. તેમનું એ પણ કહેવું છે કે તેમણે પોતાની ઉપર પ્રયોગ કરીને સારી રીતે અનુભવ કરી લીધો છે કે શકિત કે શરીરની ગરમીનો સંબંધ ભોજન સાથે નથી. તેમણે આ તથ્યનું વૈજ્ઞાનિક નિરુપણ કરતાં જણાવ્યું છે કે હવા અને સૂર્યનાં કિરણોમાં કેટલાંક એવાં તત્ત્વો છે, જે વૈજ્ઞાનિક યંત્રો મારફત જાણી શકતાં નથી. પણ માણસનું શરીર તેમને ગ્રહણ કરીને શકિતશાળી અને મહેનતુ બની શકે છે અને ઘડપણમાં પણ જુવાન રહી શકે છે. ડૉક્ટર બારબરા મૂર અત્યારે ૬૦ વર્ષનાં છે, છતાં પણ તેમની ઉંમર ૩૦ વર્ષ કરતાં વધારે લાગતી નથી અને આ ઉંમરે તેઓ દરરોજ ૪૦--૫૦ માઈલ ચાલે છે. તાજેતરમાં થોડાક દિવસ પહેલાં જ તેમણે અમેરિકામાં સાનફ્રાંસિસ્કોથી ન્યૂ-યોર્કનો ૩૩૫૭ માઈલનો પગપાળો પ્રવાસ કર્યો હતો.

મેં પણ આ સંબંધે જે પ્રયોગો કર્યા છે, તેનાથી જણાય છે કે થોડાક દિવસો હવા પર, કેટલાક અઠવાડિયાં પાણી પર અને વર્ષો સુધી ફળ અને શાકભાજી પર સહેલાઈથી રહી શકાય છે. એનાથી શરીરમાં આરોગ્ય, અથવા શ્રમ કરવાની તાકાત અને ઘડપણમાં પણ જુવાની નો અનુભવ કરી શકાય છે. મારા કેટલાક મિત્રો તો કાંઈ પણ ખાધા વગર ૯ દિવસ સુધી સતત પોતાનાં બધાં કામ કરતા રહે છે. અને કદી પણ કોઈ જાતની શકિતહીનતા (કમજોરી) નો અનુભવ કરતા નથી. 'માનસ'ના સિદ્ધાંતોને જો જનતા સારી રીતે સમજીને આવા પ્રયોગો કરી શકે તો વ્યકિત, કુટુંબ, સમાજ, દેશ તેમ જ વિશ્વનું પણ કલ્યાણ થઈ શકે છે.

શોધ કરનારને એવા માણસો પણ સહેલાઈથી મળી જશે, જેઓ ઘણા પૈસાદાર હોવા છતાં મનથી અશાંત અને ચિંતાગ્રસ્ત છે. અને એની વિરુદ્ધ એવા પણ માણસો છે ભલે તેમની સંખ્યા નાની હોય જેઓ નિર્ધન હોવા છતાં બધી રીતે ચિંતા મુકત છે અને એક જાતના આંતરિક આનંદનો સતત અનુભવ કરતા હોય છે અને તેમના સંપર્કમાં આવનાર માણસો ઓછામાં ઓછો થોડા સમય માટે શાંતિનો અનુભવ કરે છે.

આ સંબંધમાં પણ અમે લોકોએ જે પ્રયોગો કર્યા છે તેનું પરિણામ એ આવ્યું છે કે પોતાના સમય શકિત અને ધનનો થોડો ક ભાગ (દશાંશ) નિઃસ્વાર્થભાવે, પ્રભુને નાતે જનતા--જનાર્દનની--ખાસ કરીને બાળકો, ગરીબો અને સાધુજનોની સેવા માટે અર્પણ કરવાથી મન પરિસ્થિતિ થી અતીત થવા માંડે છે. અને વિષય પરિસ્થિતિઓ આવવા છતાં મનમાં શાંતિ કાયમ રહે છે. સાથે સાથે જીવનમાંથી અભાવ પણ મટે છે અને કોઈ ન કોઈ રીતે ભગવાન આવશ્યકતાઓની પૂર્તિ પણ કરે છે આ અનુભવ દિવસે દિવસે વધતો જાય છે.

આવી જ રીતે શોધ કરનારાઓને એવા માણસો પણ મળશે જેઓ શાસ્ત્રીય શિક્ષણ (Academic education) ન મળ્યા છતાં પ્રકાશ અથવા જ્ઞાનનાં કેન્દ્ર છે. ઘણા ખરા સાધુ મહાત્માઓ જેમની ગણતરી જ્ઞાનીઓમાં થાય છે, મોટે ભાગે અશિક્ષિત હતા. સ્વામી શરણાનંદજી મહારાજ એવા જ જ્ઞાની અને ઉચ્ચ કોટિની વ્યકિતઓમાંના એક છે. તેમને નિશાળનું શિક્ષણ ચોથા ધોરણ સુધી જ મળ્યું હતું પણ તેમની બુદ્ધિમાં એક અપૂર્વ પ્રકાશ છે. મહર્ષિ રમણ, જેમનું શરીર થોડાંક વર્ષ પૂર્વે લય પામ્યું છે, આ યુગના મહાન જ્ઞાનીઓમાંના હતા, પણ એમનું નિશાળનું શિક્ષણ લગભગ નહિ જેવું જ હતું. પરમહંસ રામકૃષ્ણ, જેઓ જગપ્રસિદ્ધ સ્વામી વિવેકાનંદજીના ગુરુ હતા, આ જ શ્રેણીમાં આવે છે. એનો સાર એ છે કે શકિત, જ્ઞાન અને આનંદનો સંબંધ ભોજન, અધ્યયન અને ધન સાથે તેવો નથી જેટલો આજનો માનવી માની રહ્યો છે અને આ અજ્ઞાનને લીધે જ તે રોગ, દુ:ખ અને ભયથી પીડિત છે. એમનો સંબંધ કોઈ એક એવી સત્તા સાથે છે જે દરેક માનવીના અંતરમાં હાજર છે. આપણે પોતાના દૈનિક જીવનમાં મોટે ભાગે જોઈએ છીએ કે રાત્રે જયારે આપણે ખાટલામાં શિથિલ થઈને પડીએ જઈએ છીએ (પગથી ચાલવાનું અને હાથથી પકડવાનું બંધ કરી દઈએ છીએ) અને નિદ્રામાં પ્રવેશ કરીએ છીએ (બાહ્ય આંખો, કાન વગેરે ઈન્દ્રિયોનાં કામ બંધ કરી દઈએ છીએ) અને સ્વપ્નાવસ્થામાં બુદ્ધિથી કાર્ય લીધા પછી ગાઢ નિદ્રામાં સૂઈ જઈએ છીએ, ત્યારે આપણા શરીરનો થાક ખોઈ આપણે નવી શકિત અને તાજગી નો અનુભવ કરીએ છીએ અને મનની ચિંતા ગુમાવી 'આપણે ખૂબ આનંદથી સૂતા' એવું કહીએ છીએ. આવી હાલતમાં તેજ કેન્દ્ર સાથે સંપર્ક હોવાને કારણે જ આપણા શરીર અને મનમાં શકિત અને આનંદ મળે છે. જેવી રીતે ગાઢ નિદ્રામાં પ્રવેશ થયા પછી શરીર, મન અને બુદ્ધિથી ગતિ થંભી જાય છે, તેવી જ રીતે એવી નિષ્ક્રિયતાની સ્થિતિ જાગ્રત અવસ્થામાં પણ અભ્યાસવડે આણી શકાય છે. અને જે વ્યકિત આ સાધનનો અભ્યાસ કરશે તેનો અંદરના કેન્દ્ર સાથે સંપર્ક સ્થાપિત થઈ શકશે. તેના પરિણામે તેને શકિત, જ્ઞાન અને આનંદ મળવા લાગશે. 'માનસ'માં એને તપની સાધના કહેવામાં આવી છે—

उरधरि उमा प्रानपति चरना ।
जाइ विपिन लागी तप करना ।
अति सुकुमार न तनु तप जोगू ।
पति पद सुमिरि तजेउ सब भोगू ।।
जित नव चरन उपज अनुरागा ।।
बिसरी देह तपहिं मनु लागा ।।
संवत् सहस मूल फल खाये ।
सागु खाऊ सत बरष गँवाये ।।
कछु दिन भोजन वारि बतासा ।
किये कठिन कछु दिन उपवासा ।

આ તપનાં ત્રણ અંગો છે:—

૧. ચિત્તવૃત્તિનો નિરોધ (સુમિરન) ૨. ઈન્દ્રિયોનો સંયમ (અભોગ) ૩. ભોજનનો ક્રમિક પરિત્યાગ (ઉપવાસ)

આ સાધનાના પરિણામે માનવીના બધા મનોરથો સિદ્ધ થઈ જાય છે અને તેના શરીરમાં અખંડ શકિત, મનમાં અખંડ આનંદ અને બુદ્ધિમાં અખંડ જ્ઞાનનો સંચાર થવા લાગે છે અને જીવનકાળમાં જ બધી રીતે શાંતિલાભ થાય છે અને શરીર છોડતાં તેને મોક્ષ મળે છે.

'ये मनोरथ सुफल तव, सुनु गिरिराजकुमारि ।।'

ટૂંકમાં 'માનસ'માં વર્ણવેલા બંને માર્ગો વડે (૧) સુમિરન અને ભજન અને (૨) તપથી માનવીનાં દુ:ખોનો સદંતર નાશ અને સુખની પ્રાપ્તિ થાય છેઅને તેનો શારીરિક, માનસિક અને બૌદ્ધિક વિકાસ થાય છે, તપ વડે માનવીની વ્યકિતગત સમસ્યાઓ અને સેવાથી અભાવની નિવૃત્તિ થવાને કારણે સામૂહિક સમસ્યાઓનો ઉકેલ આવી જાય છે અને તેના જીવનમાં કોઈ જાતનું દુ:ખ રહેતું નથી.

जीवन मुक्त ब्रह्मपर, चरित सुनहि तजि ध्यान ।
जे हरि कथा न करहिं रति, तिन्ह के हिय पाषान ।।

માનવના સર્વાંગિણ વિકાસની રૂપરેખા

—લેખક : પરમપૂજ્ય શ્રી હૃદયનારાયણ યોગીજી

[રામાયણનો આપણા દૈનિક જીવન સાથે ગાઢો સંબંધ છે. માનસમાં વારંવાર કહેવામાં આવ્યું છે કે માનસના અધ્યયનથી આપણા શારીરિક, પ્રાણિક, માનસિક, બૌદ્ધિક અને આધ્યાત્મિકજીવનનો સર્વાંગી વિકાસ થાય છે. માનસમાં જણાવેલી સાધનપ્રણાલિ અને વૈજ્ઞાનિક પ્રયોગથી અવિદ્યાજન્ય પાંચ વિકારો--રોગ, થાક, ચિન્તા, ભય અને દ્વૈત ભાવના--નિર્મૂળ કરી માનવના જીવનમાં અખંડ સ્વાસ્થ્ય, અખંડ શકિત, અખંડ આનંદ, અખંડ જ્ઞાન અને અખંડ પ્રેમની પ્રાપ્તિ કેવી રીતે થાય છે તે શ્રી 'યોગીજી'એ આ લેખમાં વિગતવાર સમજાવ્યું છે.]

રામાયણ નો આપણા દૈનિક જીવન સાથે ઘનિષ્ઠ સંબંધ છે. તેમાં વારંવાર આશ્વાસન આપવામાં આવ્યું છે કે તેના અધ્યયનથી આપણા શારીરિક, પ્રાણિક, માનસિક, બૌદ્ધિક અને આધ્યાત્મિક બધા સ્તરોનું સર્વાંગીણ વિકાસ થશે. મારો વિશ્વાસ છે કે માનસના પ્રારંભિક પાંચ સોરઠાઓના માનવીના આ પાંચ સ્તરો સાથે સંબન્ધ છે અને માનસ પ્રતિપાદિત સાધન--પ્રણાલીના વૈજ્ઞાનિક પ્રયોગ વડે માનવીના આ પાંચ સ્તરોના અવિદ્યાજન્ય પંચ વિકાર રોગ, થાક, ચિંતા, ભય અને દ્વૈત ભાવનાનો સમૂળગો નાશ થઈને ભગવત્કૃપાથા માનવીના જીવનમાં અખંડ સ્વાસ્થ્ય, અખંડ શકિત, અખંડ આનંદ, અખંડ જ્ઞાન અને અખંડ પ્રેમનો સંચાર થશે.

'માનસ'ના પ્રતિપાદ્ય વિષય ભગવાન રામ છે:—

जेहि महुँ आदि मध्य अवसाना ।
प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना ।।

પણ રામની જ શક્તિનો અનેક દેવતાઓના રૂપમાં પ્રાદુર્ભાવ થયો છે, જેમાંના પાંચ મુખ્ય છે—ગણેશ, સૂર્ય, વિષ્ણુ, શિવ અને ગુરુ જેમની વંદના માનસના પ્રારંભના પાંચ સોરઠા છંદોમાં છે. આ પાંચ દેવોનો સંબન્ધ માનવ-જીવનના પાંચ સ્તરો સાથે છે, જેમને પંચકોશ પણ કહે છે—અન્નમય (physical) પ્રાણમય (vital), મનોમય (emotional), વિજ્ઞાનમય (intellectual), અને આનંદમય (spiritual), આજ પંચ કોશોમાં મોહને લીધે જે પાંચ વિકારો છે, તે ભગવત્ પ્રકાશથી નાશ પામે છે. આ પાંચ દેવતાઓનાં સ્થાન માનવશરીરના પાંચ પ્રધાન ચક્રોમાં છે.—મૂલાધાર, મણિપૂર, અનાહત, આજ્ઞા સહસ્રાર, જે અનુક્રમે ગુદાની ઉપર, નાભિ, હૃદય, ભ્રૂમધ્ય અને મસ્તકના મધ્યમાં (બ્રહ્મ--રંધ્રની વચ્ચે) છે. પાંચે દેવતાઓ પૈકી દરેક, એક ખાસ તત્ત્વનો અધિષ્ઠાતા દેવ છે, જે અનુક્રમે પૃથ્વી, અગ્નિ જલ વાયુ અને આકાશ છે. આ પાંચ દેવોની કૃપાથી માનવ--શરીરમાં સ્વાસ્થ્ય, ઈન્દ્રિયોમાં શકિત, મનમાં આનંદ, બુદ્ધિમાં જ્ઞાન અને અહમ્‌માં પ્રેમની પ્રાપ્તિ થાય છે, જેના થી—

"दुख लवलेस न सनेहु ताके ।"

ની અનુભૂતિ પોતાની મેળે થઈ જાય છે. આ સ્થિતિ પ્રાપ્ત કરવા માટે રામાયણમાં જે પંચ--સૂત્રી સાધનપ્રણાલી પ્રતિપાદિત કરી છે તેના પાંચ અવયવો છે. સમતોલ આહાર, યુકિતયુકત ઉપવાસ, વિવેક પૂર્ણ સેવા, વિધિપૂર્વક ધ્યાન અને સર્વભાવેન આત્મ સમર્પણ,

આ પંચ--સૂત્રી સાધન પ્રણાલી વિષે, જે કાંઈ હું સમજી શક્યો છું અને જેના પર મારા મિત્રોએ વૈજ્ઞાનિક પ્રયોગો કર્યા છે, તેને થોડાક વિસ્તારથી સમજવાની જરૂર છે.

જેમ ઉપર વર્ણવ્યું છે, 'માનસ'ના પ્રારંભક પાંચ સોરઠાઓનો માનવીના પાંચ કોશો સાથે સંબંન્ધ છે, અને તેમાં 'માનસ' પ્રતિપાદિત સાધન--પ્રણાલિ વડે સ્વાસ્થ્ય, શકિત, આનંદ અને પ્રેમની પ્રાપ્તિ થઈ શકે છે.

માનવ સમાજ સમક્ષ હમેશ બે જુદી જુદી વિચાર ધારાઓ અભાવવાદ અને વિકાસવાદનો પરસ્પર સંઘર્ષ રહ્યો છે. બંને વિચારધારાઓ એક બીજાની સર્વથા વિરોધી છે. પહેલી વિચારધારા પ્રમાણે મનુષ્ય માને છે કે બાહ્ય વસ્તુઓ વડે અભાવની પૂર્તિ થઈ શકે છે અને કમજોરી ભોજનથી, ચિંતા ધનથી અને અજ્ઞાન પુસ્તકોના અધ્યયનથી દૂર કરી

શકાય છે. બીજા સિદ્ધાંત--વિકાસવાદ મુજબ રોગ, ચિંતા અને અજ્ઞાનનું કારણ પેલો વિકાર છે, જે શરીર મન અને બુદ્ધિમાં સ્થિર છે અને તેને અંદરથી બહાર કાઢતાં જ રોગ, ચિંતા અને આજ્ઞાન મટી શકે છે. મારો વિશ્વાસ છે કે માનસને વિકાસવાદનો સિદ્ધાંત જ માન્ય છે અને માનવીના પંચકોશોમાંથી વિકાર કાઢી નાખવા માટે માનસ પ્રતિપાદિત સાધનપ્રણાલીના પાંચ અવયવો છે, જેમનો સંબંધ 'માનસ' ના પાંચ પ્રારંભિક સોરઠાઓ સાથે છે.

પહેલા સોરઠામાં ગણેશજીની વંદના છે:—

जेहि सुमिरत सिधि होइ, गननायक करिबर बदन ।
करउ अनुग्रह सोइ, बुद्धिरासि सुभ गुनसदन ।।

કોઈ ગ્રંથના આરંભમાં કોઈ દેવ વિશેષની વંદનાનો હેતુ તે દેવતા પાસેથી તે ગુણોની કામના હોય છે, જેમની ગ્રંથકાર ને જરૂર હોય છે. વંદનામાં ચૂંટેલાં વિશેષણોનો પ્રયોગ કરવામાં આવે છે. જેથી લોકો કોઈની પાસે ધનની માગણી કરતી વખતે તેને કુબેરની સંજ્ઞા આપે છે. માનસકારે પણ એવી જ રીત પાંચ સોરઠાઓમાં પાંચ દેવતાઓની વંદના હેતુસર કરી છે. પહેલા સોરઠામાં ગ્રંથની નિર્વિઘ્ન સમાપ્તિ માટે, સિધ્ધિ આપનાર અને વિઘ્નનિવારક પ્રથમ પૂજ્ય ગણેશજીની વંદના કરી છે. ગણેશજીનું શરીર સ્થૂલ છે અને મોઢું હાથીનું છે. તત્ત્વોમાં સૌથી સ્થૂલ પૃથ્વી તત્ત્વ છે, અને અન્નમય કોશમાં પૃથ્વી તત્ત્વ જ પ્રધાન છે, હાથી સ્થૂલતાનું પ્રતીક છે. ગણેશ મૂલાધાર ચક્રના દેવતા છે અને આ ચક્રમાં કુંડલિની ની ગતિ હાથીની ગતિ જેવી છે. ચક્રોમાં મૂલાધાર ચક્ર પ્રથમ છે અને દેવતાઓમાં પ્રથમ પૂજ્ય ગણેશ છે, જે બધાં વિઘ્નોના નિવારક છે. કોઈ પણ કાર્ય સારી રીતે પાર પાડવા માટે ભલે તે કામ વ્યક્તિગત, કૌટુંબિક, સામાજિક, ધાર્મિક, ઈહલૌકિક કે પારલૌકિક હોય — બધાં કાર્યોમાં સર્વ પ્રથમ રૂકાવટ શરીરનું રોગી થવું એ છે. તેથી આ ચક્રનો શરીર સાથે સમ્બન્ધ છે, માનસ'ની વિચારધારા પ્રમાણે આ સ્થૂલ શરીર પાંચ તત્ત્વોનું બનેલું છે.—

छिति, जल, पावक, गगन, समीरा ।
पंच रचित यह अधम सरीरा ।।

આ પાંચ તત્ત્વોથી બનેલા સ્થૂલ શરીરમાં — મનુષ્યના જ નહિ, પણ પ્રાણી માત્રના શરીરમાં ભગવાન વૈશ્વાનરના રૂપમાં સ્થિત છે:—

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देह माश्रितः ।
प्राणापान समायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ।।

ભગવાન જ બધાં પ્રાણીઓનાં શરીરમાં રહી વૈશ્વાનર (અગ્નિરૂપ) થઈને ચાર પ્રકારના અન્નને પચાવે છે. આ પ્રમાણે શરીર પંચ ભૌતિક છે. તેમાં ભગવાન વૈશ્વાનર બનીને સ્થિત છે અને ભોજન ચાર પ્રકારનું છે; જેને ભગવાન જ પચાવે છે. આ મૂળ તત્ત્વને —હૃદયંગમ કરી લેવાથી 'માનસ' પ્રતિપાદિત પાંચસૂત્રી સાધન પ્રણાલીના પ્રથમ અવયવ — સમતોલ આહારનો સિદ્ધાંત સમજી શકાય છે અને તેના પર વૈજ્ઞાનિક પ્રયોગો કરી શકાય છે.

માનવશરીર જે પાંચ તત્ત્વોનું બનેલું છે, તે અનુક્રમે પૃથ્વી, જલ, અગ્નિ, વાયુ અને આકાશ છે. એમાં પ્રથમ ચાર ભોજનનાં તત્ત્વો છે અને પાંચમું (આકાશ) ભોજનનું નહિ ઉપવાસનું તત્ત્વ છે. ભારતીય વાઙ્મયમાં 'હવાખાવી', તડકો ખાવો' વગેરે વાક્ પ્રયોગો છે પણ 'આકાશ ખાવું' એવો પ્રયોગ નથી. ખરી રીતે આકાશનો પૂરો સમાવેશ શરીરમાં ઉપવાસ કાળમાં જ થાય છે.

આકાશ ભોજનનું તત્ત્વ નથી, ઉપવાસનું તત્ત્વ છે. શેષ ચાર તત્ત્વોનો ભોજનના જે પદાર્થો સાથે સમ્બન્ધ છે તે આ પ્રમાણે છે:—

પૃથ્વી તત્ત્વ સાથે બધાં અનાજોનો સંબંધ છે, એમાં દાળો અને ઘઉં ચોખા પણ છે, જોકે દાળોમાં પૃથ્વી તત્ત્વનું પ્રમાણ વધારે છે. આ અનાજ સ્થૂલતા પેદા કરે છે. જે લોકો શારીરિક શ્રમ વધારે કરે છે, તેઓજ વધારે પ્રમાણમાં અન્ન ખાઈને પચાવી શકે છે. બૌદ્ધિક શ્રમ કરનારાઓને એની ઓછી જરૂર રહે છે, તેથી તેમણે દિવસ અને રાત દરમ્યાન એક જ વખત અનાજનું ભોજન કરવું જોઈએ.

ભોજનનાં શાકભાજીનો જલ તત્ત્વ સાથે સંબંધ છે. એમાં પણ દૂધી, પરવલ વગેરે લીલાં શાકોમાં જલ તત્ત્વ વધારે છે. અને બટાટા, શક્કરિયાં વગેરે કંદોમાં થોડુંક, પૃથ્વી તત્ત્વ પણ છે, પણ અનાજોમાં જેટલું પૃથ્વી તત્ત્વ છે, તેના કરતાં ઓછું છે. એમ તો પંચીકરણ સિદ્ધાન્ત પ્રમાણે પાંચ તત્ત્વોમાંથી દરેક તત્ત્વની અંદર બીજાં ચાર તત્ત્વોનો પણ સમાવેશ છે.

અગ્નિ તત્ત્વ વિશેષ રૂપે ફળોમાં હોય છે, જો કે તેમાં પણ જલ તત્ત્વ પુષ્કળ પ્રમાણમાં છે, ફળો સૂર્યની ગરમીથી

પાકે છે. છાન્દોગ્યોપનિષદ્ માં કહ્યું છે —

तेजो ऽशितं त्रेधा विधीयते ।

એનો અર્થ છે જે આગ આપણે ખાઈએ છીએ, તેના ત્રણ ભાગ થઈ જાય છે, એનો અભિપ્રાય અંગારવાળી અગ્નિ સાથે નહિ બલ્કે સૂર્ય સાથે છે. જ્યારે આપણે તડકો ખાઈએ છીએ અને સૂર્યની ગરમીથી પાકેલાં ફળો ખાઈએ છીએ ત્યારે આપણાં શરીરમાં અગ્નિ તત્ત્વનો સમાવેશ થાય છે. ફળો પણ બે પ્રકારનાં હોય છે: એક રસવાળાં અને બીજાં ગરવાળાં. ગરવાળાં ફળોમાં પૌષ્ટિક તત્ત્વ વધારે પ્રમાણમાં હોય છે અને રસવાળાં ફળો શરીરને શુદ્ધ કરવામાં ઘણી સહાય કરે છે.

ચોથું તત્ત્વ — વાયુ ખાસ કરીને પાંદડાંઓમાં હોય છે. જેને રામાયણમાં 'શાક' અને ગીતામાં 'પત્ર' કહેવામાં આવ્યાં છે અને બંને ગ્રંથોમાં ભોજનના પદાર્થોમાં એની પ્રથમ ગણના છે. જેમ કે—

करहि अहार साक फल कंदा

તેમ જ

पत्रं पुष्पं फलं तोयं योमे भक्त्या प्रयच्छति ।

પાંદડાંઓમાં તુલસી, વેલા વગેરેનાં પાંદડાંમાં શરીરને શુદ્ધ કરવાની વધારે શકિત છે અને પાલક, તાંદળજા વગેરે શાકોમાં એના કરતાં ઓછી.

આ પ્રમાણે રામચરિતમાનસ પ્રમાણે તત્ત્વોના આધારે ચાર જાતના ભોજનના પદાર્થો છે — શાક, ફળ, કન્દ અને અન્ન, જે અનુક્રમે વાયુ, અગ્નિ, જલ અને પૃથ્વી તત્ત્વ સાથે સંબંધ ધરાવે છે. દૈનિક જીવનમાં જો ભોજનમાં આ ચારેયનો અને થોડો આકાશ તત્ત્વ એટલે ઉપવાસનો સમાવેશ હોય તો 'માનસ' પ્રમાણે આ સમતોલ આહાર કહેવાય અને આવા સમતોલ આહારથી શરીર સ્વસ્થ અને રોગરહિત રહી શકે છે. મારો વિશ્વાસ છે કે ગીતામાં પણ આ જ સિદ્ધાંતનું પ્રતિપાદન થયું છે અને પંદરમાં અધ્યાયના ચૌદમા શ્લોકમાં '**पचाम्यन्नं चतुर्विधम्**' માં ચાર તત્ત્વો સાથે સંબંધ ધરાવતા આ જ ચાર પ્રકારના ભોજનનો સંકેત છે, જેનું સ્પષ્ટીકરણ ૮ મા અધ્યાયના ૨૬ મા શ્લોકમાં છે: — **पत्रं पुष्पं फलं तोयम्** માં અનુક્રમે વાયુ, પૃથ્વી, અગ્નિ અને જલ તત્ત્વનો સમાવેશ થાય છે. આ પ્રકારના અર્થમાં એક દર્શન અને તંત્ર છે, જેના ક્રિયાત્મક પ્રયોગથી બધા રોગોનું નિવારણ થઈ શકે છે.

ભોજનના પદાર્થો સાથે સંબંધ ધરાવતા આ સિદ્ધાંત, સિવાય આપણે ભોજનના પ્રમાણ અને ભોજનના સમય વિષે પણ ધ્યાન રાખવું પડશે. ભગવાન વૈશ્વાનર છે, તેથી અંદરથી જ્યારે અને જેટલા ભોજનની માગણી થાય તે વખતે તેટલું જ ખાવું જોઈએ. ભૂખ વગર અને સ્વાદને વશ થઈ ભોજન કરવું એ વૈશ્વાનરનું અપમાન છે, જેનું નક્કી પરિણામ રોગ છે. ભગવાનના નિરાદરથી રોગ થાય છે એવું 'માનસ' માં સિદ્ધાંત રૂપે પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે —

बहु रोग वियोगन्हि लोग हये
भवदंघ्रि निरादर के फल ये ।।

સમજવાની વાત એ છે કે ભગવાનનો નિરાદર સાથે શો સંબંધ છે? જેવું હું સમજી શકયો છું, તે મુજબ વૈશ્વાનર ભગવાનનું જ રૂપ છે, જેમ કે:—

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहयाश्रित :।

એ ભગવાનનું અપમાન ત્યારે જ થાય છે જ્યારે આપણે ભૂખ વગર સંબંધીઓ અને મિત્રોના આગ્રહને લીધે અથવા સ્વાદને વશ થઈ ભોજન કરીએ છીએ, શકિત સાથે ભોજનનો સંબંધ માની શ્રમ કર્યા પહેલાં ભોજન કરવાની પ્રવૃત્તિ પણ ભગવાનનું અપમાન જ છે. તેથી રામાયણમાં બપોર પહેલાં ભોજન કરવાની ચર્ચા જ નથી.

रिषिन संग रघुवंशयनि करि भोजन विश्राम ।
बैठे प्रभु भ्रातासहित दिवस रहा भरि याम ।।

એટલે ભોજન કરીને વિશ્રામ કર્યા બાદ એકયામ (ત્રણ કલાક) દિવસ બાકી રહ્યો. તેથી બપોર વખતે એભોજન કરાયું એ સ્પષ્ટ છે. '**रिषिनसंग**' નો સંકેત છે કે વિરકતોના ભોજનની ચર્ચા છે; ત્યાં દિવસના અંતમાં જ ભોજન થતું હતું, એવો ઉલ્લેખ છે:—

पय अहार फल असन एक
निसि भोजन एक लोग ।
करत रामहित नेम व्रत
परिहरि भूषन भोग ।।

ભોજન વિષે છેલ્લો અને અત્યંત આવશ્યક નિયમ એ છે કે ભગવાન વૈશ્વાનરના રૂપમાં બધાં પ્રાણીઓના શરીરમાં રહેલા છે; તેથી ભોજનમાંથી થોડોક અંશ વૈશ્વાનર માટે જુદો કાઢવો એ અનિવાર્ય છે. ગીતામાં ભગવાને પણ કહ્યું છે:—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः ।।
भुञ्जते ते त्वघ पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ।।

યજ્ઞના શેષભાગને ગ્રહણ કરનાર સજ્જનો પાપમાંથી મુક્ત થઈ જાય છે, અને પોતાને જ માટે જેઓ અન્ન રાંધે છે તેઓ પાપ ભોગવે છે. મનુસ્મૃતિમાં એમ જ કહ્યું છે :—

अघंस केवलं भुक्ते यः पचत्यात्मकारणात् ।

તેથી ભોજન પહેલાં થોડુંક અન્ન કાઢી લેવું આવશ્યક છે, જેનું પ્રમાણ મારી સમજ મુજબ ચતુર્થાંશ હોવું જોઈએ. ભોજન ચતુર્વિધ છે. આ પ્રમાણે ભોજનના પદાર્થ, પ્રમાણ, ઉદ્દેશ્ય અને સમયનો વિચાર કરી જેઓ ભોજન કરે છે તેમને અખંડ સ્વાસ્થ્યનો લાભ થાય છે.

બીજા સોરઠામાં સૂર્યની વંદના છે :—

मूक होइ वाचाल, पंगु चढइ गिरिवर गहन ।
जासु कृपा सो दयाल, प्रवउ सकल कलिमल दहन ।।

(જેની કૃપાથી મૂગો વાચાલ બને છે, લંગડો ભયંકર પર્વત ચઢી જાય છે, બધા કળીયુગના પાપોને બાળી નાખનાર એવા દયાળુ પ્રભુ કૃપા કરો.)

છાન્દોગ્યોપનિષદ્ પ્રપાઠક ૬, ખંડ ૫ ની ત્રીજી ઋચા-માં —

तेजोऽशितं त्रेधा विधीयते । तस्य यः स्थविष्ठो
धातुस्तदस्थि भवति, यो मध्यमः स मज्जा, दोऽणिष्ठः सा वाक् ।।

એટલે આપણે જે તેજ ખાઈએ છીએ તેના સ્થૂલ ભાગથી હાડકાં, મધ્યમથી મજ્જા અને સૂક્ષ્મતમ ભાગથી વાણી બને છે. બીજી ઋચામાં આગળ કહ્યું છે :—

'**तेजोमयी वागिति**' એટલે વાણી તેજોમયી છે. આ પ્રમાણે અગ્નિ તત્ત્વથી જ વાણી અને હાડકાંનો સંબંધ છે. 'મૂક' ને 'વાચાલ' થવાની અને 'પંગુ' ને 'ગિરી-વર ગહન' ચઢવાની યોગ્યતા સૂર્યની શક્તિથી જ મળશે અને 'કલિમલ દહન' માં દાહકતા અગ્નિનો જ ગુણ અને વિનયપત્રિકાના બીજા પદ 'દીન દયાલુ દિવાકર દેવા' માં પણ 'દયાલુ' શબ્દનો જેવો 'માનસ' ના બીજા સોરઠામાં પ્રયોગ થયો છે તેજ સૂર્ય માટે થયો છે. તેથી 'માનસ' ના બીજા સોરઠામાં સૂર્યની જ વંદના છે એવું પુરવાર થાય છે.

શરીરમાં સ્થિત સૂર્યદેવતાનું સ્થાન મણિપૂર ચક્ર છે. તેમની કૃપાથી જ મળો બળી જાય છે અને વિકારવાદના સિદ્ધાંત મુજબ મળથી જ કમજોરી; એટલા માટે મળનાશથી જ શક્તિનો સંચાર થાય છે. સંપૂર્ણ મળનાશથી અખંડ શક્તિનું જાગરણ થાય છે.

આ સિદ્ધાંતના ક્રિયાત્મક પ્રયોગ માટે માનસમાં પ્રતિ-પાદિત ઉપવાસનો સિદ્ધાંત આ છે કે સાધકે અનુક્રમે અન્ન, કંદમૂળ, ફળ અને શાકનો ક્રમિક ત્યાગ કરતાં ફક્ત જળ અને વાયુ પર જ રહીને ઉપવાસ કરવો જોઈએ.

संवत सहस मूल फल खाये । साग खाइ सत वरष गँवाये ।
कछुदिन भोजन वारि बतासा । किये कठिन कछु दिन उपवासा

આ 'માનસ' ની ઉપવાસ પ્રણાલી છે.

ત્રીજા સોરઠામાં વિષ્ણુની વંદના છે, જે જલના અધિ-ષ્ઠતા દેવ છે, અને અનાહત (હૃદય) ચક્રમાં નિવાસ કરે છે. માનસમાં જળનો સંબંધ રસ સાથે છે :—

बिनु जल रस कि होई संसारा ?

રસની પ્રાપ્તિ હૃદયમાં જ થાય છે. તેથી વિષ્ણુની કૃપાથી અખંડ રસ (આનંદ) ની પ્રાપ્તિ થાય છે. આ વિષ્ણુ વ્યાપક તત્ત્વ છે. માનસ પ્રમાણે જે બધામાં વ્યાપક સત્તા છે તેનો ક્રિયાત્મક આદર સમય, શક્તિ, ધન અને ભોજન વડે સેવા કરવાનો છે. આ પ્રમાણે બધાનું હિત જોવાથી દુઃખનો નાશ થાય છે.

कबहुं कि दुख सबकर हित ताके ।

પણ સેવાનો સાચો ભાવ ઉદય થયા પછી જ ફલિત થાય છે. જે રામાયણમાં નીચે મુજબ વર્ણવ્યો છે :—

हमहिं कृतारथ करन लगि, फल तृन अंकुर लेहु ।।

કોઈ દીન દુઃખીને મદદ કરવી એટલી જ વાસ્તવિક સેવા નથી. વિવેક અને સામર્થ્ય પ્રમાણે પ્રભુના સંબંધે સેવાના ભાવથી જે સમય, શક્તિ અને ધન બીજાઓ માટે અર્પણ કરાય છે, તે માનસની આ પંચસૂત્રી સાધન પ્રણા-લીનો ત્રીજો અવયવ 'વિવેક પૂર્ણ સેવા' છે, જેનું ફળ અખંડ રસની પ્રાપ્તિ છે. મારી સમજ પ્રમાણે માનવી દસે ઈન્દ્રિયો પાસે સુખ ઈચ્છે છે, તેથી પોતાની આવક નો દશમાંશ સેવા માટે વાપરવો આવશ્યક છે.

ચોથા સોરઠામાં ભગવાન શિવની વંદના છે, જેઓ વાયુના અધિષ્ઠતા દેવ છે અને જેમનો નિવાસ આજ્ઞાચક્રમાં (ભ્રૂ મધ્ય) છે. અભ્યાસ વડે શ્વાસની ગતિને રોકવાથી અથવા પ્રેમના અતિરેકમાં જ્યારે શ્વાસની ગતિ રૂંધાવા

લાગે છે ત્યારે મન સ્થિર એટલે નિર્વિષય બને છે અને ચિત્તની વૃત્તિઓ થંભી જાય છે, એને જ યોગ કહે છે :— **'योगनिश्चित्त वृत्ति निरोधः'** અને માનસના સિદ્ધાંત પ્રમાણે યોગથી જ જ્ઞાન થાય છે.

धर्म ते विरति, जोग ते ज्ञाना ।।

તેથી શિવની કૃપાથી અખંડ જ્ઞાનની પ્રાપ્ત થાય છે, પણ એને માટે 'વિધિપ્રમાણે' ધ્યાનનો અભ્યાસ જરૂરી છે, જેની પ્રક્રિયા 'માનસ'માં નારદના પ્રકરણમાં આ પ્રમાણે આપવામાં આવી છે. પહેલાં મનને કેન્દ્રિત કરવા માટે તેને કોઈ બિંદુ (શબ્દ રૂપ વગેરે) પર લગાડીએ છીએ.

निरखि सैलसर बिपिन बिभागा ।
भयउ रमापति पद अनुरागा ।।

પછી સ્મરણની સ્થિતિ આવે છે, જેમાં મનમાં બંને મળલય અને વિક્ષેપ—રહેતા નથી :—

सहज विमल मन लागि समाधी ।

અને અહંકારનો નાશ થાય છે. આ પ્રકારના અભ્યાસથી બુદ્ધિમાં પ્રકાશ થાય છે અને બધે જ એક સત્તા દેખાવા લાગે છે, જેથી ભયનો નાશ થાય છે કારણ કે દ્વૈતમાં જ ભય છે.

છેવટના અને પાંચમા સોરઠામાં ગુરુની વંદના છે, જેનું તત્ત્વ આકાશ છે અને ચક્ર સહસ્રદલ કમળ છે. આકાશ વ્યાપક તત્ત્વ છે અને અદ્વૈતાનુભૂતિ પછી તે સર્વ-વ્યાપક પ્રભુ સાથે, સમર્પણ વડે નિજત્વનો સંબંધ સ્થપાઈ જાય છે, જેમકે :—

सुरमुनि सचराचर साईं ।
मैं पूछऊँ निज प्रभु की नाईं ।।

અથવા

विश्वनाथ मन नाथ मुरारी ।।

આ નિજત્વ સંબંધમાં સર્વભાવઆત્મસમર્પણ રહેલું છે, જેમ કન્યા ફેરા વખતે પતિને સર્વભાવેન આત્મ સમર્પણ કરે છે, તેવી જ રીતે શરણાગત ભકત ભગવાનને.

स्वामि सखा पितु मातु गुरू, जिन्ह के सब तुम्ह तात—

એવું માનીને પોતાનું સમર્પણ કરે છે. એ બુદ્ધિથી પરનું જગત્ છે. તેથી આ વિષે વિશેષ ગુરુ—કૃપાથી જ અનુભવ કરી શકાય.

સાત્ત્વિક આહાર

મનુષ્ય હંમેશા પોતાનું ધ્યેય પ્રાપ્ત કરવા માટે પ્રયત્ન કરતો હોય છે જ. અને સત્ય નિષ્ઠાથી કરેલાં પ્રયત્નોને સફળતા સાંપડે જ છે. ભગવાન શ્રી કૃષ્ણે ગીતામાં ક—હ્યું છે તેમ ફળની આશા રાખ્યા વગર માણસે કર્મ કરવું જોઈએ. અને જયારે ફળ પ્રાપ્તિના લોભ રહિત મનુષ્ય કાર્ય કરે છે ત્યારેજ તેમાં સાચી લગન હોય છે, સાચો આનંદ હોય છે. માનસિક આનંદ અને શાંતિ પણ પ્રાપ્ત થાય છે. એટલે કે જયારે ફળની તૃષ્ણા રાખ્યા વગર ધીરજ અને ખંતથી આપણે કોઈ કાર્ય કર્યું હોય ત્યારે સમગ્ર રીતે તેની શુભ અસર આપણા તન અને મન ઉપર થાય જ છે.

સાત્ત્વિક આહાર એ પ્રભુ મય — શાંતિ મય જીવનની બીજી આવશ્યકતા છે. એક બહુ શ્રુત કહેવત છે કે, 'જેવા આહાર તેવો વિચાર અને જેવો વિચાર તેવું વર્તન.' માટે માણસે માત્ર અલ્પાહારી જ નહિ પરંતુ શુદ્ધ અને સારો આહાર લેવો જોઈએ. એથી ઉલ્ટું માણસ જો તીખો—તમતમતો ખોરાક લેશે તો તેની પ્રકૃતિ પર અસર થાય છે અને એ કારણે થતી તામસી પ્રકૃતિનાં પરિણામો પણ અનર્થકારી આવે છે.

ખોરાકની જેમ પોશાક પણ મનુષ્યનાં જીવનમાં અગ-ત્યનો ભાગ ભજવે છે. આપણાં દેશની આબોહવા અને સંસ્કાર — સંસ્કૃતિ પ્રમાણે આહાર અને વસ્ત્રનું અમુક પદ્ધતિએ નિર્માણ કરવામાં આવ્યું છે. પરંતુ આજનાયુગનાં ફેશન અને સુધારાને કારણે માનવી ભૂલાવામાં પડયો છે અને તેના પરિણામે માનસિક વિકૃતિ કે વિકારી આચાર—વિચારનું પ્રમાણ વધતું ચાલ્યું છે.

આમ ખોરાક અને ખોરાકની જેમ મનુષ્યના મન પર સારી—માઠી અસર થાય છે તેમ ઉપવાસથી મન પવિત્ર બને છે — આત્મા શુદ્ધ થાય છે. ચિત્ત નિર્વિકારી બને છે.

એટલે કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે તન—મનની શુદ્ધતા—પવિત્રતા ખાતર માણસે શુદ્ધ—સાત્ત્વિક ખોરાક અને સાદા વસ્ત્રોનો જ આગ્રહ રાખવો જોઈએ.

અંતમાં કહેવાનું એટલું જ કે માણસે હંમેશા જીવનમાં ઊંચું ધ્યેય ગખવું જોઈએ. માનવ સેવાની ઉદાત્ત ભાવના કેળવવી જોઈએ અન્યની સેવાથી મહાન ધર્મ બીજો કોઈ નથી.

એટલે જ ગીતામાં કહ્યું છે કે, કર્મણ્યેવાધિકારસ્તુ મા ફલેષુ કદાચન્ '

માનસમાં શ્રદ્ધા અને વિશ્વાસનું સ્વરૂપ

[શ્રી રામ સાધ્ય અને શિવ સાધન છે. એ માનસનો સિદ્ધાંત શ્રી યોગીજી આ લેખમાં વિસ્તારથી સમજાવે છે. જે વ્યકિતના હૃદયમાં રામભકિત સ્થિર થઈ છે તેને સ્વપ્નમાં પણ દુઃખ ન હોઈ શકે. માનવીની જરૂરીયાત જ એ છે. માનવજીવનનું લક્ષ્ય પણ એ જ છે. તે માટે શિવ પાર્વતી ભકિત અથવા જ્ઞાન રૂપી સાધન છે; જેના વડે દુઃખની નિવૃત્તિ થાય છે. ભકિતનિષ્ઠા કેવી રીતે પ્રગાઢ થઈ શકે, સાધકનો ક્રમિક વિકાસ કેવી રીતે થાય છે? અને શ્રદ્ધા અને વિશ્વાસથી સાધકના ત્રિવિધ દુઃખો કેવી રીતે દૂર થાય છે તેની વિગતવાર ચર્ચા આ લેખમાં કરવામાં આવી છે.]

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वास रूपिणौ ।
याम्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम् ।।

રામચરિત માનસના પ્રારંભમાં જ ગોસ્વામી તુલસીદાસજીએ શિવ અને પાર્વતીને વન્દન કર્યાં છે, અને તેમની કૃપા વગર હૃદયસ્થ ઈશ્વરનો સાક્ષાત્કાર અસંભવ છે, એવું દ્રઢતાથી કહ્યું છે. રામાયણમાં રામને હૃદયસ્થ ઈશ્વર કહેવામાં આવ્યા છે.

'અંતરયામી રામ' તથા 'સબકે ઉર અંતર બસહુ' વગેરે. આવી રીતે શિવ—પાર્વતીની કૃપાથી રામનાં દર્શન થાય છે એ વાત સાબિત થઈ, એટલે કે રામ સાધ્ય અને શિવ સાધન છે. એ માનસનો સિદ્ધાંત છે એ જ તથ્યને નીચેના શબ્દોમાં પણ વર્ણવ્યું છે:

सिवसेवा कर फल सुत सोई ।
अविरल भगति राम-पद होई ।।
जा पर कृपा न करहि पुरारी ।
सो न पाव मुनि भगति हमारी ।।

તેથી શિવકૃપાથી રામભકિત મળે છે અને રામભકિતની રૂપરેખા નીચેના શબ્દોમાં સ્પષ્ટ કરાઈ છે:—

राम भगति मनि उरबस जाके ।
बुखलवलेस न सपनेहुताके ।।

એટલે કે જેના હૃદયમાં રામભકિતરૂપી મણિ રહે છે તેને સ્વપ્નમાં પણ લેશ માત્ર દુઃખ થતું નથી. આ દુખ લવ લેશ — વિહોણી અવસ્થાની માગણી દરેક પ્રાણીની માગણી છે, જીવનનું લક્ષ્ય છે અને આ માગણીની પૂર્તિ શિવ—પાર્વતીની કૃપાથી જ સંભવ છે. જો રામ દુઃખ-લવ લેશ — વિહીન — અવસ્થા છે તો શિવ પાર્વતી ભકિત અને જ્ઞાનરૂપી સાધન છે. જેમની મારફત દુઃખ નિવૃત્તિ થાય છે.

ग्यानहि भगति हि नहि कछु भेदा ।
उभय हरहिं भव-संभव खेदा ।।

(એટલે જ્ઞાન અને ભકિતમાં કાંઈ ભેદ નથી. બંને સંસારમાં પેદા થતાં દુઃખોને હરે છે.)

આવી રીતે સાધન તત્ત્વ બે ભાગોમાં વહેંચાયેલું છે: એક વિચારપ્રધાન અને બીજું ભાવનાપ્રધાન. અથવા એમ કહો કે સાધનાના બે માર્ગ છે. એક છે જ્ઞાન કે વિશ્લેષણનો માર્ગ, જેને શ્રદ્ધા અથવા સત્યની શોધનો માર્ગ પણ કહે છે અને બીજો છે ભકિત અથવા સરળ વિશ્વાસનો માર્ગ.

भवानी शंकरौवन्दे श्रद्धाविश्वास रूपिणौ ।
याम्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरन् ।

આ શ્લોકમાંના 'યાભ્યાં' શબ્દથી સ્પષ્ટ છે કે ભગવાનના સાક્ષાત્કાર માટે છેવટે બંને જરૂરી છે એટલે જાણનાર માની જાય છે અને માનનાર જાણી જાય છે એ જ અર્ધનારીશ્વરરૂપનું રહસ્ય છે.

આવી રીતે આપણે જોઈએ છીએ કે રામચરિતમાનસ માં પાર્વતીજીને વિચારપ્રધાન અને શિવજીને ભાવનાપ્રધાન સાધકના રૂપમાં ચિત્રિત કરવામાં આવ્યા છે.

વિચારપ્રધાન સાધના માટે સૌથી પહેલાં એ જરૂરી છે કે સાધકને પોતાની વર્તમાન વિચારધારામાં અવિશ્વાસ કે સંદેહ પેદા થઈ જાય, કારણ કે પોતાની વર્તમાન વિચારધારામાં અસંતોષ, અવિશ્વાસ કે સંદેહ પેદા થયા સિવાય

શોધ કે વિશ્લેષણની પ્રવૃત્તિ જાગૃત ન થાય. 'માનસ'ની પાર્વતીના ચરિત્ર પર ધ્યાન આપતાં જ જણાય છે કે પહેલાં તેમનો વિચાર હતો કે:—

ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज, अकल अनीह अभेद ।
सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत वेद ।।

પણ જ્યારે તેમણે શિવજીના મુખે

'जय सच्चिदानन्द जग पावन'— —સાંભળ્યું, ત્યારે સતીને પોતાની વર્તમાન માહિતી વિષે સંદેહ પેદા થયો, તેમની સામે એક સમસ્યા આવીને ઊભી. એક તરફ જ્યાં તેમનો વિચાર હતો કે ચરાચરમાં વ્યાપ્ત સત્તાનો એક રૂપમાં અવતાર ન થઈ શકે, ત્યા જ બીજી બાજુ તેમણે પોતાની આંખોએ પ્રત્યક્ષ જોયું કે શિવજીએ શ્રી રામને, જે અજ્ઞાની-ઓની જેમ સીતાના વિયોગમાં વ્યાકુળ થઈ રહ્યા હતા, પ્રણામ કર્યા, અને તેમને જોઈને આનંદમગ્ન થઈ ગયા. આ સમસ્યાએ જ સતીની વર્તમાન વિચારધારામાં સન્દેહ પેદા કર્યો, જેથી તેમની અંદર શ્રદ્ધા અથવા શોધની પ્રવૃત્તિ જાગૃત થઈ અને સત્યની આ આંતરિક મૂંઝવણનો બોધ થયો, ત્યારે તેમણે સતીને અનેક રીતે સમજાવવાનો પ્રયત્ન કર્યો કે તે શ્રી રામને ભગવાન માની લે, જેવું કે 'માનસ' ના નીચેના છંદ પરથી જણાય છે:—

मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत बिकल मन जेहि ध्यावहीं ।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहिं ।।
सोइ राम व्यापक ब्रह्म भुवननिकायपति माया धनी ।
अवतरेउ अपने भगत हित निज तंत्र नित रघुकुलमनी ।।

પણ

'लाग न पर उपदेस जदपि कहेउ सिव बार बहु ।'

એમ થવું સ્વાભાવિક જ હતું, કારણ કે સતીની વિચાર-ધારા શિવની વિચારધારાથી તદ્દન જુદી છે. જ્યાં શિવજી ભકિત અથવા સરળ વિશ્વાસથી એટલે કે કોઈને હૃદયથી માની તેનાં દર્શનની ઈચ્છા કરે છે, ત્યાં સતી પોતાની બુદ્ધિથી પૂર્ણ માહિતી મેળવ્યા પછી જ તેને માનવા તૈયાર થાય છે. જ્યારે શિવ અને સતીના વિચાર અથવા માર્ગમાં આટલું મૌલિક અંતર છે તો સતી શિવજીની વાતોને સમજ્યા જાણ્યા વગર કેવી રીતે માનવા તૈયાર થાય? તેથી તેઓ શિવજીની આજ્ઞા મેળવી તે વાતોની સચ્ચાઈની પરીક્ષા કરવા નીકળ્યાં.

पुनि पुनि हृदय विचारि करि
धरि सीताकर रूप ।
आगे चलि होई पंथ तेहि
जेहि आवत नर भूप ।।

સતીનું અનુમાન હતું કે શ્રી રામ જો કોઈ રાજકુમાર હશે તો તેઓ તેમનું કૃત્રિમ રૂપ જોઈ તેમને (સતીને) સીતા જ માનશે, પણ જો તેઓ ભગવાન હશે, જેમ શિવજીએ કહ્યું છે, તો તેઓ (ભગવાન રામ) સમજી જશે કે પરીક્ષા લેવા માટે જ સીતાના વેશમાં સતી બેઠાં છે. પણ ભગવાન રામચંદ્રે તેમને હાથ જોડી પ્રણામ કરીને એ તો સાબિત કરી આપ્યું કે તેમણે સતીને ઓળખી લીધાં છે, પણ પછી તેમણે તેમને (સતીને) પૂછ્યું કે શિવજી કયાં છે અને તેઓ વનમાં એકલાં કેમ ફરી રહ્યાં છે? આ ઉત્તરમાં એક તરફ સર્વજ્ઞતા અને બીજી બાજુ અલ્પજ્ઞતાની ઝાંખી થાય છે. એનાથી સતીને પોતાના ઈન્દ્રિયજન્ય તેમને પોતાના બુદ્ધિજન્ય જ્ઞાનની અસફળતા જણાઈ ગઈ. ઈન્દ્રિય જન્ય જ્ઞાનને લીધે જ સતીને શ્રી રામ રાજકુમાર દેખાતા હતા અને તેઓ પોતાના બુદ્ધિજન્ય જ્ઞાનવડે સીતાનો વેશ લઈ આ વાતની પરીક્ષા કરવા નીકળ્યાં હતાં કે શ્રીરામ ભગવાનના અવતાર છે કે એક સાધારણ માનવી. પણ આ કાર્યમાં પણ તેમની બુદ્ધિએ ગોથું ખાધું અને એવી રીતે તેમના બુદ્ધિજન્ય જ્ઞાનની અસફળતા જ પુરવાર થઈ. તેથી સતીએ પરિણામ પર આવ્યાં કે તેઓ શ્રીરામને પોતાના ઈન્દ્રિયજન્ય જ્ઞાનવડે (Perceptual Knowledge) કે પોતાના બુદ્ધિજન્ય જ્ઞાન (Intellectual Knowledge) વડે ઓળખી શકતાં નથી.

જ્યારે સાધક એવી મન: સ્થિતિએ પહોંચી જાય છે, એટલે 'દુ:ખી' હોય છે ત્યારે પ્રભુ તેને પોતાની ઝાંખી કરાવી જાય છે.

जाना राम सती दुख पावा ।
निज प्रभाव कछु प्रगट जनावा ।।

અને સતીને એક અદ્દભૂત અનુભૂતિ થઈ:—

जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना ।
सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रवीना ।।

(જ્યાં જુએ ત્યાં પ્રભુ બેઠા દેખાય છે. અને સિદ્ધો અને અને મુનિઓ અને બુદ્ધિમાનો તેમની સેવા કરી રહ્યા છે.)

આ દર્શનના પરિણામે—

'हृदय कंप न तन सुधि कछु नाही', (હૃદયમાં ધ્રુજારી થઈ અને શરીરનું ભાન ન રહ્યું)ની સ્થિતિ આવી ગઈ અને તેઓ આંખો બંધ કરીને રસ્તામાં જ બેસી પડયાં પછી આંખો ખોલી તો તેમને કાંઈ પણ દેખાયું નહિ.

સતી--ચરિત્ર ઘણા વિસ્તારથી વર્ણવવામાં આવ્યું છે, પણ સંક્ષેપમાં આ અનુભૂતિનાં બે પરિણામ આવ્યાં. (૧) આ શોધના માર્ગમાં (Trial & error) માં ખામીઓ પણ હોય છે જેમાં સાધક ને દુઃખ ભોગવવું પડે છે-

'सती कीन्ह सीताकर वेषा'

શિવજીના ઈષ્ટદેવની સ્ત્રીનું રૂપ ધારણ કરવું જો કે પરીક્ષા માટે જ હતું, છતાં પણ એ શિવજી (ભકિતમાર્ગ) ની દૃષ્ટિએ એવી ખામી હતી જેને લીધે તેમને તેના પરિત્યાગનું કષ્ટ સહેવું પડ્યું.

हृदय सोचु समझत निज करनी ।
चिन्ता अमित जाइ नहि बरनी ॥

તેથી શિવજીએ

'एहि तन सतिहि भेंट मोंहि नाहीं।'

(આ શરીરે મારાથી સતીને ભેટ નહિ થાય)નો મહાન સંકલ્પ કર્યો.

(૨) સતીએ માન્યું કે દક્ષની પુત્રી હોવાથી તેઓ સત્ય ની અનુભૂતિ કરવામાં અસમર્થ રહ્યાં છે, કારણ કે દક્ષત્વ શિવત્વનો તિરસ્કાર છે. બુદ્ધિવડે કોઈ તત્ત્વને જાણવામાં જ્ઞાતા (જાણનાર) અને જ્ઞેય (જે ચીજ જાણી જાય) નો સંબંધ (Subject object relation) કાયમ રહે છે. તેથી બુદ્ધિ વડે અદ્વૈત સત્તાની અનુભૂતિ શકય નથી. આ નિશ્ચય પ્રમાણે તેમણે શરીરનો ત્યાગ કરી દીધો.

पिता मंदमति निदत तेही । दच्छ सुक्र संभव यह देही ।
तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू । उर धरि चन्द्रमौलि वृषकेतू ॥

(મંદબુદ્ધિ પિતા તેની નિંદા કરે છે અને આ શરીર દક્ષના શુક્રમાંથી જન્મ્યું છે. તો હું હૃદયમાં શંકરને રાખીને આ શરીર તજી દઉં)

છેવટે સતીએ દક્ષકન્યાનું શરીર છોડી દીધું અને તેઓ પાર્વતી એટલે હિમાલયની કન્યા તરીકે પેદા થયાં. હવે તેમણે જ્ઞાનના ત્રીજા માર્ગનું અનુસરણ કર્યું. જે ઈન્દ્રિયો અને બુદ્ધિને રોકીને જાણવાનો માર્ગ છે. આ માર્ગ અપરોક્ષ અનુભૂતિનો માર્ગ (Intuition) કહેવાય છે. એ જ તપનો માર્ગ છે અને એના ત્રણ ક્રિયાત્મક અંગો છે:—

૧. મગજને અટકાવવું.
૨. ઈન્દ્રિયોને કાબુમાં રાખવા અને
૩. ભોજન ભોજનને અટકાવવું.

उरधरि उमा प्रानपति चरना ।
जाइ बिपिन लागी तप करना ॥
अति सुकुमारि न तन तप जोगू ।
पति-पद सुमिरि तजेउ सब भोगू ॥
नित नव चरन उपज अनुरागा ।
बिसरी देह तपहि मन लागा ॥
संवत् सहस मूल फल खाये ।
साग खाइ सत बरष गँवाये ॥
कछु दिन भोजन बारि बतासा ।
किये कठिन कछु दिन उपवासा ॥
बेल पान महि परइ सुखाई ।
तीन सहस संवत् सोइ खाईं ॥

અને અંતમાં સાધનના આ માર્ગે એટલે જ્ઞાન, વિચાર અથવા શ્રદ્ધાને માર્ગે ચાલવાથી પાર્વતીને પોતાના લક્ષ્યની પ્રાપ્તિ થઈ:—

भयउ मनोरथ सफल तब, सुनु गिरि राज किशोरि ।
परिहरु दुसह कलेस सब, अब मिलिहहिं त्रिपुरारि ॥

ગીતામાં પણ જ્ઞાન પ્રાપ્તિનો એ જ ઉપાય બતાવ્યો છે:—

श्रद्धावाँल्लमते ज्ञानंतत्परः संयतेन्द्रियः ।

એટલે શ્રદ્ધાવાન તત્પરતા અને ઈન્દ્રિય સંયમ (તપસ્યા) વડે જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ કરે છે. શ્રી રામચરિત માનસ શ્રદ્ધા પહેલાં સમસ્યા એટલે પોતાની વર્તમાન વિચારધારામાં સંદેહ અથવા અવિશ્વાસ પેદા થવો, શ્રદ્ધાની જાગૃતિ માટે અનિવાર્ય માને છે. આવી રીતે 'માનસ' જ્ઞાન અથવા શ્રદ્ધાના માર્ગ વડે જીવનના લક્ષ્યની પ્રાપ્તિ માટે નીચે જણાવેલા ચાર પગથિયાં પાર કરવાનું પરમ આવશ્યક માને છે:—

૧. સમસ્યા, ૨. શ્રદ્ધા, ૩. તત્પરતા અને ૪. તપસ્યા.

૧. સમસ્યા એટલે સાધકને પોતાની વર્તમાન વિચારધારામાં સંદેહ અથવા અવિશ્વાસની ઉત્પત્તિ.

૨. શ્રદ્ધા, જેના વડે સાધકના મનમાં સત્યની શોધની પ્રવૃત્તિ અથવા પ્રબળ ઈચ્છા પેદા થાય છે.

૩. તત્પરતા, જેમાં સાધક પોતાની વર્તમાન પરિસ્થતિ ને બદલવા માટે શોધેલા માર્ગ પર પોતાના લક્ષ્યની પ્રાપ્તિ સુધી સતત ચાલ્યા જ કરે છે.

૪. તપસ્યાનો અમારો અર્થ છે આવેલી મુશ્કેલીઓને સહર્ષ સ્વીકારવી.

શ્રી રામચરિતમાનસનો પાર્વતીજીના ચરિત્ર--ચિત્રણમાં આ જ ચાર પગથિયાંનો સમાવેશ છે, જેમને લીધે તેઓ પોતાના લક્ષ્યની પ્રાપ્તિમાં સફળ થયાં.

મહાત્મા તુલસીદાસના 'માનસ'માં એક તરફ જ્યાં માતા પાર્વતીના ચરિત્ર મારફત 'જ્ઞાન' કે "શ્રદ્ધા"નો માર્ગ બતાવ્યો છે, ત્યાં બીજી બાજુ શિવજીના ચરિત્રને "ભક્તિ" એટલે વિશ્વાસના માર્ગના પ્રતીકરૂપે ચિત્રિત કર્યું છે. એ તો પોતાના સરળ સ્વભાવને લીધે અદ્રશ્યમાં પ્રત્યક્ષવત વિશ્વાસ કરીને, હૃદયથી માનીને ચાલવાનો માર્ગ છે. "ભક્તિ"ના માર્ગમાં સાધક પોતાના વતી જરા પણ પ્રયાસ નથી કરતો એ તો શ્રમ રહિત શરણાગતિનો માર્ગ છે:—

सेवक सुमिरत नाम सप्रीति ।
बिनु श्रम प्रबल मोहदल जीति ।।

શક્તિની સાધના શ્રવણથી શરૂ થાય છે, જે 'માનસ'ના નીચેના પ્રસંગથી સ્પષ્ટ છે:—

रामकथा मुनि बखानी बखानी ।
सुनी महेश परम सुखानी ।।

આ પ્રસંગે આનો ઉલ્લેખ કરવો જોઈએ કે વાલ્મીકિના આશ્રમે જ્યારે ભગવાન રામ પધાર્યા અને મુનિરાજે તેમને ચૌદ સ્થાનો ગણાવ્યાં, જ્યાં તેઓ સીતા તથા લક્ષ્મણ સાથે નિવાસ કરે, ત્યાં પણ પહેલાં શ્રવણ અને પછી દર્શનની ઈચ્છાનો ક્રમ મળે છે:—

जिनके श्रवणसमुद्र समाना ।
कथा तुम्हारी सुमन सरि नाना ।।
भरहि निरंतर होहिं न पूरे ।
तिन्ह के हिय तुम कहँ गृह सूरे ।।

ત્યાર બાદ દર્શનની ઈચ્છા:—

लोचन चातक जिन्ह करि राखे ।
रहहिं दरस जलधर अभिलाषे ।।

આ પ્રમાણે આપણે જોઈએ છીએ કે ભક્તિના માર્ગમાં શ્રવણ પછી દર્શનનો માર્ગ આવે છે. ભક્ત જ્યારે ભગવાનનો ગુણાનુવાદ સાંભળે છે, ત્યારે હૃદયમાં તેના દર્શનની પ્રબળ ઈચ્છા સ્વયં જાગૃત થાય છે, અને એ સ્વાભાવિક છે. કુંભ જ ઋષિના આશ્રમમાં ભગવાન રામનાં ગુણગાન સાંભળ્યા પછી શિવજીના મનમાં તેમને (શ્રીરામને) જોવાની ઉત્કટ ઈચ્છા થઈ આ તથ્યને 'માનસ'ની નીચેની લીટીઓ સુંદર રીતે સાબિત કરે છે:—

हृदय विचारत जात हर, केहि विधि दरसन होइ ।।

ભક્તને કોઈ યોગ્યતા પ્રયાસ અથવા સાધનની જરૂર નથી હોતી. એ માટે તો તીવ્ર અભીપ્સા જ પૂરતી છે અને 'રામ સદા સેવક રુચિ રાખી' પ્રમાણે શિવજીને શ્રી રામનાં દર્શન થયાં અને તેઓ આનંદમગ્ન બની ગયા.

संभु समय तेहि रामहि देखा ।
उपजा हिय अति हरषु विसेषा ।।

પણ ભક્તના જીવનમાં આ આનંદ સ્થાયી રૂપે ત્યાં સુધી નિવાસ નથી કરતો જ્યાં સુધી તેનું અંત:કરણ પરાસક્તિ અને પરાશ્રયથી તદ્દન મુક્ત ન થઈ જાય. શિવજી પોતાની અર્ધાંગિની સતીને પોતાની ગણતા હતા અને તેના પર ઘણો પ્રેમ હતો. આ સંસારમાં જ્યાં સુધી કોઈ વ્યક્તિ અથવા વસ્તુનો, પોતાની સમજીને, પ્રેમ અથવા આધાર રહે છે ત્યાં સુધી આનંદની સતત ધારા પ્રવાહિત થઈ શકતી નથી. તેથી શિવજીના વિકાસ માટે એ પરમ આવશ્યક હતું કે સતી પ્રત્યે તેમની મમત્વની ભાવના દૂર થાય અને એટલા માટે ભગવાન સતીના મગજમાં સીતાનો વેષ ધારણ કરી પરીક્ષા લેવાની વાત જે પેદા કરી તેથી એક તરફ જ્યાં જ્ઞાન માર્ગને અનુસરનાર સતી પોતાના કલ્યાણ માટે ઈન્દ્રિય-જન્ય જ્ઞાન પછી બુદ્ધિ જન્ય જ્ઞાન અને બુદ્ધિજન્ય જ્ઞાન પછી આત્મજ્ઞાનનાં ક્રમિક પગથિયાં ચઢયાં, ત્યાં જ બીજી બાજુ સતી મારફત તેમના (શિવજીના) આરાધ્ય દેવની અર્ધાંગિની સીતાનો વેષ ધારણ કરવાને લીધે શિવજીએ તેમને (સતી) હવે પોતાની સ્ત્રીના રૂપમાં પ્રેમ કરવો એ ભક્તિ નિષ્ઠાના દષ્ટિકોણથી પાપ માન્યું:—

सती कीन्ह सीताकर वेषा ।
सिय उर मयेउ विषाद विशेषा ।।
जो अब करऊँ सतीसन प्रीती ।।
मिटइ भगति पथ होइ अनीती ।।

પણ

परम प्रेम नहि जाइ तजि, किये प्रेम बड़ पाप ।।

શિવજીના જે હૃદયમાં શ્રીરામને જોઈને આનંદની ધારા વહી રહી હતી, તેમાં જ હવે વધારે 'સંતાપ' આવી ગયો, એનું કારણ એ જ મમત્વ હતું, જેને મટાડવા માટે ભગવાને આ પરિસ્થિતિ પેદા કરી મૂકી એવી સમસ્યા ઊભી થતાં થતાં ભક્તને ભગવાનને શરણ ગયા સિવાય બીજો રસ્તો રહેતો નથી. અને આપણે જોઈએ છીએ કે શિવજીએ પણ ફક્ત શ્રી રામનું ધ્યાન કર્યું, જેથી તેમની અંદર સતી--ત્યાગનો આદેશ અને તેને માટે પૂરતું મનોબળ મળ્યું, જેનીચેની ચોપાઈ ઉપર થી સ્પષ્ટ છે:—

तब संकर प्रभुपद सिर नावा ।
सुमिरत राम हृदय अस आवा ।।
एहि तद सतिहिं भेंट मोहिं नाहीं ।
शिव संकल्प कीन्ह मन माहीं ।।

ઉપર કહેવામાં આવ્યું છે કે ભક્તિ માર્ગના સાધકને પોતાના વતી કોઈ પ્રયાસ કે પરિશ્રમ કરવો પડતો નથી. આ માર્ગમાં તો ભગવાનનું સ્મરણ કે ધ્યાન જ પૂરતું છે. તેથી શિવજીએ પોતાની સમસ્યાનો ઉકેલ પ્રાપ્ત કરવા માટે ભગવાનનું ચિંતન--સ્મરણ કર્યું. જેમાં તેમને આદેશ થયો કે તેઓ તે શરીરથી સતીનો ત્યાગનો સંકલ્પ કરે અને ત્યાગની પૂરી શક્તિ પણ તેમને મળી. પ્રકરણ લાંબું છે. પણ ટૂંકમાં સતીએ પોતાના પિતાના યજ્ઞમાં પોતાના શરીરનો ત્યાગ કર્યો ત્યારે શિવજીના મનમાં વૈરાગ્ય પેદા થયું:—

जब ते सती जाइ तनु त्यागा ।
तब ते शिव मन भयउ विरागा ।।

વૈરાગ્ય પેદા થતાં જ ભક્ત સતત નામ--જપ અને સત્સંગનો આસરો લે છે, જે ભક્તિ માર્ગમાં અનિવાર્ય છે:—

जपहिं सदा रघुनायक नामा ।
जहँ तहँ सुनहिं राम गुन गाना ।

એનાથી હૃદયમાં આનંદ અને બુદ્ધિમાં જ્ઞાનનો સંચાર થાય છે, અને મોહનો સદંતર નાશ થઈ જાય છે.

चिदानन्द सुख धाम शिव,
विगत मोहमद काम ।।

એના પછી ભક્ત એ મેળવેલા જ્ઞાન અને આનંદને જિજ્ઞાસુઓ અને ભક્તોને તેમની જરૂર પ્રમાણે વહેંચવા માટે ભ્રમણ કરે છે.

विचरहि महि प्रभु हृदय धरि,
सबल लोक अभिराम ।

આ વિવરણમાં અધિકાર ભેદના આધારે વિચાર અથવા જ્ઞાન માર્ગાવલંબીઓને જ્ઞાનનો ઉપદેશ અને ભક્તિ અથવા વિશ્વાસ--માર્ગવાળા સાધકોને ભગવાનનો ગુણાનુવાદ સંભળાવવામાં આવે છે:—

कतहुँ मुनिन्ह उपदेशहिं ग्याना ।
कतहुँ रामगुन करहिं बखाना ।।

એનાથી વખત જતાં ભક્તિ--નિષ્ઠા ગાઢ બને છે અને શ્રીરામનું સમ્યક્ દર્શન થાય છે, જે નીચેની લીટીઓથી પુરવાર થાય છે:—

नेम प्रेम संकर कर देखा ।
अविचल हृदय भगति कै रेखा ।
प्रगटे राम कृतग्ध कृपाला ।
रूप सीलनिधि तेज बिसाला ।।

આ દર્શન પછી ભક્તિમાર્ગાવલંબીઓના હૃદયમાં કોઈ જાતની કામના નથી રહેતી. આ સ્થિતિ પામ્યા પછી ભક્ત ભગવાનનું નિમિત્ત બની જાય છે, અને તેની (ઈશ્વરની) આજ્ઞાથી જ બધાં કાર્યો કરવા લાગે છે. એની સાબિતી 'માનસ'ના પેલા પ્રકરણમાંથી મળે છે, જ્યાં શ્રીરામે શિવજી સમક્ષ પાર્વતીને પરણવાનો પ્રસ્તાવ મૂક્યો છે:—

' अब विनती मम सुनहु सिव,
जो मो पर निज नेहु ।
आइ विवाहउ सैलजिहिं
यहि मोहि मागे देहु ।।"

જેને શિવજીએ આ કહીને સ્વીકારી લીધું કે એવું કરવું યોગ્ય તો નથી પણ આપની આજ્ઞા ઉથાપી ન શકાય—

कह सिव जदपि उचित अस नाहीं ।
नाथ वचन पुनि मेटि न जाहीं ।।

આ પ્રમાણે આપણે જોઈએ છીએ કે જ્યાં વિચાર, શ્રદ્ધા અથવા જ્ઞાનના માર્ગમાં ઈન્દ્રિયજન્ય જ્ઞાન અને આત્મજ્ઞાન વડે સાધક ને સત્યનો અનુભવ થાય છે. ત્યાં ભક્તિ અથવા વિશ્વાસના માર્ગમાં સાધકના ક્રમિક વિકાસનાં પગથિયાં નીચે મુજબ છે:—

૧. ભગવાનના ગુણાનુવાદનું શ્રાવણ,
૨. તેમનાં દર્શનની લાલસા,
૩. ભગવાનની ઝાંખી થવી,
૪. ભગવાન વડે ઉપસ્થિત પરિસ્થિતિઓ મારફત દોષોની નિવૃત્તિ,
૫. સતત નામ--જપ અને સત્સંગ,
૬. ચિદાનન્દની પ્રાપ્તિ અને જિજ્ઞાસુઓ અને ભક્તો વચ્ચે અધિકાર ભેદ પ્રમાણે તેની યોગ્ય વહેંચણી. જેથી—
૭. ભગવાનનું સમ્યક દર્શન પ્રાપ્ત થાય છે અને પછી ભક્ત ભગવાનનું નિમિત્ત બની જાય છે.

'જ્ઞાન' અને 'ભક્તિ' એટલે શ્રદ્ધા અને વિશ્વાસ બંને મારફત સાધકનાં, આ સંસારનાં બધાં દુ:ખોની નિવૃત્તિ થાય છે, છતાં પણ ભગવાનને ભક્તો એટલા માટે વધારે વહાલા હોય છે કે તેઓ ભગવાનનું જ નિમિત્ત બનીને તેની લીલામાં સહયોગ આપે છે. અને જ્ઞાનીઓ સંસારને અનિત્ય અને દુ:ખદ 'अनित्यं असुखं लोकम्' સમજીને મોક્ષ મેળવી લે છે

तिन महँ प्रिय विरक्त मुनि ग्यानी ।
ज्ञानिहु ते अति प्रिय विज्ञानी ।।
तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा ।
जेहि गति मोहि न दूसरि आसा ।।

ઉપવાસનું દર્શન અને તંત્ર

— શ્રી કુબેરપ્રસાદ ગુપ્ત

[ઉપવાસનો ગૌણ ઉદ્દેશ શારીરિક અને પ્રધાન ઉદ્દેશ આધ્યાત્મિક છે. પરંતુ આજના યુગમાં રાજનીતિક શસ્ત્ર તરીકે પણ તેનો ઉપયોગ થાય છે. રાજનીતિક ઉપવાસ સાથે આપણને સંબંધ નથી. ભોજન જીવની શકિત ઉત્પન્ન કરતું નથી. શરીરનું બંધારણ કરે છે એટલું જ ઉપવાસ કરવાની વિધિ, જીવની શકિતનું કાર્ય મલનિષ્કાસનનું તંત્ર ભોજનની માત્રા, અને પ્રકાર--અને ઉપવાસનું તંત્ર શ્રી યોગીજી આ લેખમાં સમજાવે છે.]

ખોરાક ન લેવો એવો સામાન્ય રીતે ઉપવાસ (અપવાસ) નો અર્થ સમજવામાં આવે છે અને એનો હેતુ પાચનના અવયવોને આરામ આપવાનો હોય છે. જો કે ઉપવાસ ગૌણ રૂપે શારીરિક અને મુખ્યરૂપે આધ્યાત્મિક ઉદ્દૃશ્યથી પ્રેરાયેલો હોય છે, છતાં હાલના જમાનામાં એનો રાજદ્વારી હથિયાર તરીકે પણ ઉપયોગ કરવામાં આવે છે.

ઉપવાસ (અપવાસ) બે શબ્દોનું યૌગિક રૂપ છે: ઉપ અને વાસ. ઉપ એટલે પાસે અને વાસ એટલે બેસવું કે વાસ કરવો. ઉપવાસનો ઉદ્દૃશ્ય તે ભગવાન પાસે બેસવાનો છે, જે શકિત, જ્ઞાન અને આનંદનો અખૂટ ભંડાર છે અને આપણે જો ઉપવાસ ખરી રીતે જાણીને એને સ્વીકારીએ, તો જેવી રીતે આગ પાસે બેસવાથી આપણે તેના ઉષ્ણતાગુણનો અનુભવ કરીએ છીએ, તેવી જ રીતે ભગવાનની પાસે બેસવાથી આપણને શકિત, જ્ઞાન અને આનંદ મળી શકશે. પણ ઉપવાસથી ફકત ખોરાકનો ત્યાગ અને પાચન તંત્ર ને આરામ આપવાનો જ અર્થ લેવામાં આવે છે, તેથી અમે અહીં ભોજન — ત્યાગના દર્શન તેમ જ તંત્ર (પ્રવિધિ) વિષે જ વિચાર કરીશું. માનસ સાધના મંડળની પંચ સૂત્રી સાધનાનો આ બીજો અવયવ છે અને એમાં યોગ્ય રીતે ઉપવાસ વડે અખંડ શકિત જાગૃત કરવાનું આશ્વાસન આપવામાં આવ્યું છે.

આ લેખમાં જયાં ત્યાં એવાં દાખલા જોવામાં આવશે, જેનાથી એ પુરવાર થાય છે કે ખોરાક જીવનીશકિત પેદા નથી કરતો તે ફકત શરીરનું નિર્માતા — તત્ત્વ છે. આવી રીતે ખોરાક ન લેવાથી શરીરનું વજન (શ્રમને લીધે થનાર ભાંગ — ફોડની પૂર્તિ ન થવાથી) ભલે ઓછું થઈ જાય, પણ જીવની શકિતનો નાશ કદી થતો નથી એ વાત નિર્વિવાદ છે. પણ સામાન્ય લોકોનો એ અનુભવ છે અને મારા મત પ્રમાણે તે ખોટો પણ નથી કે ભોજન ન કરવાથી તેમને નબળાઈ લાગે છે અને જેવા તેઓ ફરીથી ભોજન કરે છે, તેમને મહેનતનાં કામો કરવાની શકિત ફરીથી મળતી લાગે છે. આપણે આ વિરોધાભાસની તપાસ કરીએ.

આ શરીરમાં જીવની શકિત મુખ્ય રીતે ત્રણ જાતનાં કામો કરે છે; પહેલું શરીરમાં ખોરાક ગયા પછી તેનું પાચન કરે છે; બીજું, આપણા દૈનિક જીવન સાથે સંકળાયેલા મહેનતનાં કામ કરે છે, અને ત્રીજું; શરીરમાં ભેગાં થયેલાં વિજાતીય દ્રવ્યો (મલ) નું નિષ્કાસન કરે છે. આ જીવની શકિતની કેટલીક સ્વાભાવિક વિશેષતાઓ પણ છે. તેમાંની એક એ પણ છે કે આ ત્રણે કાર્યોમાં એનો ઉપયોગ રૂપિયા-પૈસાની ખરીદ શકિતની જેમ નથી કરી શકાતો; જેથી જીવની શકિતની માત્રાને ત્રણ ભાગોમાં વહેંચીને એક જ સમયમાં ત્રણે કામ કરી શકાય, બલ્કે એનો ઉપયોગ એક નોકરની જેમ કરી શકાય, જે એક વખતમાં એક જ કામ સારી રીતે કરી શકે છે. દાખલા તરીકે બધાએ કોઈ ન કોઈ વખતે એવો અનુભવ કર્યો હશે કે જયારે આપણે ભોજન કર્યા પછી કામ પર જઈએ છીએ ત્યારે આળસ અનુભવીએ છીએ અને જયારે કોઈ કારણને લીધે ભોજન કર્યા વગર કામ પર જવું પડે છે, ત્યારે કામ પહેલાંના કરતાં વધારે સગવડથી અને સારી રીતે થાય છે આનું કારણ એટલું જ છે કે જયારે આપણે ભોજન કરીએ છીએ ત્યારે જીવની શકિત તેને પચાવવાના કામમાં લગાડવા માગે છે અને આપણે તેને શ્રમના કામમાં લગાડવા માગીએ છીએ. આજ ખેંચ-તાણમાં બંનેમાંથી એકેય કામ સારી રીતે નથી થઈ શકતું અને જયારે ભોજન કર્યા વગર શ્રમનું કામ કરીએ છીએ; ત્યારે જીવની શકિત ફકત શ્રમના જ કામમાં લાગેલી હોય છે અને કામ બહુ સારી રીતે થાય છે.

આ જીવની શકિતની બીજી પણ એક ચરિત્રગત ખાસિયત છે. હાલની પેઢીના માનવીના શરીરમાં ઘણો બધો મળનો સંચય થઈ ગયો છે, એટલા માટે જીવની શકિતને જ્યારે પણ તક મળે છે, પોતાની મેળે જ મળ—નિષ્કાસનના કામમાં લાગી જાય છે. માટે જ જ્યારે આપણે ભોજન કરતા નથી ત્યારે પાચનના કાર્યમાંથી મુકત થઈને જીવની શકિત પોતની મેળે મળ નિષ્કાસન ના કાર્યમાં લાગી જાય છે. આયુર્વેદમાં —

'आहारं पचति शिखी दोषानाहारवर्जित : ।

વડે આજ સિદ્ધાંતનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે. **शिखी** (જઠરાગ્નિના રૂપમાં જીવની શકિત) ખોરાકનું પાચન કરે છે, પણ ખોરાક ન આપવાથી એજ જીવની શકિત મલનિષ્કાસન દોષોને પચાવવાનું કાર્ય કરે છે. હવે, જો શરીરમાં વધારે પડતો મળનો સંગ્રહ થઈ ગયો હોય અને તેને કાઢવાનું પણ ઘણું જ જરૂરી હોય તો જીવની શકિત કુદરતી રીતે જ એમ ઈચ્છશે કે પાચનના કાર્યમાંથી મુકિત મળવાની સાથે સાથે તેને શ્રમનું કાર્ય કરવામાંથી પણ મુકિત મળે, જેથી તે મળ નિષ્કાસનનું જરૂરી કામ પૂર્ણ રીતે કરી શકે. તાવનું આવવું આનો એક સરસ દાખલો છે. જ્યારે જીવનીશકિત ખૂબ શકિતશાળી હોય છે અને મળ નિષ્કાસનનું કામ વધારે સમય સુધી મોકૂફ રાખવું નુકસાનકારક થઈ જાય છે ત્યારે કોઈ પણ જાતના ભોજન પ્રત્યે અરુચિ થઈ જાય છે અને શરીરમાં વધારે ગરમી હોવાને લીધે શ્રમનું કામ કરવું શકય નથી રહેતું. આવી રીતે આ બંને કામોમાં વપરાતી શકિત પણ મળનિષ્કાસનના કાર્યમાં લાગી જાય છે. અને બધાએ અનુભવ્યું હશે કે જ્યારે પરસેવા વાટે અથવા ઉત્સર્ગથી થોડોક મળ બહાર નીકળી જાય છે, તાવ આપોઆપ ઊતરી જાય છે. હવે ઊપરના અનુસંધાનમાં વિચાર કરીએ કે જો આપણે બેએક દિવસમાં ભોજન ન કર્યું અને જીવની શકિત શ્રમના કાર્યમાં લાગવાવાળી શકિતને પણ લઈને મળ નિષ્કાસનના કામમાં મંડી પડી તો પછી આપણને શ્રમના કાર્ય માટે શકિત નહિ મળશે — એને જ આપણે નબળાઈનું નામ આપીએ છીએ. ભોજન ન કરવાથી નબળાઈ લાગવાનું આજ રહસ્ય છે. હવે આ રહસ્ય નો પણ ઉકેલ લાવીએ કે જ્યારે ભોજન ન કરવાથી નબળાઈની પ્રતીતિ થાય છે તો પછી ભોજન કર્યા બાદ તરત શ્રમનું કામ કરવાની શકિત ક્યાંથી આવી જાય છે કારણ કે તે હાલતમાં તો જીવનીશકિતની પાસે મળ નિષ્કાસનનું પહેલું કામ અને ભોજન ને પચાવવાનું બીજું કામ પણ હોય જ.

ઉપર જણાવવામાં આવ્યું છે કે જીવનીશકિતની એક ખાસિયત એ છે કે તે પાચન, શ્રમનું કાર્ય તેમ જ મળનિષ્કાસન આ ત્રણ કાર્યો પૈકી એક વખતમાં એક જ કામ સારી રીતે કરે છે. અને એ પણ કહેવામાં આવ્યું છે કે ખોરાક ન આપવાથી એની બાકી રહેલી શકિત તરત મળ નિષ્કાસનના કાર્યમાં લાગી જાય છે. આપણે એટલા સ્વતંત્ર નથી કે શરીરમાં મળ હોવા છતાં ભોજન ન કર્યાથી પાચન કાર્યમાંથી બાકી રહેલી શકિતને શ્રમના કામમાં લગાડી શકીએ. પણ આપણે આ બાબતમાં સ્વતંત્ર છીએ કે જ્યારે જીવનીશકિત પાચનનું કાર્ય કરી રહી હોય ત્યારે તેને પોતાની ઈચ્છા મુજબ (પાચન કાર્યમાંથી મોકૂફ રાખીને) શ્રમના કામમાં લગાડી શકીએ. જીવની શકિતની આ પણ એક કુદરતી ખાસિયત છે કે જ્યારે તેની સામે પાચનનું કાર્ય હોય છે ત્યારે તે મળ નિષ્કાસનનું કામ કરતી નથી. આ બાબત ઉપવાસના તંત્રનું વિવેચન કરતી વખતે સ્પષ્ટ કરવામાં આવશે. તેથી જ ભોજન ન કરવાથી નબળાઈ લાગ્યા બાદ જ્યારે ભોજન કરવામાં આવે છે, ત્યારે જીવની શકિત મળ—નિષ્કાસનનું કાર્ય પડતું મૂકીને ભોજન પચાવવામાં લાગી જાય છે. અને આપણે જીવની શકિતથી પાચન અથવા શ્રમનું કામ લેવામાં સ્વતંત્ર છીએ, તેથી જ આપણે પાચનનું કાર્ય મોકૂફ રાખીને શ્રમનું કામ કરવા મંડીએ છીએ અને આવા ભ્રમમાં પડી જઈએ છીએ કે ભોજન કરવાથી જ આ શકિત મળી છે. હાલનું વિજ્ઞાન પણ એ વાતનું સમર્થન નથી કરતું કે ભોજન કર્યા પછી તરત જ તેનાથી ઊર્જા (જીવની શકિત) પેદા થઈ શકે છે. આપણે હજારો લાખો લોકોને દરરોજ સવારે ૯ વાગે ભોજન કરીને શ્રમનાં કામ કરતા જોઈએ છીએ તેનું પણ એ જ કારણ છે કે આપણે આપણી ઈચ્છા મુજબ પાચનના કાર્યમાં લાગેલી શકિતને તેના કામમાંથી વાળીને શ્રમના કામમાં લગાડી શકીએ છીએ. હવે સ્પષ્ટ થઈ જાય છે કે ખોરાક ન આપવાથી જીવની શકિત મોટે ભાગે તે શ્રમના કામ માટે ન મેળવી શ્રમશકિતને પણ મળનિષ્કાસનના કામમાં લગાડી દે છે, અને આપણને નબળાઈની પ્રતીતિ થાય છે, પણ જેવું આપણે ભોજન કરી લઈએ છીએ, તે મળ નિષ્કાસનના કામમાંથી અટકી જઈને પાચનનું કાર્ય કરવા લાગે છે અને ત્યારે આપણે આપણી ઈચ્છા મુજબ પાચનનું કાર્ય પણ મોકૂફ રાખીને તેને શ્રમના કાર્ય માટે મેળવી લઈએ છીએ અને એ ભ્રમના શિકાર બની જઈએ છીએ ભોજન ન કરવાથી શકિતહીનતા આવી અને ભોજન કરવાથી શકિત પ્રાપ્ત થઈ.

જો આપ પોતે જ આ રહસ્યનો વ્યાવહારિક અનુભવ કરવા માગતા હો તો આપ ફક્ત બે કે ત્રણ દિવસ મધ, લીંબુનું શરબત અથવા લીલાં શાકભાજીના રસ પર વ્રત કરો અને ભોજનના અભાવમાં જ્યારે નબળાઈ લાગે ત્યારે નવશેકા પાણીનો (તેમાં કાંઈ પણ નાખ્યા વગર) એનીમા લઈ લો. એનીમા લીધા પછી પાંચ સાત મિનિટે મળત્યાગ કરો અને સ્નાન કરી લો. આપ જોશો કે એનીમા પહેલાંની આપની નબળાઈનો ક્યાંય પત્તો નથી અને આપ શક્તિ અને સ્ફૂર્તિથી છલકાઈ ઊઠયા છો. આ રહસ્ય પણ સમજી લેવું જોઈએ. ખોરાક ન આપવાથી જીવની શક્તિએ શ્રમનું કાર્ય કરનાર શક્તિને પણ મળનિષ્કાસનના કામમાં લગાડી દીધી હતી. અને આપને નબળાઈ લાગતી હતી. પણ જ્યારે નવશેકા પાણીનો એનીમા લઈને અને સ્નાન કરીને મળ-નિષ્કાસનના કામમાં મદદ કરી, ત્યારે જીવની શક્તિ તે બાજુથી મુક્ત થઈને શ્રમના કાર્ય માટે મળી રહી. ઊપરના વિસ્તાર-ભર્યા વિવરણમાં આપ દરેક ઠેકાણે જોઈ રહ્યા છો કે જીવની-શક્તિ હમેશ હાજર રહે છે. ભોજનના કરવા ન કરવા સાથે તેને કાંઈ સંબંધ નથી. કસરત કરવાથી પણ તીવ્ર શ્વાસ—પ્રશ્વાસની ક્રિયા તેમ જ પરસેવા માટે વિકાર (મળ) નું નિષ્કાસન થાય છે. તેથી આવી રીતે પણ નબળાઈની પ્રતી-તિનો ભ્રમ દૂર થતો જોવામાં આવ્યો છે. શરીરમાંથી વિજા-તીય દ્રવ્યોને બહાર કાઢીને આપણે તે સ્વાભાવિક ઈચ્છાઓ અને હાનિકારક ટેવોથી પણ મુક્તિ મેળવી શકીએ છીએ, જેમાંથી દૃઢ ઈચ્છાશક્તિ વડે અથવા તેમના દમનમાત્રથી જ હમેશ માટે મુક્તિ મેળવવાનું શક્ય નથી હોતું.

હવે પ્રશ્ન ઊભો થાય છે કે જ્યારે ભોજન ન કરવાથી મળનિષ્કાસનનું કાર્ય ઝડપથી શરૂ થઈ જાય છે અને શ્રમના કાર્ય માટે પણ શક્તિનો અભાવ થઈ જાય છે ત્યારે શું ઉપવાસ ન જ કરવો અથવા કરવો તો શું બધાં શ્રમનાં કામ બંધ કરી દેવાં? સારું તો એ જ છે કે ઉપવાસ દરમ્યાન શ્રમનું કામ ન કરી પૂર્ણ આરામ કરવો, ત્યારે જ ઉપવાસનો પૂરેપૂરો લાભ મેળવી શકાય છે, પણ તેમ જો ન બની શકે તો મળ નિષ્કાસનની એક અપેક્ષાકૃત સરળ તેમ જ સગ-વડભરી પ્રણાલી પણ છે, જેના વડે શરીરને ધીમે ધીમે મળરહિત બનાવી શકાય. આ બંને (આરામની સગવડ હોવી અને ન હોવી) હાલતોમાં ઉપવાસની પ્રવિધિ (તંત્ર) એક જ છે. હવે આપણે એ સ્થાને પહોંચી ગયા છીએ જ્યાં ઉપવાસની પ્રવિધિ (તંત્ર)ની ચર્ચા કરી શકાય. પણ તેનું વિવેચન કર્યા પહેલાં આપણે શરીરમાંથી મળ નીકળી ગયા પછી દરરોજ ભેગો થતો મળ દરરોજ કેમ સારી રીતે બહાર નીકળી જાય, દરરોજ કરેલા ભોજનનું કેમ સારી રીતે પાચન થઈ શકે અને શ્રમના કાર્ય માટે આપણને જેટલી શક્તિની જરૂર હોય, તે મળી શકે એના પર વિચાર કરવો યોગ્ય છે.

શરીરને સ્વસ્થ અને થાકવિહોણી હાલતમાં રાખવા માટે આપણે ભોજન વિષે મુખ્ય રીતે ચાર બાબતો પર ધ્યાન દેવું જરૂરી છે. પહેલી, એ કે સૈદ્ધાંતિક રૂપે આપણે સારી રીતે સમજી લઈએ કે ભોજન શરીર—નિર્માતા તત્ત્વ છે. અને એનાથી જીવની શક્તિ મેળવાતી નથી. બીજી બાબત, ભોજનના સમય વિષે ધ્યાનમાં રાખવાની છે. ઉપર જણાવવામાં આવ્યું છે કે જીવન શક્તિ એક વખતમાં એક જ કામ સારી રીતે કરી શકે છે, તેથી મળનિષ્કાસન, શ્રમના કાર્ય તેમ જ ભોજનના પાચનને માટે સમયનું વિભાજન કરી લેવામાં જ ડહાપણ છે. ઉલટું એ તો કુદરત તરફથી જ વિભાજિત છે. જરૂર છે ફક્ત એમને સમજીને અપનાવી લેવાની. કુદરત તરફથી સવારનો વખત મળ નિષ્કાસન માટે નક્કી કરાયેલો છે, દિવસ શ્રમને લગતા કાર્ય માટે અને ક્ષીર સાગરમાંના શેષશાયી ભગવાન્ વિષ્ણુ એ સંકેત કરે છે કે શરીરને પોષણ આપવા માટે ભોજન પછી વિશ્રામ કરવો જોઈએ, જેને માટે સૌથી સારો સમય સાંજનો જ હોઈ શકે. આપણા પ્રાચીન ઋષિઓએ આ તથ્યને ઘણું મહત્ત્વ આપ્યું છે. તેથી જ એકાદશી, પ્રદોષ વગેરે વ્રતોમાં સાંજે જ પારણું કરવાનું વિધાન છે. મુસલમાન ભાઈઓ પણ સાંજે જ રોજો ખોલે છે અને ખ્રિસ્તી ધર્મના વ્રત—ઉપવાસ (લેન્ટ) કાળમાં સાંજે જ ભોજન કરવાનો નિર્દેશ છે. યાદ રાખવું જોઈએ કે જો આપણે પ્રાતઃકાલ (જેને ૧૨ વાગ્યા સુધી આંકી શકાય) કોઈપણ એવી ચીજ ખાઈએ જેમાં પાચનશક્તિની જરૂર હોય તો જીવની શક્તિ પોતાના સ્વભાવગત લક્ષણને લીધે મળનિષ્કાસનનું કામ પડતું મૂકીને પાચનના કાર્યમાં લાગી જશે. (ભલે આ જાતના પાચનના કાર્યમાં લાગેલી જીવની-શક્તિને આપણે આપણી ઈચ્છા મુજબ શ્રમના કામમાં લગાડી દઈએ, પણ મળ નિષ્કાસનનું કામ તો થશે જ નહિ). અને મળનું સારી રીતે નિષ્કાસન ન થવાથી તે ભેગો થવા લાગશે અને પરિણામે તે પહેલાં થાક અને પછી રોગો પેદા કરશે. તેથી દિવસે આપણે આશરે બાર વાગ્યા સુધી કાંઈ પણ ખાવું ન જોઈએ. વધારામાં વધારે મળ નિષ્કાસનમાં

મદદગાર રાત્રે પલાળેલી મોટી દ્રાક્ષ, મધ, લીંબુનું શરબત કે લીલા શાકભાજીનો રસ લઈ શકાય છે. પરંતુ એ પણ ન લેવાં શ્રેયસ્કર થશે. કારણ કે દિવસે આપણને ઑફિસ કે જીવિકોપાર્જન તેમ જ બીજાં શ્રમનાં કાર્યો કરવાં પડે છે. એટલા માટે દિવસે પણ એવું જ ભોજન કરવું જોઈએ, જે પચવામાં હલકું હોય અને મોડે સુધી આમાશયમાં પડયા રહેવા છતાં સડે નહિ. આ જાતની ચીજો મોસમનાં સ્થાનીય ફળો અને બાફેલાં લીલાં શાકભાજી હોઈ શકે. આ જાતનું ભોજન કરવાથી શ્રમના કાર્યમાં રુકાવટ ઓછી ઉત્પન્ન થશે. દિવસને અંતે, શ્રમનું કામ પતી ગયા પછી સાધારણ અન્નવાળું ભોજન કરવું અને ત્યાર બાદ ઓછામાં ઓછો એક કે અર્ધો કલાક નિશ્ચિત થઈને વિશ્રામ કરવો જોઈએ. દિવસમાં એક વખત અને તે પણ સાંજે જ ભોજન કરવા વિષે ઈતિહાસના એ તથ્ય ને ભુલાવી ન શકાય કે જ્યારે રોમ અને ગ્રીસનાં રાજ્યોએ પોતાની સૈનિકશકિતના આધારે મહત્ત્વપૂર્ણ સ્થાન પ્રાપ્ત કર્યું હતું. આ રાજ્યોના સૈનિકો જે દિવસોમાં સૌથી વધારે શકિતશાળી માનવામાં આવતા હતા, તે દિવસોમાં તેઓ દરરોજ ફકત એક વખત અને તે પણ સાંજે જ ભોજન કરતા હતા, એટલું જ નહિ, રોમના સૈનિકો વિષે કહેવાય છે કે તેમનાં શસ્ત્રાસ્ત્રોનો બોજો એટલો બધો હતો કે આજકાલના સાધારણ સૈનિકો તે લઈને લડી નહિ શકે. જ્યારે તેઓ એજ શસ્ત્રાસ્ત્રોને ધારણ કરીને ઝડપથી દોડી પણ શકતા હતાં.*

હા, ડૉકટર અને ખેડૂત જેવા લોકો, જેમને દિવસે ભોજન પછી વિશ્રામનો સમય મળી શકે છે, ઈચ્છે તો દિવસે જ ૧૨ વાગ્યા પછી અન્નવાળું અને સાંજે અન્નરહિત ભોજન લઈ શકે છે. દૂધ, જો મળી શકે, તો બધાને અંતે પથારીમાં સૂતાં પહેલાં જ પીવું જોઈએ.

The armies of Rome and Greece, when at the height of their efficiency, and when both kingdoms were predominant, on account of their military strength, ate but one meal a day, and that in the evening; and it is reported of the Roman soldier that the combined weight of armour and equipment was so great that the average modern soldier could not carry it and fight, while the Roman soldier ran at good speed, fully encumbered.

'Health via Food'
by
Dr. Howard Hay M. D.

ભોજન વિષે ત્રીજી વાત તેનું પ્રમાણ છે. આમાં બે બાબતો ઉપર ખાસ ધ્યાન આપવું જોઈએ. ભોજન શરીરનું નિર્માણ-કારક તત્ત્વ હોવાથી, જ્યાં સુધી શરીર વધતું રહે છે, એટલે કે ૨૫—૩૦ વર્ષ ની ઉંમર સુધીનું ભોજન અને ત્યાર બાદ જ્યારે શરીરની વૃદ્ધિ બંધ પડી જાય છે અને શ્રમ કરવાથી થોડી ઘણી ભાંગ ફોડ થાય છે, ત્યારે ભોજનના પ્રમાણમાં પૂરતો તફાવત હોવો જોઈએ. આપ જોશો કે ઉપર જે ભોજનનો ક્રમ વર્ણવ્યો છે તેમાં અન્નનું પ્રમાણ અર્ધું થઈ જાય છે. બીજી બાબત, જેના પર ધ્યાન આપવાનું છે તે એ કે જ્યારે કોઈ પણ ખોરાક લેવામાં આવે ત્યારે આખી ભૂખથી થોડું ઓછું જ ભોજન કરવું; જેથી આમાશયમાં જુદા જુદા પાચક રસોનો પ્રભાવ સારી રીતે પડી શકે. આનું પ્રમાણ ભૂખનું ત્રણ ચતુર્થાંશ નક્કી કરી શકાય.

ભોજન વિષેની ચોથી અને છેલ્લી બાબત ભોજનના પ્રકારની છે. આજનું ખોરાક વિજ્ઞાન જે વાત (ભોજનનો પ્રકાર, તેનું ક્ષારત્વ, અમ્લત્વ, ખનિજ લવણ, વિટામિન વગેરે) ને સૌથી વધારે મહત્ત્વ આપે છે, માનસ સાધના-મંડળ તેને પહેલી, બીજી અને ત્રીજી પણ નહિ, બલ્કે ચોથી અને છેલ્લી શ્રેણીમાં મૂકે છે. આ શરીર આકાશ, વાયુ, અગ્નિ, જળ અને પૃથ્વીતત્ત્વોનું બનેલું છે. એમાં આકાશ-તત્ત્વ ખોરાકનું તત્ત્વ નથી. બાકી ચારેયમાં પૃથ્વીતત્ત્વ દાળ અને અનાજમાં, જલતત્ત્વ શાકભાજીમાં, અગ્નિ-તત્ત્વ તડકામાં પાકેલાં સ્થાનીય (રાંધ્યા વગર ખાવાલાયક) ફળોમાં અને વાયુતત્ત્વ દરેક જાતનાં પાંદડાંમાં ખાસ જોવામાં આવે છે. તેથી શરીરને તંદુરસ્ત રાખવા માટે, આકાશતત્ત્વ સિવાય આપણા ખોરાકમાં આ ચારેય-તત્ત્વોનો સમાવેશ થવો જોઈએ. શુદ્ધ લોહીમાં ૮૦ ટકા ક્ષાર તત્ત્વ અને વીસ ટકા જ અમ્લ તત્ત્વ હોય છે. બધી જાતનાં અનાજ (દાળ, ઘઉં, ચોખા વગેરે) માં અમ્લ તત્ત્વ તેમ જ ખોરાકના બીજા પદાર્થો — શાકભાજી ફળો અને પાંદડાં-ઓમાં ક્ષાર તત્ત્વની પ્રધાનતા હોય છે. તેથી ખોરાકના આખા પ્રમાણમાં અન્ન ઘણું જ ઓછું અને બીજા પદાર્થો વધારે પ્રમાણમાં હોવા જોઈએ. આપ જોશો કે ઉપર જે ભોજનનો ક્રમ વર્ણવ્યો છે, તેના અનુસરણથી જ આ શરત પૂર્ણ થઈ શકે છે.

ભોજનના પ્રકાર તેમ જ તેના ઉપયોગની વિધિનું વર્ણન પંચ સૂત્રી સાધનાના અવયવોના વિવરણમાં કરવામાં આવ્યું છે. અહીં મળ—સંચયના મુખ્ય કારણોની ચર્ચા

કરવી યોગ્ય ગણાશે. જેવી રીતે મનમાં આસકિત (ચોંટ-વાની — વળગવાની વૃત્તિ) અને બુદ્ધિમાં અહંકાર (બળવા બાળવાની વૃત્તિ) આપણી આધ્યાત્મિક પ્રગતિના માર્ગમાં અવરોધ અને રુકાવટ ઊભી કરે છે, તેવી જ શારીરિક સપાટી ઉપર શ્લેષ્મા (Mucus) અને અમ્લ (Acid) વાળું ભોજન મળસંચયનાં મુખ્ય કારણો છે. આ બંનેમાંથી પણ શ્લેષ્માયુકત ભોજન કરતાં પણ અમ્લયુકત ભોજન વધારે હાનિકારક હોય છે. લાંબી અથવા ચોંટી જવાના ગુણવાળા ખાદ્ય પદાર્થો શ્લેષ્માયુકત હોય છે, જેમકે ઘઉં, ચોખા, બટાટા વગેરે. હવે અમ્લયુકત પદાર્થોને જોઈએ. સૂકા મેવામાં વધતા જતા અમ્લત્વના હિસાબે બદામ, કાજુ, અખોટ, મગફળી, વગેરેના નામ લઈ શકાય. ફકત કોપરામાં અમ્લ બિલકુલ હોતું નથી. પણ મગફળીમાં પુષ્કળ પ્રમાણમાં હોય છે. તળેલાં, ભૂંજેલા ખાદ્ય પદાર્થોમાં પણ તે પુષ્કળ પ્રમાણમાં હોય છે. બીજા પદાર્થોમાં અમ્લત્વના વધતા પ્રમાણમાં ચોખા, ઘઉં, કઠોળ, માંસ અને ચહાનુ નામ લઈ શકાય. આજકાલ ચહાને હાનિકારક માનવાને બદલે કેટ-લેક અંશે લાભકારક ગણવામાં આવે છે. અને ઘણા ડૉક-ટરો પણ માંદાઓ અને બાળકોને પણ ચહા પીવાની સલાહ આપે છે. આ ચહામાં માંસ કરતાં પણ આઠ ગણું વધારે અમ્લત્વ હોય છે. ચહામાં અમ્લત્વ કેટલી હદ સુધી હોય છે, તે જાણવા માટે ડૉ. હેગ, એમ. ડી.નું કથન રજૂ કર્યું છે. ડૉ. હેગ ઘણા દિવસો સુધી આ બાબતમાં શોધ અને પ્રયોગો કર્યા પછી લખે છે :—જો મને દુનિયાના સૌથી વધારે ઝેરી ખાદ્ય પદાર્થોની યાદી બનાવવાનું કહેવામાં આવે તો હું આ યાદીમાં ચહાને સૌથી પહેલું નામ આપીશ. *

ઉપવાસને લગતા તંત્ર (પ્રવિધિ) માં આપણે ત્રણ પ્રકારના દૈનિક, સાપ્તાહિક તેમ જ નવરાત્રના સમયના ભોજનક્રમો સ્વીકારવા જોઈએ. દૈનિક ભોજનના ક્રમમાં ભોજન સંબન્ધી ઉદ્દેશ્ય, સમય, માત્રા અને પ્રકા-રનો સિદ્ધાંત સમજી લીધા પછી આપણે વર્તમાન ભોજનના ક્રમને નોંધી લેવો જોઈએ અને ધીમે ધીમે ભોજનના સમય, માત્રા તેમ જ પ્રકારમાં ફેરફાર કરવો જોઈએ. સવારે જો નાસ્તો કરતા હો તો તે બિલકુલ બંધ કરી દેવો જોઈએ. નવ દસ વાગે જે કાંઈ ભોજન કરાય તેના પ્રમાણમાં કમી કરીને તેના સ્થાને શાકભાજીનું પ્રમાણ વધારવું જોઈએ. આવી રીતે થોડા દિવસોમાં અન્ન બિલકુલ કાઢી નાખવું અને પછી ભાજીનું પ્રમાણ ઓછું કરીને તેની જગ્યાએ મોસમનાં સ્થાનીય ફળો લેવાં જોઈએ. પછી નવ દસ વાગે ફળોનું પણ ભોજન બંધ કરીને તે વખતે મધ, લીંબુનું શરબત અથવા રાત્રે પલાળેલી મોટી દ્રાક્ષ ખાઈને તેનું પાણી પી જવું. બપોરે ફળ કે શાકભાજી લેવાં અને સાંજે મુખ્ય અન્નવાળો (ચોખા, ઘઉં, દાળ અને શાક) ખોરાક લેવો.

સાપ્તાહિક ભોજનના ક્રમમાં આપણે અઠવાડિયામાં ઓછામાં ઓછું એક દિવસનું વ્રત રાખવું જોઈએ. આમાં એક જાતનું ભોજન થોડા અઠવાડિયા સુધી ચલાવવું જોઈએ, જેથી શરીર નવી પરિસ્થિતિને અનુકૂળ બનતું જાય. પહેલા ક્રમમાં ભોજનમાંથી અનાજ કાઢીને ફળ, ભાજી અને દૂધ લેવાં જોઈએ. બીજા ક્રમમાં ભોજનમાંથી દૂધ પણ કાઢી નાખીને ફકત ફળો અને શાકભાજી પર રહેવું જોઈએ પછી શાકભાજી કાઢીને ફકત ફળો પર અને છેવટે ફળોને પણ કાઢી નાખી ફળો અથવા શાકભાજીના રસ અથવા તો મધ-લીંબુના શરબત ઉપર રહેવું જોઈએ. એનાથી પણ આગળ વધીને ફકત પાણી ઉપર જ રહેવાની પણ ટેવ પાડી શકાય.

---

* If I was asked to prepare a list of most poisonous foods in the world, I would place TEA at the top.

— Dr. Haig M.D.

હવે ઉપવાસના તંત્ર (પ્રવિધિ) બાબત નિવેદન કર-વાનું રહ્યું. માનસ—સાધના—મંડળની પંચ—સૂત્રી સાધન-પ્રણાલીના પહેલા તેમ જ બીજા અવયવના વિવેચનમાં, જે પહેલાં જ થઈ ગયું છે, આ બાબતમાં કેટલુંક નિવેદન કરવામાં આવ્યું છે. તેથી બનવા જોગ છે કે કેટલીક વાતોનું પુનરાવર્તન થઈ જાય.

નવરાત્રમાં નવ દિવસ સુધી સતત વ્રત કરાય છે. તેમાં પણ અઠવાડિક વ્રતોના ક્રમ પ્રમાણે જ ભોજનમાં ફેરફાર કરવો જોઈએ. પહેલા વર્ષનાં બન્ને નવરાત્રોમાં અન્નરહિત ભોજન, બીજા વર્ષનાં નવરાત્રોમાં અન્ન-દૂધ રહિત ભોજન, ત્રીજા વર્ષના નવરાત્રોમાં ફક્ત રસ અને ફળોનું ભોજન અને ચોથા વર્ષના નવરાત્રોમાં ફળો કે શાકભાજીના રસો અથવા મધ-લીંબુનું શરબત લેવું જોઈએ. આગળ જતાં બધાં દૈનિક કાર્યો કરવા છતાં આ વ્રતો પણ ફક્ત ફળો પર કોઈ જાતનો થાક અનુભવ્યા વગર કરી શકાય છે. ફક્ત ફળો પર વ્રત કર્યા પછી સાધક જો ઈચ્છે તો વચ્ચેના બે કે ત્રણ દિવસ ફક્ત હવા પર રહેવાનો સફળ અભ્યાસ કરી શકે છે. વ્રતોના સંબંધમાં પંચ—સૂત્રી સાનાના પહેલા તેમ જ બીજા અવયવના વિવેચનમાં પણ વિસ્તારથી વર્ણવવામાં આવ્યું છે તે પણ વાંચી લેવું જોઈએ. અહીં નવરાત્રના બેજ વિવરણ આપવાનું પૂરતું છે. અને તે આ લેખના અન્તમાં આપ્યું છે.

વ્રતો વિષે એક બીજી વાત ધ્યાનમાં રાખવી જોઈએ. વ્રતમાં જ્યારે ફક્ત શાકભાજીનો રસ અથવા મધ-લીંબુનું શરબત લેવામાં આવે ત્યારે દરરોજ થોડાક નવશેકા પાણીનો એનીમા પણ લેવો જોઈએ. આ સમય દરમ્યાન પાણીનું પ્રમાણ વધારી શકાય. જ્યારે વ્રત છોડવામાં આવે ત્યારે પહેલાં કોઈ ફળનો રસ અથવા ભાજીનું પાણી લેવું જોઈએ અને તેના બે અઢી કલાક પછી પૂરતા પ્રમાણમાં પાંદડાં-વાળી ભાજી અને લીલાં શાકભાજીનું ભોજન કરવું જોઈએ, જેથી આંતરડાના માર્ગમાં જે મળ પડયો હોય તે આ રેચક અને રેશાવાળા ખોરાકથી બહાર નીકળી જાય.

સાધારણ જીવનમાં અઠવાડિક ઉપવાસ ને બદલે એમ પણ કરી શકાય કે દરેક માસમાં ચાર કે પાંચ દિવસ લાગલગાટ વ્રત કરવામાં આવે અને મહિનાના બાકી દિવસોમાં સાધારણ એક વખત અન્નમય ભોજનનો ક્રમ ચાલુ રાખવામાં આવે. આ વિધિ ઘણી જ ઉપયોગી સાબિત થઈ છે.

હવે ઉપવાસ અંગેની સૌથી અગત્યની વાત પર વિચાર કરીને અમે વિષય સમાપ્ત કરીશું. ભોજન વિશેના ઉપર વર્ણવેલા ક્રમોને સ્વીકાર્યા પછી, જો આપ માંદા હો તો રોગમાંથી મુક્ત થઈ જશો અને આન્તરિક શક્તિ જાગૃત થવાથી બધાંને અખંડ શક્તિ પ્રાપ્ત થશે. પણ એની સાથે જ એક વાત પણ સંભવ છે કે આપ થોડા દિવસ પછી, આ ભોજનક્રમનો લાભદાયક અનુભવ હોવા છતાં આ ભોજન-ક્રમ તજીને ફરીથી જૂની હાનિકારક પદ્ધતિને અપનાવી લો. આ જાતના અનેક દાખલા બન્યા પણ છે. આ અનિચ્છનિય સ્થિતિમાંથી બચવા માટે એટલે કે રોગની સંભાવના વગરનું અખંડ સ્વાસ્થ્ય મેળવવા માટે અને થાકની સંભાવના રહિત અખંડ શક્તિના જાગરણ માટે પૂજ્ય યોગીજીએ આ નિયમ નિર્દેશ કર્યો છે (જે સોએ સો ટકા સફળ પણ રહ્યો છે) કે જ્યારે આપણે ભોજન કરીએ છીએ ત્યારે પોતાના જઠરાગ્નિની જરૂરી માગણીનું ચતુર્થાંશ ભોજન, તેમ જ જ્યારે વ્રત કે અપવાસ કરીએ છીએ ત્યારે બચેલું આખું ભોજન કોઈ બીજાને તેના વૈશ્વાનરની તૃપ્તિ માટે સેવા અને આભારના ભાવથી અર્પિત કરી દઈએ. એ બીજું પ્રાણી મનુષ્ય, પશુ, પક્ષી કોઈ પણ હોઈ શકે છે પણ પોતાની સાથે કોઈ પણ રીતે સંબંધિત ન હોવું જોઈએ. આ વિશિષ્ટ પ્રવિધિ અપનાવવાથી ઉપવાસ વડે મેળવેલી આશ્ચર્યજનક સિદ્ધિઓમાં સ્થાયીપણું આવશે અને ફરીથી જૂના ભોજનક્રમ પર આવી રહેવાની સંભાવના નહિ રહેશે.

राम भगति मनि उर बस जाके । दुख लवलेस न सपनेहुँ ताके ।।

चतुर सिरोमनि तेइ जगमाहीं । जे मनि लागि सुजतन कराहीं ।।

ચિત્ત શાન્તિના ઉપાયો

— આચાર્ય ભાઈશંકર પુરોહિત

માનવના સર્વ પ્રયત્નોનો અંતિમ ઉદ્દેશ ચિત્તશાન્તિ છે. ધન, મકાન, ગાડીઘોડા, કુટુંબપરિવાર, કીર્તી, સત્તા, આ બધાના મૂળમાં સુખની અભિલ' ા હોય છે. છતાં યે આ બધું બહુ બહુ તો શરીરને અનુકુળ સંવેદનો આપવાનું કામ કરે છે. અંતરમાં કોઈ ઉત્પાત કે ક્ષોભ ન હોય ત્યારે જ આ બધાં સુખ આપી શકે છે. જો અંતર અશાંત હોય તો ઉપર ગણાવેલાં બધાં યે સુખ સાધનો મોજૂદ હોય તો યે માણસ બેચેન દુઃખી રહે છે.

આંતર સુખ અથવા ચિત્તપ્રસાદનાં વિધેયાત્મક સાધનોનો વિચાર યોગ સૂત્રકાર ભગવાન પતંજલિએ આ પ્રમાણે કર્યો છે:

સુખ, દુઃખ, પુણ્ય અને અપુણ્ય વિષે મૈત્રી, કરૂણા આનંદ અને ઉપેક્ષાનો ભાવ રાખવાથી ચિત્ત પ્રસન્ન થાય છે. આ થયો સૂત્રનો શબ્દાર્થ.

આને વિસ્તારથી વિચારીએ.

(૧) મોટા ભાગે માણસ બીજાનો અને ખાસ કરીને એક વખતના પોતાના સમોવડિયાનો ઉત્કર્ષ જ જોઈ ઈર્ષા કરે છે. જો તે માણસ કોઈ મોટું પદ પામે અથવા ધનવાન બને કે સારી ખ્યાતિ મેળવે તો એનાં સાચાં જૂઠાં અપલક્ષણોની વાતો ફેલાવીને અથવા એની ઉન્નતિના મૂળમાં પાયો ન હોવાનું જણાવી, ઉત્કર્ષના પરિણામે તેને મળતી લોક પ્રશંસા કે લોક પ્રતિષ્ઠા ધોઈ નાખવા પ્રયત્ન થતો જોવામાં મળે છે. કેટલીક વખતે ઉન્નતિ માટેના તેના પ્રયત્નો ચાલતા હોય ત્યારે, એમાં સીધી કે આડકતરી અડચણો ઊભી કરવાનો પ્રયત્ન થતો હોય છે. આ જાતનું વર્તન ઉન્નત્તિ પામનારને હાનિ પહોંચાડે કે ન પહોંચાડે પણ તેની ઈર્ષા કરનારના અંતરમાં હોળી સળગાવે છે એ નિશ્ચિત છે. માટે જ મહર્ષિ પતંજલિ આંતર પ્રસાદ માટે કોઈનું સુખ જોઈએ ત્યારે એની પ્રત્યે ઈર્ષાને બદલે સાચા અર્થમાં પ્રેમ ભર્યો વર્તાવ — મૈત્રી કરવાનું સૂચવે છે.

(૨) પારકાને દુઃખી જોઈ લોકો મોટે ભાગે એ સ્થિતિ માટે એનો દોષ કાઢવા માંડે છે. ઘણી વખત મદદ કરવાની પોતાની જવાબદારીમાંથી છૂટવા માટે પણ આમ કરાતું હોય છે. એમ એને ઘણી વખત ચેતવ્યો પણ એણે અમારૂં માન્યું નહિ. પછી આમ જ થાય ને! એ તો આજ દાવનો છે.' આવી સુફિયાણી વાતો કરી એનું દુઃખ ઘટાડવાને બદલે વધારતાં હોય છે. દુઃખ, ધન માન કે કીર્તિનાશ એમ કોઈ પણ પ્રકારનું હોય પણ એ પ્રત્યે આવું વર્તન થતું જોવા મળે છે. આવું વર્તન દાખવનાર પોતાને ચડિયાતા કે ડાહ્યા બતાવવાનું છૂપું અભિમાન પણ ધરાવતા હોય છે. આમ કરનાર પોતે જ પોતાની શાંતિ ખોઈ બેસે છે. એમ જણાવતાં મહર્ષિ પતંજલિ પારકાને દુઃખી જોઈ 'કરુણા' રાખવા શિખામણ આપે છે. કરુણા અને દયામાં ફરક છે. દયા કરનાર આપવડાઈની ભાવના સેવતો હોય છે જ્યારે કરુણા કરનાર સહાનુભૂતિભરી આત્મીયતા પ્રકટ કરે છે.

(૩) પુણ્ય શાળીને જોઈ, તેની વાહવાહ થતી સાંભળી ઘણાનું મન સળગી ઊઠે છે. પુણ્યશાળી દંભી કે સ્વાર્થી હોવાની તેઓ વાતો ફેલાવે છે. આવો સ્વભાવ પણ આત્મક્લેશમાં જ પરિણમે છે. આથી જ પુણ્ય જોતાં આનંદ પામવાનું મહર્ષિ જણાવે છે. પુણ્ય પ્રત્યે આનંદની ભાવના રાખનારની વૃત્તિઓ પુણ્ય તરફ વળે છે ને તે આંતર શુદ્ધિ તથા શાંતિ પામે છે.

(૪) અપુણ્ય અર્થાત્ પાપ જોઈને માણસો ધિક્કાર કરવા પ્રેરાતાં હોય છે. પાપ ભલે પારકાનું હોય પણ એનો વિચાર, વિચાર કરનારના મનમાં ઘોર પાપનો ઘર બેસાડે છે. એથી પોતે પાપી નથી એવું ગુમાન રાખનાર સ્વયં પોતાના હૃદયમાં પાપને પોષે છે ને ધીરે ધીરે પાપાચાર તરફ ઘસડાય છે. આ સ્થિતિથી બચવા માટે જ પતંજલિએ પાપ પ્રત્યે ઉપેક્ષાવૃત્તિ ધરાવવાનું કહ્યું છે. ઉપેક્ષા કરવી એટલે પાપનો વિચાર સરખોએ ન કરવો. ઘણી વખત આપણે બીજાને લગતી કરેલી પાપ કલ્પના નિરાધાર હોવા સંભવ છે. જો તેમ હોય તો અપાપમાં પાપ જોવાનું આપણે પાપ કરીએ છીએ. એથી ઊલટું જો સામો સાચે જ પાપી હોય તોયે તેની નિંદા કે અવહેલના કરવાથી આપણે એને નિર્લજ્જ, નઠોર અને ધૃષ્ટ બનાવીએ છીએ. બીજાનાં પાપો જોવાં કે ઉઘાડાં પાડવાં એમાં આપણે આપણી પુણ્યશાળીપણાની ખંધી માન્યતા પણ વ્યક્ત કરતા હોઈએ છીએ. આ આપણા સુષુપ્ત અહંકારને સૂક્ષ્મપણે પોષે છે. જ્યારે અન્યના પાપની ઉપેક્ષા કરનાર પરનિંદા તેમ જ સ્વઅહંકાર એ બેઉથી ઊગરી જાય છે. આમાં પ્રેમભર્યા ઉપાયોથી દુરાચારીને સુધારવાનો નિષેધ નથી પણ એ જો શક્ય કે આપણા માટે કર્તવ્ય ન હોય તો એથી પૂર્ણ પણે અલિપ્ત રહેવાનું સૂચન છે.

આ ચાર બાબતો જીવનમાં દૃઢમૂળ થાય તો જ 'ચિત્ત પ્રસાદ' અથવા 'ચિત્ત શાંતિ' શક્ય બને છે. અને ચિત્ત પ્રસાદ થતાં ગીતા કહે છે તેમ '**प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।**'

આંતર પ્રસાદ પ્રાપ્ત થતાં સાધકનાં સર્વ દુઃખો ટળી જાય છે.

भाग 'घ'

परमपूज्य श्री हृदयनारायणजी (योगीजी)

अध्यक्ष, मानस साधना मण्डल यांचा

संक्षिप्त परिचय

परमपूज्य श्रीहृदयनारायणजी (योगीजी) यांचा आम्ही येथें संक्षिप्त परिचय देत आहोत. यांच्यासंबंधाने संत-प्रवर श्री. बदरीनारायणजी त्रिपाठी यांनी सन १९२९ मध्यें असे म्हटले होते, कीं, "तुम्ही रामचरित मानस या ग्रंथाच्या अशा उपयुक्त भागाचा जनतेमध्यें प्रचार व प्रसार करावयास पाहिजे कीं जेणेकरून मनुष्यमात्राच्या वैयक्तिक व सामाजिक जीवनांतील सगळ्या दुःखांचा, हाल-अपेष्टांचा संपूर्ण नाश होईल." आणि मग जेव्हां पूज्य योगीजींनी त्यांना असे सांगितले कीं हे विशाल कार्य पार पाडण्याच्या दृष्टीनें मी तर सर्वस्वी योग्य नाहीं तेव्हां ते म्हणाले, "हे कार्य माझे आहे व ते मी तुमच्याकरवींच करून घेणार आहे." सत्संग व संभाषण या प्रसंगी जेव्हां पूज्य योगीजी त्यांच्या अमृतवाणीची टिपणें घेत तेव्हांही ते म्हणत, "टिपणें घेऊन काय करणार ?" तुमच्याच मुखांतून मी बोलणार आहे." आणि आज उत्तर भारताच्या एका टोकापासून दुसऱ्या टोकापर्यंत, कधी राजस्थानमध्यें, तर कधी मध्यप्रदेशमध्यें तर कधीं मुंबईस लोक त्यांचे प्रवचन ऐकत तेव्हां असे सांगतात कीं लोकांना वाटे कीं प्रवचनाचे वेळीं पूज्य योगीजी स्वतः बोलत नसून त्यांच्या मुखातून दुसरे कोणी तरी बोलत आहे.

ज्यांनी पूज्य योगीजींना कधी पाहिले नाहीं त्यांना 'योगीजी' या नांवाने जरा बुचकळचांत पडल्यासारखे वाटते; तसे कांहीं साधकांना सुद्धां वाटलेले आहे. एका साधकाने आपला अनुभव लिहिला आहे, "जेव्हां प्रवचनास आरंभ झाला तेव्हां पांढऱ्या-सफेत खादीचे धोतर व कुडता घालून एक किरकोळ यष्टीची व्यक्ति प्रवचन देत आहे असे पाहून मला आश्चर्य वाटले व माझा विश्वास बसेना. मला असे वाटले होते कीं भगवी वस्त्रे धारण करून कोणी मोठा संन्यासी बाबा प्रचवन देत असेल." पूज्य योगीजी केवळ गोस्वामी तुलसीदासकृत श्रीरामचरितमानस या ग्रंथांचे मानवी जीवनाच्या दृष्टीनें उपयुक्त अशा भागाचे प्रवचन करीत नसून वैदिक सिद्धांतांचाही परामर्श घेत आहेत. कितीएक वैदिक सिद्धांतांचा त्यांच्या तांत्रिक पद्धतीनें त्यांनी आपल्या प्रत्यक्ष जीवनांत स्वीकार केलेला आहे व तसा आपल्या अनुयायांच्याही जीवनांत प्रत्यक्ष अनुभव करवून घेऊन सफलता प्राप्त करून घेतली आहे. श्री. रामचरित्रमानस ग्रंथांत मानवी जीवनाचा आदर्श संन्यास सांगितलेला नसून गृहस्थाश्रमाचे प्रतिपादन केलेले आहे; भगवान शंकराच्या कथानकरूपानें तेच पुढें मांडलेले आहे. तर मग यांना 'योगीजी' ही पदवी कशी मिळाली ?

हे सुरुवातीला आपल्या सहपाठी गुरुजींच्याजवळ योगक्रिया शिकण्याच्या उद्देशानें आले पण त्यांना असे वाटले कीं ह्या यौगिक क्रिया म्हणजे खालच्या स्तराच्या साधनेचा प्रकार आहे म्हणून त्यांनी त्यांना त्या शिकविल्या नाहींत पण नांवमात्र "योगीजी" असे मुद्दाम ठेवून दिले.

जन्म व शिक्षण

परम-पूज्य योगीजींचा जन्म ६ जुलाई १९०५ ई. मध्ये फैजाबादला झाला. त्यांचे वडील श्री. हिम्मत बहादूरजी पोलीस कचेरीमध्यें अकाउंटंट होते. सन १९१० सालीं त्यांच्या वडलांची बदली (इन्स्पेक्टर जनरल ऑफ पोलिसच्या ऑफिसांत) अलाहाबादला झाल्या कारणानें यांचे शिक्षणही अलाहाबादला सी. ए. वी., डी. ए. वी. व के. पी. कॉलेजांमध्यें झाले. १९२७ सालीं ते बी. ए. झाले.

कांहीं दिवस त्यांनी उ. प्र. सचिवालयामध्यें काम करून नंतर त्यांनी सी. ए. बी. कॉलेजमध्यें दोन वर्षें अध्यापनाचे काम केले. पुनः सरकारी नौकरी धरली व पोलिस खात्यामध्यें दुभाष्याचे काम केले व १७ फेब्रुवारी १९५६ च्या सुमारास आपल्या इच्छेनें सेवानिवृत्त झाले.

गुरुजींशी संपर्क व त्यांचेकडून दीक्षाग्रहण

१९२७ मध्यें पूज्य योगीजी अलाहाबादमध्यें कायद्याचे शिक्षण (पहिले वर्ष) घेत होते. त्याच वर्षी संत-प्रवर पं. बदरीनारायणजी त्रिपाठी अलाहाबाद विश्वविद्यालयामध्यें एम्. ए. चा अभ्यास करण्याकरितां आले होते. श्री बिन्दुजी महाराज ह्या दोघांचेही स्नेही होते. त्यांच्या घरीं पूज्य योगीजींची त्यांच्याशी भेट झाली. त्यानंतर स्नेह वाढला व लोखंड जसे लोहचुंबकाकडे ओढ घेते तद्वत् पूज्य योगीजी गुरुजींच्या अगदी निकट सान्निध्यांत आले. त्यांचे चुलते बेतियाच्या महाराणीच्या तैनातीत होते. त्यांना सांगून महाराणी साहेबांच्या मुट्ठीगंजमधील घरांत त्यांनी कांहीं खोल्या घेतल्या व दोघे तेथें राहूं लागले. तेथें जवळ जवळ सर्व रात्रभर दोघांमध्यें धार्मिक विषयांवर सत्संग चालत असे.

पूज्य योगीजी लहानपणीं नेहमीं आजारी असत. सन १९२९ मध्यें बर्नार्ड मॅकफेडन यांचे "फास्टिंग फॉर हेल्थ" नांवाचे पुस्तक त्यांच्या हातीं आले. ते पुस्तक वाचल्यावर त्यांनी एकदम केवळ पाण्यावर १५ दिवसांचा उपवास केला. उपवास तर संपूर्णपणें सफल झाला पण उपवास सोडण्याच्या बाबतींत त्यांच्याकडून थोडीशी चूक झाली व त्यामुळें ते आजारी पडले. त्यांची स्थिति पुढें अधिकाधिक बिघडली व त्यांच्या आयुष्याचा शेवट जवळ आल्यासारखे वाटूं लागले. त्या दिवशी त्यांनीं गुरुमहाराजांना खालीलप्रमाणें पत्र पाठवले :—

> **"चार दिवस मँह नाथ न आवा ।**
> **तो मोहि नाथ जिअत नंहि पावा ।।"**

त्या वेळीं गुरु महाराज रायबरेलीला आपल्या घरी होते. ज्या वेळीं त्यांना हे पत्र मिळाले त्या वेळीं ते जेवण करीत होते. पत्र वाचल्यावर ते ताटावरून उठले. तेथून ११ मैल पायीं चालून स्टेशनवर आले व अलाहाबादला येऊन पोंचले. तेथें पोचल्यावर ते ताबडतोब पूज्य योगीजींना भेटावयास गेले. भेट झाल्यावर ते फक्त इतकेच म्हणाले :— " you are alright " आणि त्या क्षणापासून पूज्य योगीजींची तब्येत एकदम सुधारली व ते पूर्णपणें बरे झाले. त्यानंतर पूज्य योगीजी त्यांच्याबरोबर रायबरेली जिल्ह्यामध्यें कुंदनगंज स्टेशनजवळील दुलमपुर या गांवी येऊन कांहीं दिवस राहिले. तेथें गुरुकृपेनें त्यांना परमेश्वराची लीला अनेक वेळां पाहावयास मिळाली. याच ठिकाणीं जून १९२९ मध्यें त्यांनी दीक्षा घेतली. दीक्षा घेण्याच्या वेळीं परमेश्वरी लीलेचा एक अल्पसा प्रसंग घडून आला तो वर्णन करण्याचा मोह लेखकास आवरता येणें कठीण आहे.

ग्रामीण वातावरणांत वास्तव्य असल्यानें व दीक्षा पूर्णपणें आध्यात्मिक स्वरूपाची असल्या कारणाने ह्या संस्कारास सार्वजनिक स्वरूप दिले गेले नाही. तेव्हां दीक्षाग्रहण झाल्यावर ५–७ जणांचीच भोजनाची व्यवस्था केलेली होती. परंतु परमेश्वरास थोडी लीला पाहावयाची होती. त्यावेळीं अपेक्षेबाहेर लोक जमा झाले. यजमानाच्या पुढें बिकट प्रसंग ओढवला. जे लोक आले त्यांची जेवणाखाण्याची व्यवस्था करावयास पाहिजे होती पण इतक्या लोकांना पुरेल अशी अन्नसामुग्री जवळ नव्हती. बरं, गांवही कांहीं एवढे मोठे नव्हते कीं जरूर ते धान्य -धुन्य वगैरे सहज मिळावे व ते आणून पाहुण्यांच्या जेवण्याखाण्याची व्यवस्था करता यावी. गुरुजी महाराजांनी ही परिस्थिति पाहिली व ते स्वयंपाकघरांत आले. जे अन्न शिजवून तयार झाले होते त्यावर त्यांनी एक चादर टाकली व आज्ञा दिली कीं चादर काढूं नका व एका बाजूनें चादर न हालवतां जेवढे अन्न पाहिजे आहे तेवढें काढून घेऊन तेवढें पाहुण्यांना वाढावे. परमेश्वराची लीला अगाध आहे. सर्व आगंतुक मंडळी पोटभर जेवली व ज्या थोडचा लोकांसाठी स्वयंपाक करून ठेवला होता त्यांच्यासाठीं भरपूर अन्न शिल्लक राहिले.

ह्याच प्रसंगी पूज्य योगीजींच्याबरोबर (पण त्यांच्या अगोदर) त्यांची पत्नी श्रीमती श्यामा रानी यांनीही दीक्षा घेतली.

दुलमपूरहून परत आल्यावर त्यांचा परिचय अधिक दाट झाला व दोघेहीं सहकुटुंब एकत्र राहूं लागले. सन १९३७ मध्यें जेव्हां उ. प्र. सचिवालय लखनऊला आले तेव्हां पूज्य योगीजीही लखनऊला आले. आतां गुरुजींचा सहवास त्यांना सुट्टीच्या वेळी नैनीतालमध्यें (जेव्हां सरकारी कचेऱ्या नैनितालला जातात) होऊं लागला.

सत्संगाची व्यवस्था

अलाहाबादमध्यें जेव्हां राहात असत तेव्हां रामबागेमध्यें हनुमानजीच्या मंदिरात गुरुजींचा साप्ताहिक - सत्संग (तुलसी सत्संग) चालत असे. ज्यावेळीं गुरुजी अलाहाबादला नसत तेव्हां पूज्य योगीजींचे त्यांच्याऐवजी प्रवचन होत असे. लखनऊला आल्यावर हा सत्संगाचा असाच क्रम चालूं राहिला व सुरुवाती-सुरुवातीला हा सत्संग क्ले स्क्वायरमध्यें श्री जगतनारायणजी भार्गव (आतां हे दिवंगत झाले) यांचे घरी होऊं लागला. या ठिकाणीं बरेच दिवस सत्संग भरत असे. पुढें कांहीं प्रेमीजनांच्या आग्रहानुसार हा सत्संग निरनिराळचा साधक-जनांच्या घरीं भरूं लागला. त्यानंतर कायमचा असा पूज्य योगीजींच्या मकबूलगंजमधील हाता मायाराम या निवासस्थानीं नियमितपणें होऊं लागला.

गुरुजी ब्रह्मीभूत झाल्यावर सत्संग प्रेमीजन पूज्य योगीजींच्या सत्संगास व त्यांचे प्रवचन ऐकण्यास मोठचा आवडीनें येऊं लागले. नौकरीत असतांना ते सुट्टीमध्येंच लखनौच्या बाहेर जाऊं शकत परंतु त्यावेळीं त्यांचा सहवास इतका थोडे दिवस व बऱ्याच दिवसांनी येणारा असा असल्यामुळें का साधकांची तेवढचानें तृप्ती होत नसे.

प्रेमी साधकजनांच्या आग्रहाखातर पूज्य योगीजींनीं मुदतीच्या अगोदरच सेवानिवृत्त होण्याचे ठरविले. यांत त्यांचे बरेच आर्थिक नुकसान होणार होते म्हणून पुष्कळ लोकांनीं इतक्या लवकर सेवानिवृत्त होऊं नये म्हणून त्यांस सल्ला दिला होता.

नौकरीतून मुक्त झाल्यावर पूज्य योगीजी सहकुटुंब दिल्लीस राहावयास आले. तेव्हां हाता मायाराम येथील प्रवचन-स्थानीं सत्संग होईनासा झाला. तेव्हां गौतमबुद्ध मार्गावरील गीता भवनाच्या पुजाऱ्याच्या आग्रहावरून कांहीं दिवस तेथेंही प्रवचन होऊं लागले. आतां येथें नमूद करणें जरूरीचे आहे कीं विश्रांति घेतल्यानंतर जेव्हां पूज्य योगीजी सहकुटुंब दिल्लीस राहूं लागले तेव्हां त्यांना पुष्कळ फुरसत मिळूं लागली. तेव्हां ते उत्तर भारत, बिहार, पश्चिम बंगाल, उत्कल, राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र वगैरे प्रदेशांत तेथील साधकांच्या आग्रहास्तव हिंडू लागले. दर महिन्याला जवळ जवळ ३००० मैलांचा त्यांचा प्रवास होई. तेव्हां लखनऊमध्यें प्रवचन आठवडचांतून एक होण्याच्याऐवजी महिन्यांतून एक असे होऊं लागले. लखनऊमध्यें सत्संग दर महिन्याच्या दुसऱ्या रविवारी व गेले कित्येक वर्षें तेथें सिटी मॉंटेसरी स्कूल, १२ मोतीलाल नेहरू मार्ग या ठिकाणी होत असतो.

पूज्य योगीजी आपणां सर्वांमध्यें पंचभौतिक शरीरामध्यें विद्यमान आहेत. याकरितां त्यांच्याविषयीं पुष्कळशा गोष्टी सांगता येण्यासारख्या असल्या तरी फक्त त्यांच्या अनुमतीनें मी एवढेच सांगू शकतो कीं जवळजवळ ४०० वर्षें जनतेला ज्या ग्रंथाचा साधारण विसर पडला आहे अशा श्रीराम चरित मानस ग्रंथातील उपेक्षित जीवनोपयोगी भागाचे पुनरुज्जीवन त्यांनी शास्त्रीय व प्रायोगिक विवेचनानुसार, लोककल्याणाच्या हेतूने केले आहे. त्यांनी नव्याने अशा रीतीनें पुढें आणलेला हा ग्रंथ सर्वांसाठीं सुलभ आहे. त्यांत वाचकांमध्यें कोणत्याही तऱ्हेचा भेदभाव व सांसारिक पात्रता-अपात्रता मानलेली नाहीं. मनुष्यमात्राच्या पांच मौलिक गरजा, ज्यांच्याबद्दल चर्चा ह्या स्मरणिकेमध्यें जागोजाग केली आहे. अतिशय साध्या व सरळ विधीनें-प्राप्त होऊं शकतात असे पूज्य योगीजींचे दिग्दर्शन आहे. ते फलद्रूप झाल्यानें पूज्य योगीजींबद्दल खालील चरण निःसंकोच म्हटल्याखेरीज राहवत नाहीं.

" राम भगत अब अमिय अघाहूं ।।
कीन्हेउ सुलभ सुधा बसुधाहूं ।। "

मानस या ग्रंथाचे उद्दिष्ट व त्याची रचना-शैली

— परमपूज्य श्री हृदयनारायण (योगीजी)

श्रीरामचरितमानसाच्या प्रारंभिक श्लोकांमध्येच कवि-कुल-भूषण गोस्वामी तुलसीदासजींनी मानसाच्या रचनाशैली बद्दल खालील शब्दांत स्पष्ट उल्लेख केला आहे.

नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ।।

म्हणजे मानस ग्रंथ हा नाना पुराण निगमागम यांस अनुसरून आहे. गुरूकृपा व संतांचा आशिर्वाद यामुळे या वचनाचा अर्थ मला जो काही समजलेला आहे तो मी अशा मित्रांच्या पुढे ठेवीत आहे की जे मानसग्रंथाच्या आधारावर जीवनामध्ये आमूल क्रांतिकारी परिवर्तन घडवून आणू इच्छितात. कारण मानसग्रंथाची फलश्रुति हीच मानस-प्रेमी जनांच्या जीवनांतली तीन पापे नष्ट करून टाकणारी आहे.

सुनु खगपति यह कथा पावनी ।
त्रिविध ताप भव दाप दावनी ।।

म्हणजे याचा अर्थ मानस ग्रंथाची रचना–शैली पौराणिक आहे, सैद्धान्तिक विवेचन वैदिक आहे तर साधना–प्रणाली तांत्रिक आहे. वेगळचा शब्दांत सांगावयाचे म्हणजे रामायणामध्ये कथानकांच्या द्वारा वैदिक सिद्धांताचे प्रतिपादन आहे; जे सर्व सामान्य जनता सहज समजू शकेल. त्याचप्रमाणे ते सिद्धान्त समजून घेतल्यानंतर ते जीवनामध्ये, प्रत्यक्ष आचरणात कसे आणावेत याची सुलभ प्रणालीही वर्णिलेली आहे. तो विषय तंत्रशास्त्राचा आहे. अशा प्रकारे क्रमशः पुराण, निगम–आगम यांचा संबंध ऐकण्याशी, समजून घेण्याशी व आचरणाशी आहे.

सुनहु तात मन मति चित लाई ।

म्हणजे पौराणिक कथाभाग मन लावून ऐकण्याचा आहे, वैदिक सिद्धान्त बुद्धि खर्च करून समजून घेण्याचा आहे व आगमविषयक भाग चित्त लावून प्रत्यक्ष आचरणात आणण्याचा आहे. तेव्हा जीवनात पालट होऊ शकेल. मानस ग्रंथातील पौराणिक भाग फार आकर्षक आहे :–

श्रवन सुखद अरु मन अभिरामा ।

परंतु ह्याचा सिद्धान्त अत्यन्त कठीण आहे. पुष्कळ वेळा ऐकून ऐकून थोडा थोडा समजण्यांतला आहे :–

तदपि कही गुरु बारहि बारा ।
समुझि परी कछु मति अनुसारा ।।

एकदां सिद्धान्ताचे ज्ञान झाले म्हणजे साधन–प्रणाली समजणे सुगम होते––

सुगम उपाय पाइबे केरे

अशा प्रकारे मानसग्रंथातील कथाभाग मनोरंजक आहे परंतु जीवनांत परिवर्तन घडवून आणण्याच्या कामी तो तितकासा उपयोगी नाही. यासाठी तर सिद्धान्त समजून घेण्याची आवश्यकता आहे :–

जरी चांगली मजबूत नाव मिळाल्यावर नदीच्या पैलतीरावर जाणे शक्य झाले तरी ती नाव वल्हवायलाही पाहिजेच. त्याचप्रमाणे सिद्धान्त समजला तरी योग्य असा साधनमार्ग अवलंबिल्यावरही आयुष्यामध्ये आत्यन्तिक अशा दुःखनिवृत्तीचा अनुभव हा मिळाला पाहिजे.

जीवन मुक्त महामुनि जेऊ । हरिगुन सुनहि निरंतर तेऊ ।।

अशा प्रकारे रामायणाच्या आधारावर ह्याच आयुष्यांत मुक्तीचा अनुभव मिळणे शक्य आहे.

मानस या ग्रंथाचा प्रतिपाद्य विषय भगवान् राम हा आहे –––

यदि मँह आदि मध्य अवसाना । प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना।।

तात सुनहु सादर मन लाई । कहहुँ राम कै कथा सुहाई ।।

यावरून असे दिसून येते कीं, मानस ग्रंथामध्ये

तुलसीदासांनी वस्तुतः श्रीरामाची कथा सांगितली आहे खरी पण त्या ग्रंथाच्या रचना–शैलीची विशेषता अशी आहे की पौराणिक रघुकुलतिलक रामाचे वर्णन मर्यादा-पुरुषोत्तम अशा स्वरूपांत सांगून त्याच बरोबर रामाचे तत्त्वतः स्वरूप अखंड शक्ति, अखंद ज्ञान व अखंड आनंद याचे आहे. राम म्हणजे सच्चिदानंद असे प्रतिपादिलेले आहे. हे खालील ओळींवरुन स्पष्ट दिसून येते :—

राम सच्चिदानंद दिनेसा । नहि तहँ मोह निसा लवलेसा ।।
राम ब्रह्म चिन्मय अविनासी । सर्व रहित सब उर-पुरवासी ।।
सब कर परम प्रकासक जोई । राम अनादि अवधपति सोई ।।
जगत प्रकास प्रकासक रामू । मायाधीश ग्यान गुनधामू ।।

ही मूळ गोष्ट दृष्टीसमोर ठेवून जर आपण रामायणाचे वैज्ञानिक विवेचन केले तर आपल्याला असे आढळून येईल कीं रामचरित मानसांत जागोजागी मनु–सतरूपा, शिव-पार्वती, नारद–मोह, सीता–स्वयंवर अशी निरनिराळी आख्याने, प्रकरणे घालून गोस्वामीजींनी मनुष्यमात्रासाठी जीवनोपयोगी दर्शनांचेच प्रतिपादन केलेले आहे. ह्या तऱ्हेने गांभीर्यपूर्वक विचार केल्यावर असें समजून येते की श्री रामचरित मानस ग्रंथाची मनोरंजक रचनाशैली ही वस्तुतः विकारवादाच्याच सिद्धान्ताचे प्रतिपादन करीत आहे व थोडक्यात तो सिद्धान्त असा आहे की मनुष्यास आपल्या जीवनामध्ये केवळ अन्नग्रहण करून शक्ति, पैसा मिळवून सुख व अध्ययन करून ज्ञान प्राप्त होत नाही तर खरी गोष्ट अशी आहे की शरीर, मन व बुद्धि यामध्ये जो विकार,मल, विक्षेप व आवरण या रूपांत विद्यमान आहे त्यामुळे मनुष्याला असे वाटते की शक्ति, आनंद व ज्ञान यांचा संबंध भोजन, धन व अध्ययन यांच्याशीच आहे. परंतु परमेश्वराचा प्रकाश प्राप्त झाल्यावर हा भ्रम नाहीसा होतो. ह्या विचारसरणीच्या पुष्टचर्थ मानसामध्ये मनु सतरूपा यांच्या साधनेचे एक छोटेसे प्रकरण दिलेले आहे. हे प्रकरण देऊन गोस्वामीजींनी मनुष्याच्या आध्यात्मिक विकासासाठी साधनेच्या भिन्न-भिन्न अवस्थांचे आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी व ज्ञानी यांच्यासाठी दिग्दर्शन केलेले आहे. गीतेमध्ये जे विषाद योगाचे वर्णन आहे तो प्रसंग तुलसीदासांनी खाली दिलेल्या सोरठाच्या शब्दांत हुबेहूब वर्णन केलेला आहे :—

होइ न विषय विराग, भवन बसत भा चौथपन ।
हृदय बहुत दुख लाग, जनम गयो हरि भगति बिनु ।।

'हृदय बहुत दुख लाग' या शब्दांनी हे स्पष्ट होते की मनूला लौकिक दृष्टच हर प्रकारचे सुख मिळत होते तरीही आपल्या स्थितीबद्दल त्याला तीव्र असमाधान वाटत होते. ह्या असमाधानाचे कारण काहीही असो पण आध्यात्मिक विकासाच्या दृष्टीने साधकाला आपल्या वर्तमान स्थितीबद्दल असंतोष व तशी जाणीव होणे आवश्यक आहे. कारण की तीच साधनासोपानाची पहिली पायरी आहे. व त्याच पायरीला आर्त अवस्था म्हटलेली आहे. असे असमाधान उत्पन्न होण्याचे एक प्रमाण आहे. ते म्हणजे त्या वस्तूचा त्याग करूनही संतोष न होणें, समाधान न पावणे, 'बरबस राज सुतहि नृप दीन्हा !' तेव्हां ह्या असमाधानातून स्वाभाविकपणे जिज्ञासा जागृत होते, जिज्ञासेचा उदय होतो, की अखंड आनंददायक "हरि–भक्ति" की जिच्या विना सारा जन्म व्यर्थ घालविला तिचा लाभ कसा घडून येईल. निसर्गाचा नियम असा आहे की एकदा जिज्ञासा जागृत झाली की तिच्या पूर्तीसाठी पथ–प्रदर्शक, दिग्दर्शक आपण होऊन पुढे उभा राहतो व मार्गदर्शन करतो.

आये मिलन सिद्ध मुनि ज्ञानी '

आणि साधक रस्त्याला लागतो. ही परमतत्त्वाच्या प्राप्तीच्या मार्गातली साधनासोपानाची तिसरी पायरी. अर्थार्थी म्हणजे लाभाची इच्छा धरणारा. ही तिसरी अवस्था. आणि ह्या अवस्थेतील साधना जेव्हा सफल होते तेव्हा साधक चवथ्या पायरीवर चढतो तेव्हा त्याला ज्ञानी म्हणतात. येथे असा उल्लेख करणे जरूर आहे की साधक–पंथाची तिसरी पायरी जी अर्थार्थी त्या अवस्थेमध्येच साधकास चारी अवस्था, तीर्थाटन, शास्त्रचिंतन, धारण व ध्यान पार कराव्या लागतात. ह्याविषयी उल्लेख शास्त्रांमध्ये खालीलप्रमाणे आढळतो.

उत्तमा सहजाऽवस्था मध्यमा ध्यानधारणा ।
शास्त्रचिंतन अधमा प्रोक्ता तीर्थाटन अधमाधम ।।

मनु–सतरूपाचे प्रकरण वाचल्यावर त्यातील मथितार्थ ध्यानांत घेतल्यावर असे समजून येते की त्यांच्या साधनेमध्ये अर्थार्थीची अवस्था आल्यावर सिद्धमुनि

ज्ञानी त्यांच्या जवळ आले व त्यांनी त्यांना साधन–पथाचा बोध केला. ज्ञानी मुनींनी केवळ तोंडी उपदेश न करता स्वत: काही साधना करून दाखविली. याविषयी मानसामधील खालील ओळी हा मुद्दा सिद्ध करतात :—

जहँ तहँ तीरथ रहे सुहाये ।
मुनिन्ह सकल सादर करवाये ।।

साधनेमध्ये ह्यालाच तीर्थाटनाची अवस्था म्हणतात व तीर्थाटनेनेच वास्तविक पाहाता साधनेस सुरुवात होते. ह्या साधनेमध्ये केवळ स्थूल इंद्रियांचा व्यापार आहे–मन जरी इकडेतिकडे भटकत राहिले तरी या साधनेस काही प्रत्यवाय येत नाही.

त्यानंतर शास्त्र चिंतनाची अवस्था येते. ही मिश्रित साधना आहे. ह्या अवस्थेविषयी या प्रकरणांत खालीलप्रमाणे सांगितलेले आहे.

सत समाज नित सुनहिं पुराना

ह्या साधनेमध्ये इंद्रियांच्या बरोबर मनाचेही सहकार्य आवश्यक असते. कारण असे कानांनी ऐकिलेले किंवा डोळ्यांनी वाचलेले शब्द मनाच्या सहकार्याखेरीज नेहमी सर्वथैव निरर्थकच होतात. ह्यानंतर तिसरी अवस्था येते. त्या अवस्थेत स्थूल इंद्रियांचा व्यापार बंद केला जातो व केवळ मनानेच साधना चालू राहते. ह्याच अवस्थेस धारणा म्हणतात. एकाग्रतेचा अभ्यास असे दुसरेही नांव ह्या अवस्थेस दिलेले आहे. ह्या अवस्थेमध्ये मन जे सारखे इकडे-तिकडे भटकत राहात असते त्याला कोणत्या तरी एका शब्दावर किंवा रूपावर किंवा या दोघांच्या आश्रयाने एका बिंदूवर केंद्रित केले जाते व ह्या प्रकरणांत खाली दिलेल्या दोह्यावरून हे सिद्ध होते की मनु सतरूपा यांनीही असेच केले.

द्वादस अच्छर मंत्रवर, जपहिं सहित अनुराग ।
वासुदेव पद पंकरुह, दम्पति मन अति लाग ।।

साधनेची अंतिम अवस्था म्हणजे ध्यान. ह्या अवस्थेमध्ये साधकाचे मन निर्विषय होऊन जाते. ह्याला मानसामध्ये 'सुमिरन' अशी संज्ञा दिलेली आहे. व ह्या अवस्थेत विशेषे करून अन्न कमी करून फळे, भाज्या, कंदमुळे यांचेच फक्त सेवन करावे असे सांगितले आहे.

करहिं अहार साक फल कन्दा ।
सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानन्दा ।।

ह्या अंतरंग साधनेमध्ये जर मनाचे दोन मल (लय व विक्षेप म्हणजे झोपणे व भटकणे) निघून गेले तर साधकाच्या अहंकाराचा विलय होऊन जातो व ह्यालाच ध्यानाची किंवा समाधीनी अवस्था म्हणतात. ह्या अवस्थेत साधकाला परमेश्वराचा साक्षात्कार होतो. मनु–सतरूपा यांनाही शेवटी परमेश्वराचा साक्षात्कार झाला :—

भगत बछल प्रभु कृपा निधाना ।
बिस्वबास प्रगटे भगवाना ।।

अशा भगवत् दर्शनाने प्रथम साधकाची परीक्षाही होते की त्याची काही प्रापंचिक, संसारातली अभिलाष शिल्लक राहिली आहे की काय, यासाठीं —

बिधि हरहर तप देखि अपारा ।
मनु समीप आये बहु बारा ।।
मांगहु बर बहु भांति लोभाये ।
परम धीर नहिं चलहि चलाये ।।

आणि जर साधकाच्या मनांत दुसरी काही इच्छा राहिली नसेल तर त्याला भगवंताचे सम्यक् दर्शन अवश्य होते. ह्यावरून हे स्पष्ट होते की मनु–सतरूपा या उपाख्यानाच्या द्वारा संत तुलसीदासांनी फारच सुंदर तऱ्हेने साधकासाठी केवळ साधनेच्या चारी अवस्थांचेच वर्णन केलेले नसून त्याच्या सफल प्रयोगाचा सुद्धा मार्ग दाखविलेला आहे. अशा प्रकारे जर आपण मानसग्रंथाच्या प्रत्येक प्रकरणाचा ध्यानपूर्वक अभ्यास केला तर त्यांत आपल्याला मानव जीवनाच्या आध्यात्मिक विकासाचे सुंदर व सफल दिग्दर्शन केलेले आढळून येईल.

हल्लीच्या जमान्यांत प्राय: अशी प्रथा पडून गेली आहे की प्रत्येक लेखक आपल्या ग्रंथाच्या प्रारंभीच "प्राक्कथन", "प्रस्तावना", "आमुख" किंवा "भूमिका" असा मथळा देऊन ग्रंथ लिहिण्यांत आपला काय उद्देश आहे तो वेगळा लिहितात. परंतु पूर्वीच्या काळी लेखक आपल्या ग्रंथाचा प्रारंभ परमेश्वराला नमन करून, त्याची प्रार्थना करून करीत असत. म्हणून या ग्रंथाचा प्रारंभ ही पुरातन प्रथेप्रमाणे श्री गणेशास वंदन करून झाला आहे. त्यांत सुद्धा नमनाच्या श्लोकांतच गोस्वामी तुलसी

दासांनी आपल्या मानस ग्रंथाचा उद्देश "नाना पुराण निगमागम सम्मत –" स्वातंसुखाय " असा स्पष्टपणे उल्लेखिलेला आहे. ह्याच संबंधात जरा विस्तारपूर्वक विचार करणे जरूर आहे.

" स्वान्तः सुखाय " याचा बरोबर अर्थ समजून घेण्यासाठी आपल्याला एक दोन चौपाई धुंडाळावयास पाहिजेत; कीं ज्यांच्यामध्ये मानस ग्रंथाच्या रच-नेचा उद्देश कवीने स्पष्ट केला असावा.

मैं पुनि निज गुरुसन सुनी, कथा सो सूकर खेत ।
समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत ।।

... ...

भाषा बद्ध करिब मैं सोई । मोरे मन प्रबोध जेहि होई ।

... ...

निज संदेह मोह भ्रम हरनी ।
करउँ कथा भव सरिता तरनी ।।

गोस्वामी तुलसीदास सांगतात की जी कथा मी आपल्या पूज्य गुरुदेवांकडून शुकर क्षेत्रामध्ये ऐकिली होती तीच मी भाषाबद्ध याच करिता करीत आहे की माझ्या मनाला प्रबोध व्हावा; ही पवित्र कथा संसार-सागर पार करण्याच्या दृष्टीने नौकेसमान आहे व ती माझा संदेह, मोह व भ्रम काढून टाकणारी आहे.

मोह अथवा अंधःकार याच्या कारणामुळे संदेह उत्पन्न होतो. अंधारात जमिनीवर पडलेली दोरी, साप आहे की दोरी आहे हे न समजणे ही संदेहावस्था आहे. प्रायः संदेहाच्य अवस्थेमध्ये क्रिया होत नाही. जेव्हा संदेहास भ्रमाचे रूप येते तेव्हा एक प्रकारे मनुष्य निश्चय बांधतो की सर्पच आहे; तेव्हा तिथून बाहेर पडण्याची क्रिया सुरू होते आणि त्याचा परिणाम जखम व दुःख यांत होतो. म्हणून दुःख नाहींसे करण्याकरिता मोह किंवा अंधःकार नाहींसा करणे आवश्यक आहे. अंधः-काराचा विनाश झाला म्हणजे दुःखनाश घडून येतो. म्हणून रामायणामध्ये रामभक्तीला उपमा मण्याची दिली आहे; की ज्या मण्याचा लाभ झाल्याने सर्व प्रका-रचे दुःख नाहीसे होते.

' राम भगति मनि उर बस जाके ।
दुख लवलेस न सपनेहुं ताके ।।

हा जो प्रकाश पडतो त्यास "प्रबोध" ही संज्ञा दिली दिली आहे. व त्या प्रबोधाची प्राप्ति घडून येणे हा रामायण.च्या रचनेचा उद्देश आहे असे सांगितले आहे.

मोरे मन प्रबोध जेहि होई ।

ह्य. संदर्भात आपण.स "स्वान्तः सुखाय " याची व्याख्या करावयास पाहिजे. रामायणामध्ये तीन प्रकारचे सुख मानलेले आहे. एक सुख म्हणजे जे इंद्रियांच्या द्वारा विषयांकडून प्राप्त होते ते. हे बाह्य सुख आहे व ह्य.लाच मानसग्रंथामध्ये "सुख" म्हटलेले आहे. दुसऱ्या प्रकारच्या सुखाचा अनुभव आपणास गाढ झोपेच्या अवस्थेमध्ये होतो. गाढ झोप मिळाल्यानंतर आपण म्हणतो की काय छान झोप आली. आता ह्या सुखात इंद्रियांचा काही व्यापार घडून आला नाही की बाह्य जगतातील काही वस्तूचा आधार घ्यावा लागला तरी पण सुखाचा अनुभव घडून आला. अशा प्रकारच्या सुखाला आंतरिक सुख किंवा "अन्तःसुख" अशी संज्ञा दिलेली आहे. सुखाचा आधार बाह्य जगत् व ते प्राप्त होण्याची साधनें म्हणजे इंद्रिये. म्हणून अन्तः 'सुख' प्राप्त होण्या-करितां इंद्रियांचा व्यापार बंद झाला पाहिजे; तेव्हा शांतीचा अनुभव होतो. मानस ग्रंथामध्ये ह्या दोन्ही प्रकारच्या सुखांहून भिन्न –'सुख' व 'अन्तःसुख' या पली-कडील एका तिसऱ्या प्रकारच्या सुखाची चर्चा केलेली आहे. व त्याला "स्वान्त : " सुखाची संज्ञा दिली आहे. हे प्रेमसुख होय. त्याचा आधार हृदय –समर्पण.

सुख अनेक प्रकारचे असू शकते. डोळ्याने सुंदर रूप पाहणे, कानाने गोड शब्द ऐकणे, जिभेने स्वादिष्ट पदार्थ खाणे वगैरे. ह्या बाह्य सुखांत क्षणभंगुरता असते. तसेच त्यांत एकरसता नसते. खाता खाताच तृप्ति होत जाते; नीरसता येत जाते. अन्तःसुखामध्ये हा दोष असत नाही. ते अखंड असते पण ते एकच प्रकारचे असते. जेव्हा इंद्रियांचा व्यापार बंद पडतो. व मग अटकते तेव्हा प्रत्येक वेळी मनाला एक प्रकारची शांति मिळते. स्वान्तःसुख किंवा प्रेम यांची विशेषता ही की ते अखंडही असते व अनन्त रसप्रदायकही असते. प्रेमी सदा आपल्या प्रेमपात्राचे चिंतन करीत राहतो; त्याच्या स्मृतीचा रस अखंड वाहात राहतो; त्याच बरोबर अनन्तरसाचाही आस्वाद त्यास चाखता येतो. प्रेम पात्राचे

रूप पाहण्यामध्ये, त्याचे बोलणे ऐकण्यामध्ये तसेच त्याची अनेक प्रकारची सेवा करण्यामध्ये त्याला अनन्त रसाची अनुभूति होते.

अशा प्रकारे 'सुख', 'अन्तःसुख', व 'स्वान्तःसुख' हे उत्तरोत्तर उत्कृष्ट होत जाते. पहिले अनेकरस पण खंडित आहे, दुसरे अखंड पण एकरस आहे पण तिसरे अखंड व अनन्तरस आहे. ह्याच "स्वान्तःसुखा"ला प्रेम-रस किंवा भक्ति-रस म्हणतात. व हे प्राप्त करून देण्याकरिता मानस ग्रंथ लिहिला. हे परमेश्वराचे देणे आहे. मानसग्रंथामधील प्रायः सर्व पात्रांनी परमेश्वराजवळ हेच मागणे केले आहे व सुन्दरकाडाच्या नमनाच्या श्लोकामध्ये मानसकारांनीही हीच प्रार्थना केली आहे—

नान्या स्पृहा रघुपते हृदये ऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा ।
भक्ति प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च ।।

अशा प्रकारे मानसग्रंथ लिहिण्याचा उद्देश "स्वान्तः-सुख" प्राप्त करून देणे हा आहे व या ग्रंथाच्या अध्ययनाने तीन्ही प्रकारच्या सुखांची प्राप्ति होत. ह्या तथ्याचे दिग्दर्शन अयोध्याकाण्डामधील कोल–भिल्ल या प्रकरणात केले आहे. जेव्हां भगवान् श्रीराम चित्रकूट पर्वतावर वास करीत होते तेव्हा त्यांना भेटण्याकरिता तीन टोळ्या आल्या. पहिली टोळी होती देवतांची, दुसरी टोळी होती ऋषि–युनींची व तिसरी टोळी होती कोळी-भिल्लांची म्हणजे क्रमाने हे तिघे सुख (स्वर्ग), अन्तः-सुख (मोक्ष) व स्नान्तःसुख (प्रेम) यांचे अधिकारी होत. वदेवता आल्यावर

राम प्रनाम कीन्ह सब काहू ।
मुदित देव लहि लोचन लाहू ।।

म्हणजे श्रुति-सेतु पालक रामाने देवांचा आदर केला व ते भगवान् रामचंद्रांचे दर्शन घेतल्यावर आनंदित झाले. त्यांनी आपल्या असह्य कष्टांची करुण कहाणी भगवंताला सांगितली व त्यांच्याकडून आश्वासन मिळविल्यानंतर ते आपापल्या लोकाप्रत निघून गेले.

ऋषि, मुनींची टोळी जेव्हा आली तेव्हा रामचंद्रांनी त्यांना साष्टांग प्रणिपात केला. त्यावरून हे सिद्ध होते की त्यांनी त्यांना देवाहूनही अधिक आदर दिला. देव लोक रामचंद्रांना पाहिल्यावर आनंदित झाले पण मुनिजन "आवत देखि मुदित मुनि वृन्दा" म्हणजे येता येतांच वाटेवरच आनंदित झाले. देवतागणांनी ही आनंदाची स्थिति त्यांचे दर्शन झाल्यानंतर प्राप्त झालेली होती.

'मुनि रघुवरहि लाइ वर लेही' या ओळीवरून हे स्पष्ट होते की देवांना हे सुख, हे सौभाग्य प्राप्त झाले नव्हते की जे मुनिजनांना प्राप्त झाले. आलिंगनाचे सुख, रामलक्ष्मण व जानकी यांच्या मूर्ती पाहिल्यावर मुनिजनांना आपल्या सर्व साधनेची सार्थकता वाटली.

सिय सौमित्र राम छबि देखहिं ।
साधन सकल सफल करि लेखहिं ।।

हे साधन म्हणजे भक्तियोग, कर्मयोग व ज्ञानयोग. त्या साधनाची सफलता, सार्थकता सीता, लक्ष्मण व राम यांच्या दर्शनाने झाली. ही त्रिमूर्ति म्हणजे भक्ति, वैराग्य व ज्ञान यांचा आदर्श.

'भगति ग्यान वैराग्य जनु सोहत धरे सरीर "

सगळ्यांत शेवटी कोळी, भिल्ल या लोकांची टोळी आली. जो आनंद देवांना रामचंद्रांचे दर्शन झाल्यानंतर झ ला. जो आनंद मुनिजनांना वाटेवर येता-येता झाला झ ला तो आनंद कोळी–भिल्ल मंडळींना नुसत्या श्रवणाने, की रामचंद्र चित्रकूट पर्वतावर वास करीत आहेत हे वृत्त ऐकून घरी बसल्या बसल्या झाला. त्यानी आपल्या बरोबर भरभरून कन्दमुळे, फळे घेतली व अशा प्रसन्न व मुदित चित्ताने त्यांची ह्या त्रिमूर्तींना भेट देण्यास ते बाहेर पडले की जणू ते काहो सोने लुटावयासच बाहेर पडले आहेत.

कंद मूल फल भरि भरि दोना ।
चले रंक जनु लूटन सोना ।।

वाटेत येता येता सुद्धां त्यांच्या बोलण्याचा विषय राम होता.

कहत सुनत रघुबीर निकाई ।

व ह्याचीच चर्चा करता करता आपल्या घरी परत आले.

प्रभु गुन कहत सुनत घर आये ।

रामचंद्रांचे दर्शन घेतेवेळी देवगणांना स्मरण झाले की राक्षसांच्या अत्याचारांमुळे त्यांची अगदी दैना उडालेली आहे त्यांचे हाल होत आहेत तेव्हा आपले हाल नाहीसे व्हावेत म्हणून त्यांनी रामचंद्रास विज्ञप्ति केली. मुनिजनां रामदर्शनाचे वेळी हे स्मरण झाले की त्यांनी त्रिकांड साधना केली त्याची सार्थकता, सफलता सीता, राम व लक्ष्मण यांच्या दर्शनाने झाली. परंतु भिल्ल, कोळी मंडळींना रामदर्शनाच्या वेळी कशाचेही स्मरण झाले नाही. ते उलट आपणां स्वतःसच विसरून गेले.

चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े ।

रामचंद्रांनीही ओळखले की ही मंडळी प्रेमानंदाने अगदी भरून गेली आहेत; त्यांना भाव समाधि लागली आहे.

राम सनेह मगन सब जाने ।

श्रीरामाने देवांना स्वर्ग देऊन संतुष्ट केले. मुनिजनांनां मोक्ष देऊन संतुष्ट केले. पण भिल्ल–कोळयांना स्वर्गही नको होता व मोक्षाचीही इच्छा नव्हती. ते फक्त प्रेमभावाचे पुजारी होते. त्यांना दुसरे काही एक नको होते.

जाहि न चाहिय कबहुं कछु ।।
तुम्ह सन सहज सनेहु ।।

अशा विशुद्ध प्रेमाचे ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत करण्यासाठींच मानसकारांनी कोळी–भिल्लांचे चित्र वर्णिलेले आहे. प्रेमामध्ये देणे, घेणे काही नाही. तेव्हा जेव्हा त्यांची भावसमाधि उतरली तेव्हा त्यांनी

हम सब भाँति करब सेवकाई

व

हम सेवक परिवार समेता ।
नाथ न सकुचब आयसु देता ।।।

एवढेच फक्त सांगितले. आपल्या स्वतःच्या सुखाची किंवा शांतीची गोष्ट त्यांच्या मनामध्ये आली नाही, डोक्यांत विचार आलाच नाही. म्हणून कवीने लिहिले की जो वेदवचनांना व मुनिजनांच्या मनाला अगम्य आहे ते करुणाधन प्रभु रामचंद्र भिल्लांचे वचन ऐकून असे आनंदित झाले की आपल्या लहान बालकाचे, अपत्याचे बोबडे बोलणे ऐकून पिता जसा आनंदित होतो, प्रसन्न होतो. कारण :—

रामहिं केवल प्रेमपियारा ।
जानि लेहु जो जाननि हारा ।।

अशा तऱ्हेचे ह्या प्रकरणांत विशुद्ध प्रेमाचे चित्रण आहे. या प्रकरणाचा उपसंहार करताना मानसकार लिहितात —

एहि विधि सिय समेत दोउ भाई ।
बसहिं विपिन सुर मुनिसुख दाई ।।

येथे देव व मुनि यांचे बरोबर भिल्ल–कोळचांचे नाव घेतलेले नाही. काकी प्रभू देवांना स्वर्ग व मुनिजनांना मोक्ष देऊन त्यांना सुखी करीत आहेत पण ह्या भिल्लकोळचांकडून तर स्वतःच प्रेमसुखाचा ते आस्वाद घेत आहेत. म्हणून ह्या तीन गोष्टींना एकाच पंक्तित स्थान दिलेले नाही. वस्तुतः प्रेम ही सर्वोत्कृष्ट वस्तु आहे. प्रभूला सुद्धा प्रेम हवेच आहे व भक्तांची कल्पना अशी आहे की त्या प्रेमाकरिताच, त्या वासनापूर्तीकरिता, ते 'अज' अवतार धारण करून अयोध्या व वृन्दावनच्या रस्त्या–रस्त्यांमधून फिरत असतात.

व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन विगत विनोद ।
सो अज प्रेम भगति बस, कौसल्याकी गोद ।।

अशा विशुद्ध प्रेमाची उपलब्धि हाच मानस–ग्रंथाच्या रचनेचा, ग्रंथ लिहिण्याचा उद्देश आहे.

मराठी अनुवादक – गणेश नीलकंठ पुरंदरे
ॲडव्होकेट, मुंबई.

रामचरित मानस मधील मूल सिद्धांत व तदनुषंगिक साधन प्रणाली

मानस किंकर – **श्री हृदयनारायण जी**

श्रीरामचरित मानस ग्रंथामध्यें मनुष्यमात्राच्या वैयक्तिक व सामूहिक अशा सर्व समस्यांवर जे उपाय सुचविलेले आहेत ते कित्येक युगे पथभ्रष्ट मानवाला पथ-दिग्दर्शन करण्याच्या कामी अतिशय उपयोगी पडणारे आहेत असा माझा दृढ विश्वास आहे. भगवान् शिव व पार्वतीमाता यांना साक्षी ठेवून मानसकार रामायणाची फलश्रुति खालील शब्दांत व्यक्त करीत आहेत.

जे एहि कथहिं सनेह समेता।
कहिहहिं सुनहहिं समुझि सचेता।।
होइहहिं रामचरन अनुरागी।
कलिमल रहित सुमंगल भागी।।
सपनेहुं साचेहुँ मोहि पर जौ हर गौरि पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहेउँ सब, भाषा भनिति प्रभाउ।।'

म्हणजे जो मनुष्य ह्या ग्रंथाचे मन लावून श्रवण करील, बुद्धि खर्च करून हा ग्रंथ समजून घेईल व चित्त लावून त्याप्रमाणें आचरण करील, त्याच्या जीवनामध्यें आमूलाग्र क्रान्तिकारी परिवर्तन झाल्याखेरीज राहणार नाहीं; त्याच्या बाह्य-जीवनामध्यें सर्व प्रकारचे मंगलच होईल— दैन्य मिटेल; सुखप्राप्ती होईल. त्याचे आंतरिक जीवन कलिमलरहित होऊन जाईल; दोष नाहींसे होतील; शान्ति मिळेल व त्याच्या ठिकाणीं रामचरणांविषयीं प्रेमभाव उत्पन्न होईल व तो लाभ म्हणजे सुख व शान्ति, स्वर्ग व मोक्ष यांपलीकडील लाभ आहे.

अन्यत्र गोस्वामीजींनी अशा प्रकारें लिहिले आहे—

'सुनु खगपति यह कथा पावनी।
त्रिविध ताप भव दोष दावनी।।'

म्हणजे भगवंताची ही पवित्र कथा तीन तऱ्हेचे ताप दूर करते. शरीरातून रोग, मनातून चिन्ता व बुद्धीतील भय काढून टाकून मनुष्याच्या जीवनामध्यें शक्ति, आनन्द व ज्ञान यांचा संचार करवून देते.

आतां रामायणामध्यें अशा तऱ्हेच्या समर्थनाला कांहीं आधार आहे कीं काय हे पहाणें जरूर आहे. आता हा पवित्र ग्रंथ, ज्याच्यामध्यें प्रभूच्या लीलेचे वर्णन आहे व ते रहस्य फक्त प्रभूच जाणतात व तेच ज्या माणसास त्याविषयीचे ज्ञान देतात तो सुद्धां ते थोडे फार जाणू शकतो, हे खरे; तरी पण माझ्या अल्पबुद्धीनुसार, गुरुकृपा व संतांचा आशिर्वाद यांमुळें मला जे कांहीं समजले आहे ते मी माझ्या अशा मित्रांपुढें ठेवीत आहे कीं जे रामचरित मानस ग्रंथांत प्रतिपादन केलेल्या सिद्धांतावर कांहीं साधना करून आपल्या जीवनांत परिवर्तन करूं इच्छितात.

मानसामधील हा सिद्धान्त आहे कीं कोणत्याही दुःखाच्या निवारणाकरितां आम्ही कांहीं उपाय करण्या अगोदर त्या दुःखाचे मूल कारण शोधून काढावे. जसे सर्दी झाल्यावर त्यावर काय औषध घ्यावे याचा विचार करण्याअगोदर अशी सर्दी आपल्याला झालीच कां याचे कारण प्रथम आपण शोधून काढले पाहिजे. ह्यासंबंधानें मानसाच्या एका प्रकरणांत स्पष्ट संकेत आहे. ते प्रकरण असे. लक्ष्मणानें भगवान् रामचंद्रांना प्रश्न विचारला आहे कीं दुःखाच्या निवृत्तीचे साधन जे ज्ञान व वैराग्य त्यांविषयीं प्रथम मला कांहीं दिग्दर्शन मिळावे.

'कहहु ग्यान बिराग अरु माया।
कहहु सो भगति करहु जेहि दाया।।
'ईश्वर जीवहि भेद प्रभु सकल कहहु समुझाइ।
जाते होइ चरन रति, सोक मोह भ्रम जाइ।।'

या प्रश्नाचे उत्तर भगवान् रामचंद्रांनी असे दिले कीं दुःखाचे मूल कारण माया हे होय. असे सांगून मायेच्या

संबंधानें प्रथम सांगून त्यानंतर त्याची निवृत्ति करविण्याचे साधन जे ज्ञान व वैराग्य हे समजावून देण्याचा त्यांनी प्रयत्न केला. ते म्हणतात.

थोरेहि मँह सब कहउँ बुझाई ।
सुनहु तात मन मति चितलाई ।।
मैं अरु मोर तात तैं माया ।
जेहि बस कीन्हें जीव निकाया ।।
गो गोचर जँह लगि मन जाई ।
सो सब माया ज्ञानहु भाई ।।

येथें भगवंतांनी मायेची तीन रूपे सांगितली आहेत. एक, "मी-माझे" ज्या कारणामुळें प्राण्यास संसारात दुःख भोगावे लागते व दुसरे "प्रपंच" म्हणजे जेथपर्यंत इन्द्रिये व मन यांचा व्यापार चालत असतो ती सारी माया.

मायेचा शाब्दिक अर्थ असा आहे. (मा–नाहीं, या–जो) जे नाहीं तरी पण दिसून येते ते. अंधारांत पडलेली दोरी साप वाटते पण ती सर्प नसते. यात दोन पक्ष आहेत. (१) जे आहे ते समजून येत नाहीं व (२) जे नाहीं ते खरे वाटते. म्हणजे दोरी ही पण तसे समजून येत नाहीं व साप खरोखरी नाहीं व तो वाटतो. श्रुति–प्रतिपादितसिद्धान्त हाच आहे.

'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'

म्हणजे ब्रह्म यथार्थाने सत्य आहे तरी सुद्धा (मोहामुळे) त्याची प्रचीति होत नाहीं व प्रपंच (जगत) प्रतीतीने खरा वाटतो पण तो यथार्थानें नाहीं–जसा दिसतो तसा नाहीं.

मानसामधील तत्त्वदर्शन हे असे आहे. त्याला मी प्रकाशवाद व विकारवाद म्हणतो व हे दर्शन जीवनामध्यें उपलब्ध करण्यासाठीं मानसामध्यें एका प्रणालीचे विशद विवेचन केले आहे. ती प्रणाली म्हणजे विश्वास व श्रद्धा यांचा मार्ग.

माझा असा विश्वास आहे कीं जर मानस ग्रंथातील हे जीवन-दर्शन–प्रकाशवाद व विकारवाद मनुष्यानें समजून घेतले तर त्याच्या जीवनामधील दुःख संपूर्णपणें नष्ट होऊन जाईल. प्रकाशवाद हा भावनाप्रधान साधकांसाठीं भक्ति ऊर्फ शरणागतीचा मार्ग आहे व विकारवाद हा विश्लेषणाचा, चिकित्सेचा मार्ग आहे व तो विचार-प्रधान साधकांसाठीं आहे. एका मार्गात सरळ अंतःकरणाचे साधक सत्संगद्वारा अदृश्य अशा परमेश्वराचे ठिकाणीं श्रद्धा ठेवून त्याचे दर्शनाचा लाभ घेतात व त्याचे प्रेम प्राप्त करून साऱ्या दुःखांतून मुक्त होऊन जातात. दुसऱ्या मार्गात बुद्धिप्रधान साधक दृश्य जगताचे अबाधित ज्ञान प्राप्त करून तपस्येचा मार्ग अवलंबितात व आत्म-दर्शन करून साऱ्या दुःखातून मुक्त होऊन जातात. दोन्हीही मार्गांनीं दुःखाचा नाशच होतो.

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धा स्वान्तस्थमीश्वरम् ।।

'उभय हरहिं भव सम्भव खेदा'

प्रकाशवादाच्या सिद्धांताचे खालील ओळीत प्रतिपादन केलेले आहे.

"यहि मह आदि मध्य अवसाना ।
प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना ।'

यावरून हे स्पष्ट होते कीं मानसग्रंथाच्या प्रारंभी, मध्यभागी व शेवटी म्हणजे सुरुवातीपासून शेवटपर्यंत भगवान् श्री रामाचेच प्रतिपादन केलेले आहे. याविषयीं म्हटलेले आहे.

'सहज प्रकाश रूप भगवाना ।'

म्हणजे भगवंत सहजप्रकाशरूप आहे. मानसग्रंथामध्यें दोन प्रकारच्या प्रकाशकांचे वर्णन आहे. एक पराश्रित प्रकाशक, उदाहरणार्थ दिवा. जो त्यांत ओतून ठेवलेल्या तूप, वात याच्यावर प्रकाश देत राहतो व वात संपल्यावर किंवा तूप संपल्यावर किंवा वात तुटल्यावर विझून जातो. दुसरा सहजप्रकाशक; कीं ज्याला बाह्य मदतीची जरूर असत नाहीं. जो स्वयं प्रकाशरूप आहे. अशा प्रकाशास मण्याची उपमा दिली गेली आहे. मणि रात्र, दिवस चोवीस तास कोणत्याही बाह्य उपकरणाखेरीज प्रकाश, उजेड देत असतो. मानसग्रंथामध्यें ज्या भगवंताचे प्रतिपादन केलेले आहे तो मण्यासारखा प्रकाशक आहे; जो स्वयं-प्रकाशी आहे; जो रात्रंदिवस उजेड देत राहतो व आंत बाहेर प्रकाशच प्रकाश देत असतो.

सहज प्रकाशरूप दिन राती । नहि तँह चहिय दिया घृत बाती।।

रामायणामध्ये ह्या सहजप्रकाशरूप परमेश्वराचे एक रूप व एक स्वरूप याचे वर्णन मिळते. स्वरूप प्रकृतीहून पलीकडे आहे तेथें मन वाणी पोचूं शकत नाहीत.

" राम सरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर ।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह ।।"

तसेच

"मन समेत जेहि जान न बानी ।
तरकि न सकहिं सकल अनुमानी ।।
महिमा निगम नेति करि कहई ।
जो निहुँ काल एक रस अहई ।।"

आत्मतत्त्वाबद्दल वेदांमध्येही असेच सांगितलेले आहे.

'यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।"
(तैत्तिरीय उपनिषद् २।४)

अशाच तऱ्हेनें रामायणामध्ये भगवंताचे एक रूप सुद्धा असेच वर्णिलेले आहे. वह घट-घट बासी हैं—

"सीय राम मय सब जग जानी
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ।।"
"जड़ चेतन जग जीव जत, ककल राममय जानि ।
बंदउँ सबके पद कमल, सदा जोरि जुग पानि ।।"

हाच अर्थ वेदांमध्ये खालील शब्दांत दिला आहे.

ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किंचिज्जगत्यां जगत् ।
(ईशावास्य उपनिषद्–१)

म्हणजे प्रभु जड व चेतनामय असे सर्व पदार्थ व्यापून आहे.

मानस ग्रंथामध्ये असे गृहीत धरले आहे की जो मनुष्य परमेश्वराच्या स्वरूपाचे चिन्तन करील तेव्हा त्याचे सारे दुःख नाहीसे होईल. मानसग्रंथामध्ये चिन्तनाला सुमिरन व सेवा या अर्थी भजन शब्द वापरला आहे. साधकाने सदैव परमेश्वराचे सुमिरन व भजन करावयास पाहिजे. या ग्रंथानुसार विपत्ति तोपर्यंत टिकून राहते जोपर्यंत मनुष्य सुमिरन व भजन करीत नाही. हाच अर्थ खालील ओळी दर्शवितात.

कह हनुमन्त विपति प्रभुसोई । जब तब सुमिरन भजन न होई ।।"

सुमिरन या विषयावर चर्चा नारद व मनुसतरूपा या प्रकरणांत मिळते. सुमिरनामध्ये परमेश्वराच्या कोणत्याही एका नामरूपाच्या आधाराने एका बिन्दूवर मन केंद्रित केले जाते.

निरखि सैल सरि विपिन विभागा ।
भयेउ रमापति पद अनरागा ।।
सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी ।
सहज विमल मन लागि समाधी ।।

अथवा

"द्वादश अक्षर मन्त्रवर, जपहिं सहित अनुराग ।
बासुदेव पद पंकरुह, दम्पति मन अति लाग ।।"
" करहिं अहार साकफल कन्दा । सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानंदा।।'

सुमिरनाच्या ह्या प्रक्रियेमध्ये मनास सर्व बाजूंनी काढून घेऊन एका बिन्दूवर केंद्रित केले जाते. त्याला एकाग्रता म्हणतात. व त्यानंतर एकाग्रतेची अशी सघन अवस्था येते की ज्या अवस्थेमध्ये जर मनाला लय व विक्षेप अशा अवस्थांनी बाधा होत नसेल तर तो बिन्दू सुद्धा स्थिर होत नाहीं, निसटून जातो व मन निर्विषय होऊन जाते. सुमिरनच्या या अवस्थेस चिन्तन किंवा ध्यानसुद्धा नाव दिलेले आहे. व त्याची व्याख्या खालीलप्रमाणे आहे—

' ध्यानं निर्विषयम् मनः "
(सांख्य सूत्र –६।२५)

सुमिरनच्या साधनेमध्ये कधी मन बिन्दूपासून दूर होऊन स्वैरा–वैरा भटकू लागते तर कधीं कधीं झोप येऊं लागते की ज्याला लयावस्था म्हणतात. मनाचे हे दोन मल आहेत व जर मन ह्या दोन मलांविरहित झाले तर

"सहज विमल मन लागि समाधी"

अशी अवस्था प्राप्त होईल म्हणजे अहंकाराचा विलय होऊन जातो. ह्या स्थितीमध्यें मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार सर्वच विलीन होऊन जातात. ही अवस्था साधनेनें प्राप्त होऊ शकते असे नारद, मनु महाराज व शिव यांच्या प्रकरणात दिलेले आढळून येतें.

"शंकर सहज सरूपसम्हारा। लागि समाधि अखंड अपारा ।।"

प्रेमातिरेकामध्ये सुद्धा ही अवस्था विनाप्रयास प्राप्त होऊ शकते. जसे—

परम प्रेम पूरन दोउ भाई ।
मन बुद्धि चित्त अहमिति बिसराई ।।

शबरीने ही अवस्था अगदी सहज अशीच प्राप्त करून घेतली होती.

स्याम गौर सुन्दर दोउ भाई ।
सबरी परी चरन लपटाई ।।
पुनि पुनि पद–सरोज सिर नावा ।
प्रेम मगन मुख वचन न आवा ।।

अशी अवस्था सुतीक्षणाला सुद्धा आपोआप आली होती.

दिसि अरु विदिसि पंथ नहिं सूझा ।
को मैं चलेऊँ कहा नहिं बूझा ।।

भिल्ल, कोळी यांच्या बाबत सुद्धा अशीच गोष्ट घडून आली.

करहिं जुहार भेंट धरि आगे ।
प्रभुहि विलोकहिं अति अनुरागे ।।
चित्र लिखे जनु जँह तँह ठाढ़े ।
पुलक शरीर नयन जल बाढ़ें ।।
राम सनेह मगन सब जाने ।
कहि प्रिय वचन सकल मनमाने ।।

ही अवस्था प्राप्त झाल्यावर भक्ताला आपल्या बुद्धीमध्ये एक अपूर्व प्रकाश प्रवेश करीत असल्याचा अनुभव होतो, ज्यामुळे द्वैतभावना नाहीशी होत जाते व सर्वत्र एकच सत्ता विद्यमान असल्याचे दिसू लागते व त्याबरोबर भय ही वस्तु राहातच नाही. त्याबरोबर कर्तृत्वभाव नाहीसा होऊ लागतो. कारण बन्धनाचे कारण कर्म नसून कर्तृत्व हे आहे.

तत्र को मोहः कोः शोकः एकत्वमनुपश्यतः ।
(ईशावास्य उ०)

मनामध्यें एक अद्‌भुत आनंद भरून जातो. त्यामुळें अगदी कितीही मोठे जरी दुःख झाले तरी भक्त विचलित होत नाहीं.

' यस्मिन् स्थितौ न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ।
(भगवद् गीता)

व असा प्रत्यक्ष अनुभव होऊं लागतो कीं दुःखाचे कारण परिस्थिति हे नसून आसक्ति हे आहे. की जी आसक्ति त्या आनंदात आपोआप नाहींशी होऊन जाते. शरीरामध्येही अथक शक्तीचा संचार होऊ लागतो व साधकास असा अनुभव येऊं लागतो कीं शक्तीचे केंद्र परमेश्वर आहे; भोजन नव्हे. आन्तरिक शक्ति जागृत झाल्याने त्याचे सारे रोग बरे होतात. म्हणून हे त्रिविध ताप मिटण्याचा संबंध मानसग्रंथामध्ये परमेश्वराच्या अनुरागाशी लावलेला आहे. व परमेश्वरचरणांबद्दल अनादर दाखविल्याने (त्याच्या चरणांबद्दल बिलकुल प्रेम नसल्या कारणाने) रोग, वियोग, दैन्य, मालिन्य यांचे पुनरागमन होते ही गोष्ट शंकरांनी भगवान् श्री रामाची स्तुति करते वेळीं स्पष्ट केली आहे .

बहु रोग वियोगन्हि लोग हए ।
भवदंघ्रि निरादर के फल ये ।।
अति दीन मलीन दुःखी नित ही ।
जिनके पद–पंकज प्रेम नहीं ।।
भव-सिन्धु अगाध परे नर ते ।
पद–पंकज प्रेम न जे करते ।।

अहंकाराच्या ह्या विलयावस्थेचे सूफी सन्तांनीसुद्धा फार बहारीचे वर्णन सुंदर शब्दांत केलेले आहे.

वह सिजदा क्या रहे एहसास जिसमें सर उठाने का ।
इबादत और बकैदे होश तौहीने इबादत है ।।
किंवा :
बे खुदी छा जाये ऐसी दिल से मिट जाये खुदी ।
उसके मिलने का तरीका अपने खो जाने में है ।।

एका दुसऱ्या कवीने हाच भाव अशाच प्रकारे खालील शब्दांत व्यक्त केला आहे.

झलक होश की है अभी बेखुदी में,
बड़ी खामियां है मेरी बन्दगी में ।
कैसे कहूँ कि खत्म हुई मंजिले फना,
इतनी तो खबर है कि मुझे कुछ खबर नहीं ।।

अहंकाराची वृद्धि होत जाणे ही उपासनामार्गामधील पहिली व शेवटची रुकावट आहे हे खरे आहे.

चश्म बन्दो गोश बन्दो लब बे बन्द ।
गर नबीनीं रुये हक बर मा बे खंद ।।

भजनासंबंधी मानसग्रंथाची अशी विचारसरणी आहे की परमेश्वर सर्व ठिकाणी आहे असे समजून सर्वांची सेवा व सर्वांवर प्रेम करणे म्हणजे भजन. भगवान रामचंद्राने आपल्या मित्रांना आपल्यापासून निरोप द्यावयाच्यावेळी स्पष्ट म्हटलेले आहे.

"अब गृह जाहु सखा सब, भजेहु मोहि दृढ़ नेम ।
सदा सर्वगत सर्वहित जानि, करेहु, अति प्रेम ।। "

म्हणजे परमेश्वराची सर्वव्यापकता ध्यानांत घऊन स्वार्थपरता सोडून देऊन परमेश्वराला स्मरून सर्वांची सेवा करावी.

सेवा म्हणजे परमेश्वराच्या व्यापकत्वाबद्दल क्रियात्मक आदर व साधनेची आधारशिला आहे. पण एका गोष्टीपासून आपणांस दक्षता घेणे जरूर आहे ती ही की सेवा करीत असतांना आपल्याला त्याबद्दल अहंकार होता कामा नये. भुकेलेल्यांना अन्नदान करते वेळी आपण असे समजू नये कीं समाजानें आपल्याला मोठा दानशूर म्हणावे ! लोकांनी दाता, दानशूर अशा नांवाने आपला उल्लेख केला म्हणजे आपली छाती फुगून जाऊं नये. आतां येथें ज्या सेवेसंबंधी आम्ही बोलत आहोत त्या सेवेचे स्वरूप कितीही उच्च असो, उदाहरणार्थ भुकेलेल्या भिकाऱ्याला अन्नदान करतेवेळी, तरी पण आपल्या मनातील भावना कोणत्या प्रकारची आहे हा मुख्य प्रश्न आहे.

भावना कशी असावी याबद्दल बायबलमध्यें येशू ख्रिस्ताने आपल्या शिष्यांसमवेत चर्चा करीत असतांना अगदी स्पष्ट शब्दांत दर्शविलेले आहे. येशू आपल्या शिष्यांवर अत्यंत प्रसन्न होऊन त्यांना उद्देशून म्हणतो, "ज्या वेळी मला भूक लागली होती त्या वेळी तुम्ही मला खावयास दिले; ज्या वेळी मला तहान लागली होती तेव्हा तुम्ही पाणी प्यावयास दिले; ज्यावेळी मी नागडा उघडा होतो त्या वेळी तुम्ही मला अंगावर गुंडाळावयास वस्त्र दिले." शिष्यांना मोठे आश्चर्य वाटले; कारण त्यांनी कधी येशूला असे कांहीं खावयास वगैरे तर कांहीं दिले नव्हते. जेव्हां त्यांनी येशूला विचारले की, "आम्ही तुम्हांला अन्न, वस्त्र वगैरे कसे व केव्हां दिले तेव्हां येशूने उत्तर केले, "ज्या वेळी तुम्ही आपल्या लहानांतल्या लहान भावाला असे अन्न वस्त्र दिले त्या वेळीं ते मला मिळाले." लोकांत जसे साधारणपणे समजले जाते असे सेवेचे स्वरूप नाहीं. साधक जेव्हा दुसऱ्यास मदत करतो त्यावेळी त्यानें असे समजतां कामा नये की, "हा दरिद्री आहे, ह्याला भूक लागलेली आहे की हा नागडा–उघडा आहे." त्यानें आपल्या मनांत अशी भावना आणावयास हवी की जी भरत वनांत आल्यावर भिल्ल–कोळी वगैरेनी अयोध्यावासी जनांप्रत दाखविली.

"तुम प्रिय पाहुन बन पगु धारे ।
सेवा जोग न भाग हमारे ।।"

अशी सेवा करण्याची संधि मिळाली म्हणून साधक परमेश्वराचे आभार मानीत आहे. साधक अशा मलिन, ज्याने अंगावर चिंध्या घातल्या आहेत अशा दरिद्री माणसाला पाहून सेवा करण्याच्या व्रतापासून माघार घेत नाहीं, हटत नाहीं, कारण

जब से सुना है यार लिबासे बशर में है ।
अब आदमी कुछ और हमारी नजर में है ।।

अशीच नजर बनून गेल्यावरही गांधीजींनी एका कुष्ठरोग्याची आपल्या हातांनी प्रेमाने सेवा केली होती. कुष्ठरोग्याच्या रूपाने आलेल्या प्रभूला आमच्या सेवेची जरूरी नाहीं, उलट त्याची सेवा करावयाची आम्हाला अशी संधी मिळाली, असे सद्‌भाग्य प्राप्त झाले अशा संधीची आम्हांला जरूर होती.

अशा प्रकारची सेवा "भजन" केल्यानें मनुष्याच्या जीवनामध्ये कोणत्याही तऱ्हेचे दैन्य राहात नाहीं कारण की सेवकच सेव्य बनून जातो. तेव्हां सुमिरन व भजन केल्यानें मनुष्याची अशांति व त्याचे दैन्य नष्ट होऊ शकते. ह्या सिद्धान्ताचा जर साधकास आपल्या जीवनामध्यें प्रत्यक्ष अनुभव करून घेण्याचा असेल तर त्यानें दररोज २४ तासांतून अर्धा तास एखाद्या एकान्त ठिकाणीं सूर्योदयाच्या अगोदर पूर्वाभिमुख होऊन किंवा परमेश्वराची कोणतीही मूर्ति किंवा प्रतिमा समोर ठेवून बसावे व परमेश्वराच्या कोणत्याही एका नांवावर किंवा रूपावर मन एकाग्र करावे. पुष्कळ दिवस असा सतत अभ्यास केल्यावर मनामधील दोन्ही दोष, लय व विक्षेप नाहींसे होतात व अहंकाराच्या विलयाची अवस्था येऊं लागते. या साधनेची दोन अंगे आहेत. एक सेवा व दुसरे तप. सेवेचा अर्थ असा आहे कीं आपल्या पैशाचा कमीत कमी एक दशांश व वेळ, शक्ति यथासंभव जनता-जनार्दनाच्या सेवेमध्ये निस्वार्थ भावाने खर्च करावा. मनुष्य दहा इंद्रियांकडून सुखाची अपेक्षा करतो म्हणून दशांश भागाचा नियम सांगितला आहे. तपामध्ये भोजन भोजन कमी करणे किंवा अन्न कमी करणे याची आवश्यकता असते. ही साधना करण्याच्या दृष्टीने जेवणांत भाज्या, फळें, कंदमुळे यांचा अंतर्भाव करणे उपयोगी ठरते.

या संबंधी थोडा असा उल्लेख करावयाचा आहे की माझ्या पुष्कळशा मित्रांनी आपल्या योग्यतेनुसार, सामर्थ्यानुसारच साधनत्रयीचा, चिन्तन, सेवा व तप यांचा अभ्यास केला आहे. ह्याच साधनत्रयीला बायबलमध्ये Prayer, Charity and Fasting व कुराणामध्ये नमाज, जकात व रोजा असे व गीतेमध्ये यज्ञ, दान व तप असे व मानसग्रंथामध्ये सुमिरन, अभोग व उपवास असे म्हणतात. माझ्या मित्रांचा प्रत्यक्ष अनुभव आहे कीं त्यांच्या आयुष्यांतून औषध वगैरे घेतल्याखेरीज दुःख व भय नाहींसे झाले आहे; परिस्थितीत परिवर्तन घडून आलेले आहे व त्यांचे मन कोणतीही परिस्थिति विचलित करूं शकणार नाही असे दृढ झाले आहे. साधनेस सुरुवात करण्यापूर्वी ज्या गोष्टी, जे प्रसंग त्यांचे मन विचलित करीत असत त्या गोष्टी, ते प्रसंग आतां त्यांच्यावर कांहीही परिणाम करूं शकत नाहींत आणि ज्या गोष्टींचे त्यांना भय वाटत असे तसे आतां वाटत नाही. या संबंधाने ही गोष्ट सांगणे जरूर आहे कीं आम्हीं प्रस्तुत लेखांत रामचरित मानस ग्रंथांत प्रतिपादित अशा केवळ भगवंताचे सुमिरन व भजन या गोष्टींचीच चर्चा करीत आहोत. आम्ही कोणत्याही तऱ्हेच्या गुप्त साधनेबद्दल किंवा साम्प्रदायिकतेबद्दल बोलत नाहीं किंवा अशी कोणतीही साधना करीत नाहीं कीं करवीत नाहीं कीं जी साधारणपणे सर्वांना करता येणार नाहीं : माझ्या मित्रांचा प्रत्यक्ष अनुभव आहे कीं ह्या साधनेनें शरीरात शक्ति, मनामध्ये आनंद व बुद्धीमध्ये ज्ञान यांचा संचार होत असल्याचे त्यांच्या प्रत्ययास आले.

इंद्रियामध्ये कमजोरी, मनांत दुःख व बुद्धीला भय जे वाटू लागते त्याचे कारण काम म्हणजे वासना हे होय. म्हणजे तापत्रयाचे कारण काम किंवा वासना. वासनेचा क्षय झाला म्हणजे मनुष्य ह्या त्रितापापासून मुक्त होतो. त्याचे सर्व रोग, दुःखे व भय हीं नाहींशी होतात. मानसग्रंथामध्ये सर्व दुःखांचे मूळ कारण मोह असे दर्शविले आहे.

" मोह सकल व्याधिन कर मूला ।।"

मोह म्हणजे अंधःकार. अंधारात जमिनीवर पडलेली दोरी जशी सापासारखी वाटते व या चुकीच्या समजुतीमुळे दोरी ही साप आहे असे चुकीचे वाटू लागते व तो चावेल या भीतीनें मनुष्य तेथून पळू लागतो व त्यामुळे त्याच्या हृदयात चटकन धडकी भरते व तो पळतां–पळतां कोलमडून पडतो, त्याच प्रकारें मोहरूपी अंधःकाराच्या कारणानें चुकीचे ज्ञान, चुकीची समजूत व चुकीची क्रिया घडून येते व त्यामुळे माणसास दुःख प्राप्त होते. आणि ह्या सगळयाचे मूळ कारण मोह किंवा अंधःकार हेच होय. ह्या मोहाच्या कारणामुळें मनुष्याच्या समजुतीमध्ये शक्तीचा संबंध अन्नग्रहणाशी येतो. व अन्न जितके पौष्टिक तितकी शक्ती अधिक वाढेल असे वाटू लागते. त्यामुळें मनुष्य स्वाभाविकपणें जास्त अन्न खाऊं लागतो व परिणामीं शरीरांत मलसंचय वाढूं लागतो व कालान्तराने त्याचे कोणत्या तरी रोगांत परिवर्तन होते. थेट ह्याच प्रकारें मोहाच्या कारणामुळे पैसा व पैशाच्यामुळे वस्तुसंग्रह मनुष्य करीत राहतो व अशा वस्तूंच्या संग्रहाने सुख मिळते असे तो धरून चालतो व धन खर्च करून सुख मिळेल ह्या आशेने तो धनसंग्रह करूं लागतो व परिणामीं त्याच्या मनांत विक्षेप उत्पन्न होतो व तो विक्षेप चिन्तेच्या रूपाने प्रकट होतो. तसेच लिहिण्या–वाचण्यानें ज्ञान प्राप्त होते असे समजून जितके आपण जास्त शिकूं तितके अधिक ज्ञान आपल्याला प्राप्त होईल या समजुतीनें मनुष्य अधिक अध्ययन करूं लागतो. अधिक अध्ययन केल्यानें बुद्धीमध्यें ज्ञानाच्या ठिकाणीं अहंकार उत्पन्न होतो व वाढूं लागतो. मनुष्याच्या आवागमनाचे मूळ कारण अशा प्रकारें अहंकार हे आहे. म्हणून असे म्हटले आहे कीं शरीरांत मल, मनामध्यें विक्षेप व बुद्धीमध्यें अहंकार वाढल्यानें परिणामीं रोग, दुःख व भयनामक तापत्रयी निर्माण होते. या तापत्रयीतून मुक्त होण्याचा मार्ग हा आहे कीं आम्हीं जेवण, धन व अध्ययन यांच्याविषयी गंभीरपणें विचार करावा. शोधतां शोधतां आपणांस जगामध्यें अशी माणसे भेटतील की जीं जास्त खाऊन आपल्या अंगीं रेडचाचे सामर्थ्य आणतील तर त्याचप्रमाणें ती माणसे नाना तऱ्हेच्या भयंकर रोगांनी ग्रस्तही झालेली असतील व त्यामुळे आयुष्य पुरते भोगण्यापूर्वीच स्वर्गलोकाचा रस्ता धरतील. ह्याच्या उलट आपणास जगामध्ये अशीही माणसे भेटतील की; मग ती अगदी थोडी कां असेनात कीं जी शक्तीचा संबंध भोजनाशी न मानता भोजनामध्यें संयम

पाळतात व त्या संयमाच्या पालनानें शरीरांत एका आन्तरिक शक्तीच्या जागृतीचा अनुभव करतात. व परिणामीं रोग-मुक्त होऊन खालील वेद वाक्यानुसार–

'जीवेम शरद्‌ः शतम्,

आदीनाः स्यां शरदः शतम् ।'

निरोगी राहून शतायुष्य भोगतात. डॉक्टर बारबारा मूर, एम्. डी. या नांवाच्या एक रूसी डॉक्टर महिला आहेत. त्या भारतात जवळजवळ २८ वर्षांपूर्वी (आज साल १९६२) आल्या व हिमालय पर्वतातील कित्येक योगी महात्म्यांची भेट घेऊन त्यांनी सांगितलेल्या कांहीं गोष्टींचा प्रत्यक्ष आचरणांत प्रयोग केला. त्यांत दर-रोज थोडा थोडा आहार कमी करीत जाणें हा एक प्रयोग होता. त्या प्रयोगाविषयी त्या लिहितात कीं प्रथम तीन वेळ त्या खात होत्या. त्या ३ वेळांच्या ऐवजी २ वेळ त्यांनी खावयास सुरुवात केली व पुढे १च वेळ खायला लागल्या. त्यानंतर त्यांनी अन्न खाण्याचे सोडून देऊन फक्त पालेभाज्या, फळे व पानें याच्यावर काम चालविले. शेवटी फक्त रस किंवा थोडी मध यांचे सेवन थोडया प्रमाणात सुरू केले. २६ वर्षे त्यांनी असे प्रयोग केले. प्रयोगान्ती त्यांचे असे म्हणणें आहे की आतां त्या फक्त पाण्यावर महिनेन् महिने राहतात. तसेच स्वित्झर्लंड व इटली मधील बर्फावर किंवा बर्फाच्या पाण्यावर नित्य राहतात. दररोज ४०–५० मैल चाल-तात व ८,००० फूट उंचीच्या पहाडावर चढतात, उतर-तात पण थकवा असा त्याना कधीच वाटत नाही. त्यांचे असे म्हणणे आहे की, वर सांगितलेले प्रयोग करून अनु-भवांती त्यांना असे कळून चुकले आहे की शक्ति किंवा शरीरांतील उष्णता यांचा आहाराशी काही संबंध नाहीं. या आपल्या अनुभवाचे त्यानीं शास्त्रीय दृष्टया विवे-चन करून असे दर्शविले की हवा व सूर्याचे किरण यांमध्ये अशी काही तत्त्वें आहेत कीं ज्याचे ज्ञान वैज्ञा-निक यंत्राच्या द्वारे होऊ शकत नाही पण ज्याचे ग्रहण मानव शरीर करू शकते व तसे ग्रहण केल्यावर शरीर सशक्त, बळकट होऊ शकते; श्रमाचे काम करू शकते व म्हातारपणी सुद्धा तरुणासारखे राहते. डॉक्टर बारबारा मूर आज ६० वर्षांच्या आहेत पण त्यांचे वय ३० वर्षा-हून जास्त दिसत नाही व ह्या वयांतही त्या नित्य ४०-५० मैल चालतात. काही थोडयाच दिवसापूर्वी त्यांनी अमेरिकेत सॅन् फ्रॅन्सिस्को ते न्यूयॉर्क असा ३३५० मैलांचा प्रवास पायी केला.

मीही या संबंधी काही प्रयोग केले आहेत, त्या-वरून मलाही असे कळून आले आहे की काही दिवस केवळ हवेवर, काही आठवडे पाण्यावर व काही वर्षां-पर्यंत पालेभाज्या व फळे याचेवर सहज राहता येणे शक्य आहे. अशा आहाराने शरीरामध्ये आरोग्य, किंवा मेहनत करण्यासाठी ताकद व म्हातारपणीसुद्धा तारुण्य याचा अनुभव मिळू शकतो. माझे काही मित्र तर काही एक न खाता ६ दिवसपर्यंत सतत आपले काम करीत राहतात व कधीही कोणत्याही प्रकारची कमजोरी त्यांना वाटत नाही. मानसग्रंथामधील सिद्धांत जनता जर बरो-बर समजून घेऊन त्याचे प्रत्यक्ष आचरणात प्रयोग करून पाहतील तर व्यक्ति, कुटुम्ब, समाज, देश किंबहुना विश्व या सर्वांचे कल्याण होऊ शकेल.

शोधणाऱ्याला अशीही व्यक्ति सहज भेटू शकेल की ज्यांच्याजवळ पैसा भरपूर असूनही त्यांचे मन नेहमी अशान्त व चिन्ताग्रस्त राहते व असेही लोक भेटतील; मग त्यांची संख्या अगदी थोडी कां असेना, की जे अगदी दरिद्री असूनही सर्वथा चिन्तामुक्त असतील व एका प्रकारच्या अन्तरिक आनंदाचा सतत अनुभव घेत असतील. एवढेच नव्हे तर ज्यांच्या सहवासांत येणाऱ्या लोकांना सुद्धा निदान थोडा वेळ तरी शान्तीचा अनु-भव मिळत असेल.

ह्यासंबंधाने आम्ही जे प्रयोग केले आहेत त्यावरून आम्हाला असे आढळून आले आहे की आपल्या वेळाचा, शक्तीचा व पैशाचा एक दशांश भाग अगदी निःस्वार्थी भावाने परमेश्वरास स्मरून जनता जनार्दनाची सेवा करण्यात, विशेष करून बालक, दीनजन व साधुजन यांच्या सेवेत खर्च केला तरीही मन परिस्थितीच्या अतीत होऊन जाते व परिस्थितीत बिघाड झाला तरी मनाची शांति ढळत नाही; जीवनांतले दैन्य नाहींसे होते व कोणत्या ना कोणत्या तरी मार्गाने परमेश्वर आवश्यक गरजा पुऱ्या करतो. आणि हा असा अनुभव उत्तरोत्तर वाढतच जात आहे.

अशा प्रकारचे संशोधन करणाऱ्यांना अशा व्यक्तिही काही कमी मिळत नाहीत की ज्यांना शालेय शिक्षण (Academic Education) पुस्तकी शिक्षण मिळाले नसूनही ते प्रकाश व ज्ञान यांच्या ग्रहणाला पात्र ठरले आहेत. पुष्कळसे साधु महात्मे, ज्यांची गणना ज्ञानी जनांमध्ये होते, हे तसे लौकिकार्थाने अशिक्षितच होते. अशा उच्च कोटीच्या व्यक्तींमध्ये स्वामी शरणानन्दजी महाराज हे आहेत. त्यांचे शाळेतील शिक्षण फक्त ४थ्या यत्तेपर्यंत झालेले आहे पण त्यांची बुद्धि फार प्रखर आहे. रमण महर्षि, कीं ज्यांचा काल काही वर्षापूर्वीच घडून आला त्यांची गणना तर ह्या युगातील महान ज्ञानी लोकांमध्ये होत असे. त्यांचे शाळेतील शिक्षण असे झालेलेच नव्हते. परमहंस रामकृष्ण, जे जगप्रसिद्ध स्वामी विवेकानंदांचे गुरु होते ते ह्याच कोटीमध्ये येत होते. यावरून निष्कर्ष असा निघतो कीं, शक्ति, ज्ञान व आनंद यांचा संबंध आजकालचा मनुष्य जसा समजतो तसा भोजन, अध्ययन व धन यांच्याशी बिलकुल नाही. व ह्याच कारणामुळे; ह्याच अज्ञानामुळे, तो रोग, दुःख व भीति यांनी ग्रस्त आहे. या सगळ्यांचा संबंध काही एका सत्तेशी आहे की जी सत्ता प्रत्येक मनुष्याच्या मध्ये विद्यमान आहे. आपण दररोज असे पाहतो की जेव्हा रात्री आपण आपल्या बिछान्यावर शिथिल होऊन पडतो तेव्हा आपण पायाने चालणे बंद करतो, हाताने धरणे, पकडणे बंद करतो व निद्रावश होतो. (डोळे, कान आदि बाह्य इंद्रियांचे काम बंद करून टाकतो) व स्वप्नामध्ये बुद्धीकडून कार्य करून घेऊन नंतर गाढ झोप घेतो. तेव्हा आपल्या शरीराचा थकवा जाऊन आपल्या शरीरांत नवी शक्ती व नवा तजेला आल्याचा आपण अनुभव करतो. तसेच मनाची चिन्ता विसरून जाऊन 'मला खूप छान झोप लागली.' असे म्हणतो. ह्या अवस्थेमध्ये त्या केन्द्रस्थानाचा स्पर्श झाल्याने आपल्या शरीरात व मनात शक्ति व आनंद यांचा संचार होतो. ज्याप्रकारे गाढ झोप लागल्यावर शरीर, मन व बुद्धि यांची गति स्थगित होते त्याच प्रकारे अशी निष्क्रिय स्थिति जागृत अवस्थेमध्ये सुद्धा अभ्यासाने आणली जाणे शक्य आहे व जो मनुष्य या साधनेचा अभ्यास करील त्याचा अंतरंगातील केन्द्राशी संस्पर्श होईल व परिणामी त्यास शक्ति, ज्ञान आणि आनंद यांचा लाभ होईल. मानसग्रंथामध्ये ह्या साधनेस तप अशी संज्ञा दिलेली आहे.

उर धरि उमा प्रानपति चरना ।
जाइ विपिन लागीं तप करना ।।
अति सुकुमार न तनु तप जोगू ।
पति पद सुमिरि तजेउ सब भोगू ।।
नित नव चरन उपज अनुरागा ।।
बिसरी देह तपहिं मनु लागा ।।
सम्वत् सहस मूल फल खाये ।
सागु खाइ सत वरष गँवाये ।।
कछु दिन भोजन बारि बतासा ।
किए कठिन कछु दिन उपवासा ।।

ह्या तपाची तीन अंगे आहेत ती अशी :——

१. चित्तवृत्तीचा निरोध (सुमिरन) २. इंद्रिय-संयमन (अभोग) ३. जेवणाचा क्रमाक्रमाने परित्याग (उपवास)

ह्या साधनेच्या अभ्यासाने मनुष्याचे सर्व मनोरथ पूर्ण होतात. "भए मनोरथ सुफल तब सुनु गिरिराज कुमारि ।" व त्याच्या शरीरामध्ये अखंड शक्ति, मनामध्ये अखंड आनंद व बुद्धीमध्ये अखंड ज्ञान यांचा संचार होऊ लागतो व ह्या आयुष्यातच त्याला सर्व प्रकारच्या शान्तीचा लाभ होतो. तसेच हे शरीर सोडल्यावर त्यास मोक्षाची प्राप्ति होते.

सारांश मानसग्रंथामध्ये प्रतिपादन केलेल्या वर दर्शविलेल्या दोन्ही मार्गांनी (१) सुमिरन व भजन व (२) तपामुळे मनुष्याच्या दुःखाची संपूर्ण निवृत्ति व सुखाची उपलब्धि होते. व त्याच्या शरीराचा, मनाचा व बुद्धीचा विकास घडून येतो. तपाच्या द्वारे मनुष्याच्या वैयक्तिक समस्या, सेवेच्या द्वारे दैन्य-निवृत्ति व त्यामुळे सामाजिक किंवा सामूहिक समस्या दूर होतात व त्याच्या जीवनामध्ये कोणत्या ही तऱ्हेचे दुःख असे राहत नाही.

मराठी अनुवादक :— गणेश नीलकंठ पुरंदरे,
ॲडव्होकेट मुंबई.

———

मनुष्याच्या सर्वांगीण विकासाची रूपरेखा

– परमपूज्य श्री हृदयनारायण (योगीजी)

रामायणाचा आपल्या दैनिक जीवनाशी घनिष्ठ संबंध आहे. रामायणांत जागोजागी आश्वासन दिलेले आहे कीं त्या ग्रंथाच्या अध्ययनानें आपल्या शारीरिक, प्राणिक, मानसिक, बौद्धिक व आध्यात्मिक अशा सर्व स्तरांचा सर्वांगीण विकास होऊं शकतो. रामचरित मानसाच्या पहिल्या पाच सोरठांचा मनुष्याच्या ह्या पाच स्तरांशीं संबंध आहे व मानस-प्रतिपादित साधनप्रणालीच्या शास्त्रीय प्रयोगाद्वारा मनुष्याच्या ह्या पाच स्तरांचे अविद्या-जन्य असे पांचीही विकार म्हणजे रोग, थकवा, चिन्ता, भय व द्वैतभावना यांचा समूळ नाश होऊन भगवत्कृपेनें मनुष्याच्या जीवनामध्यें अखंड स्वास्थ्य, अखंड शक्ति, अखंड आनंद व अखंड प्रेम यांचा संचार होऊं शकतो.

रामचरित मानसाचा प्रतिपाद्य विषय भगवान राम हा आहे.

एहि महुँ आदि मध्य अवसाना ।
प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना ।।

परंतु श्री रामचंद्राच्याच शक्तीचा अनेक देवतांच्या ठिकाणीं प्रादुर्भाव झालेला आहे. त्यातील पाच प्रमुख देवता म्हणजे गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव आणि गुरु. मानसाच्या सुरवातीच्या पाच सोरठांमध्यें ह्या देवतांना अभिवादन केलेले आहे. ह्या पाच देवतांचा संबंध मानवाच्या जीवनाच्या पाच स्तरांशी आहे. ह्यांना पंचकोश अशीही संज्ञा आहे.–अन्नमय (Phisical), प्राणमय (Vital), मनोमय (Emotional), विज्ञानमय (Intellectual), व आनन्दमय (Spiritual). ह्या पांच कोशांमध्येंच मोहाचे कारण जे पंच विकार हे आहे व हे पंच विकार भगवत् प्रकाश नाहींसे करून टाकतो. ह्या पांच देवतांचे स्थान मनुष्याच्या शरीराच्या पांच प्रमुख चक्रांमध्यें आहे. ती पांच चक्रें म्हणजे मूलाधार, मणिपूर, अनाहत, आज्ञा व सहस्त्रार. ही चक्रें क्रमशः गुदद्वाराच्या वरती, नाभि, हृदय, भ्रूमध्य व मस्तकाचा मध्यभाग (ब्रह्मरंध्रामध्यें) या ठिकाणीं आहेत. पांच देवतांमधील प्रत्येक देवता एकेका तत्त्वाच्या वैशिष्ठ्याची अधिष्ठात्री देवता आहे. ती पाच तत्त्वे म्हणजे पृथ्वी, तेज, आप, वायू व आकाश हीं. ह्या पांच देवतांच्या कृपेनें मनुष्याच्या शरीरामध्यें आरोग्य, इंद्रियांमध्यें शक्ति, मनामध्यें आनंद, बुद्धींत ज्ञान व अहंभावनेमध्यें प्रेम निर्माण होते. व त्यामुळें

"दुख लवलेस न सपनेहुँ ताके"

अनुभूति आपोआप प्राप्त होते. ही स्थिति प्राप्त करून घेण्यासाठीं रामायणामध्यें ज्या पंच-सूत्री साधन-प्रणालीचे प्रतिपादन केलेले आहे त्या साधन-प्रणालीचे पाच अवयव आहेत. ते म्हणजे–समतोल आहार, युक्तियुक्त उपवास, विवेक-पूर्ण सेवा, विधिपूर्वक ध्यान व सर्वभावयुक्त आत्मसमर्पण.

ह्या पंच-सूत्री साधन-प्रणालीच्या संबंधाने मला जे कांहीं समजलेले आहे व जिच्यावर माझ्या कांहीं मित्रांनीं प्रयोग केलेले आहेत त्याविषयीं जरा विस्तारपूर्वक माहीती करून घेणें जरूर आहे.

प्रथम सांगितलेलेच आहे कीं रामचरित मानसाच्या सुरुवातीच्या पांच सोरठांचा संबंध मानवाच्या पाच कोशांशी आहे; व त्यांमध्यें दिलेल्या, प्रतिपादन केलेल्या साधन-प्रणालीच्या द्वारा आरोग्य, शक्ति, आनन्द, ज्ञान व प्रेम यांचा लाभ घडूं शकतो.

मनुष्यजातीच्या पुढे नेहमीच दोन भिन्न विचार-प्रणालींचा, अभाववाद व विकारवाद यांचा झगडा चालू असतो. ह्या दोन विचारप्रणाली एकमेकीच्या विरोधक आहेत. पहिल्या विचारसरणीप्रमाणें मनुष्य असे समजतो कीं बाह्य वस्तूंच्या साहाय्यानें अभावाची पूर्ति होऊं शकते व अशक्तता भोजनाने, चिन्ता धनप्राप्तीने, अज्ञान अभ्यास केल्यानें दूर करता येतात. दुसरा सिद्धान्त जो विकारवाद त्याच्या विचारसरणीप्रमाणें रोग, चिन्ता, अज्ञान यांचे कारण असे जे विकार शरीर, मन व बुद्धि यांमध्यें विद्यमान आहेत व जे आंतून बाहेर काढल्यावर रोग, चिन्ता व अज्ञान

ताबडतोब नाहींसे होते. माझा असा विश्वास आहे कीं रामचरित मानसामध्यें विकारवादासच मान्यता दिलेली आहे व मानवाच्या पंचकोशांतून हे विकार काढून टाकण्या-साठीं त्यामध्यें प्रतिपादन केलेल्या साधनप्रणालीचे पांच अवयव सांगितलेले आहेत त्यांचा संबंध मानसाच्या पहिल्या पांच सोरठांशी आहे.

पहिल्या सोरठामध्यें गणपतीची प्रार्थना केलेली आहे.

जो सुमिरत सिधि होइ, गननायक करिवर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ, बुद्धि रासि सुभ गुन सदन।।

कोणत्याही ग्रंथाच्या प्रारंभी एका विशिष्ठ देवतेस वंदन केले जाते. त्याचा उद्देश असा असतो कीं त्या देवतेच्या ठिकाणी जे गुण असतात त्या गुणांची ग्रंथकारास आव-श्यकता असते. आणि त्यामुळें ह्या प्रथमारंभीच्या नमना-मध्यें त्या देवतेचे अगदी निवडक अशा गुणांचा उल्लेख असतो. जसे ज्याच्याकडून पैशाची मागणी करावयाची असते त्याला मागणारा कुबेर नांवाने संबोधितो. मानस-कारांनी सुद्धां ह्याच प्रकारें पांच सोरठामध्यें पांच देवतांस नमन, अभिवादन अशा विशिष्ठ हेतूनेच केलेले आहे. पहिल्या सोरठामध्यें ग्रंथाची निर्विघ्न समाप्ति व्हावी म्हणून सिद्धी-दायक व विघ्ननिवारक प्रथमपूज्य अशा गणपतीस नमन केले आहे. गणपतीचे शरीर स्थूल व तोंड हत्तीचे असते. सर्व तत्त्वांमध्यें स्थूल तत्त्व पृथ्वी हे आहे. आणि अन्नमय कोशा-मध्यें पृथ्वी तत्त्वच प्रधान तत्त्व आहे. हत्ती स्थूलतेचे प्रतीक आहे. गणपती ही मूलाधार चक्राची देवता आहे. आणि ह्या चक्रामध्यें कुंडलिनीची गति हत्तीच्या गतीसारखी आहे. चक्रांमध्यें पहिले चक्र मूलाधार हे आहे व देवतांमध्यें प्रथम-पूज्य देवता गणपती ही आहे. गणपती विघ्नहर्ता आहे. कोणतेही कार्य व्यवस्थित होण्यासाठीं मग ते कार्य व्यक्ति-गत, कौटुंबिक, सामाजिक, धार्मिक, ऐहिक किंवा पार-लौकिक असो —सर्व कार्यांमध्यें सर्वप्रथम अशी जी शरीर-विषयक बाधा तिच्यापासून मुक्त व्हावयास पाहिजे. म्हणून ह्या चक्राचा संबंध शारीरिक आरोग्याशीं ठेवून दिलेला आहे. मानसामधील विचारसरणीनुसार हे स्थूल शरीर पाच तत्त्वांचे बनलेले आहे.

छित जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित यह अधम सरीरा।।

अशा पांच तत्त्वांनी बनलेले शरीर केवळ मनुष्याच्याच ठिकाणीं असते नव्हे तर सर्व प्राणिमात्रांच्या ठिकाणीं असते. ह्या शरीरांत परमेश्वर वैश्वानराच्या रूपाने वास करीत असतो :—

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापान समायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ।। गीता.

परमेश्वरच सर्व प्राण्यांच्या शरीरामध्यें वास करीत असून वैश्वानर (अग्नि) रूपानें चारी प्रकारचे अन्न शिज-वीत असतो. अशा प्रकारे शरीर हे पंचमहाभूतात्मक आहे. त्यामध्यें परमेश्वर वैश्वानररूपानें वास करीत असतो; व चारी प्रकारचे अन्न तो स्वतःच शिजवीत असतो. हे मूल तथ्य ध्यानांत घेतले म्हणजे मानस-प्रतिपादित पंच-सूचि साधन-प्रणालीच्या प्रथम अवयवाचे—संतुलित आहाराचे सिद्धान्त-रहस्य समजू शकते व त्या बाबीवर शास्त्रीय प्रयोग करूं शकता येतात.

मनुष्याचे शरीर ज्या पाच तत्त्वांचे बनलेले आहे ती तत्त्वें अनुक्रमें अशी :—पृथ्वी, आप, तेज, वायू व आकाश. ह्यांमध्यें पहिली चार तत्त्वें आहारविषयक आहेत व पांचवे (आकाश) तत्त्व उपवासविषयक आहे. भारतीय वांग्मया-मध्यें 'हवा खाणें', 'ऊन खाणें' वगैरे वाक्यांचा प्रयोग कर-तात पण 'आकाश खाणें' असा कोणी प्रयोग करीत नाहीं. वास्तविक पाहतां आकाशाचा संपूर्ण समावेश शरीरामध्यें उपवासकालामध्येंच होऊं शकतो.

आकाश हे भोजनाचे, आहाराचे तत्त्व नाहीं. ते उप-वासाचे तत्त्व आहे. बाकीच्या चार तत्त्वांचा आहाराच्या पदार्थांशी ज्या प्रकारचा संबंध आहे ते प्रकार असे :—

धान्याचा संबंध पृथ्वी तत्त्वाशीं आहे. धान्यामध्ये गहू, तांदूळ यांसारखी एकदल धान्ये येतात व डाळींसारखी

द्विदल धान्येंही येतात. तरीसुद्धां डाळींमध्यें हे पृथ्वीतत्त्व अधिक प्रमाणात असते. ही धान्यें शरीराला स्थूलता देतात. जे लोक शारीरिक श्रम जास्त करतात तेच लोक जास्त अन्न खाऊन ते पचवूं शकतात. बौद्धिक श्रम करणाऱ्यांना ह्या प्रकारच्या अन्नाची जरूर कमी असते. म्हणून अशा लोकांनी दिवसांतून एकच वेळ फक्त भोजन करावे, जेवण घ्यावे.

जल तत्त्वाचा संबंध आपल्या जेवण्यांतील भाज्यांशी आहे. त्यांत दुधी भोपळा, पडवळ वगैरेंसारख्या हिरव्या भाज्यांमध्यें जल तत्त्व अधिक प्रमाणात असते व बटाटा, रताळे यांमध्यें कमी असते. ह्या कंदांमध्यें थोडेसे पृथ्वीतत्त्व-सुद्धां असते पण ते धान्यांपेक्षां कमी असते. तसे पाहतां पंची-करण सिद्धांतानुसार पांच तत्त्वांपैकीं प्रत्येक तत्त्वांत बाकीच्या चारी तत्त्वांचासुद्धां समावेश होतो.

अग्नि तत्त्व विशेषेकरून फळांमध्यें असते. त्यांमध्यें तसे पाहिले तर जल तत्त्वसुद्धां भरपूर प्रमाणांत असते. फळें ही सूर्याच्या उष्णतेनें पक्व होतात. छान्दोग्योपनिषदामध्यें सांगितलेले आहे—

तेजो ऽशितं त्रेधा विधीयते ।

ह्या वाक्याचा अर्थ असा आहे कीं आपण ज्या अग्नीचे भक्षण करतो त्याचे तीन भाग पडतात; अग्नि म्हणजे सूर्या-पासून मिळणारे तेज, मिळणारा प्रकाश. ज्यावेळी आपण उन्हांतून हिंडतो, फिरतो व सूर्याच्या उष्णतेनें पिकली जाणारी फळे खातो त्यावेळीं आपल्या शरीरांत अग्नि तत्त्वाचा समावेश होतो. फळे सुद्धां दोन प्रकारची आहेत; एक रस देणारी व दुसरी गर असणारी. गरवाल्या फळांत पौष्टिक तत्त्व अधिक प्रमाणांत असते तर रसदार फळांत शरीर शुद्ध करण्याचे सामर्थ्य असते.

चवथे तत्त्व म्हणजे वायू. हे तत्त्व विशेष प्रमाणांत पालेभाज्यांत असते. ह्या तत्त्वाचा उल्लेख रामायणामध्यें "शाक" शब्दानें व गीतेमध्यें "पत्र" या शब्दानें केलेला आहे. व दोन्ही ग्रंथांमध्यें भोजन पदार्थांच्या यादीमध्यें याचाच प्रथम निर्देश केलेला आहे.

करहिं अहार साक फल कंदा

व

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति

पत्रांमध्यें सुद्धां तुळस, बेल ह्या पत्रांमध्यें शरीर शुद्ध करण्याची शक्ति जास्त प्रमाणांत असते व त्या मानानें पालक, चवळी वगैरे पालेभाज्यांमध्यें ती कमी असते.

अशा प्रकारें रामचरित मानस अनुसार तत्त्वांच्या आधा-रांवर चार प्रकारचे भोजन पदार्थ सांगितलेले आहेत. शाक, फल, कंद व अन्न. व ह्या पदार्थांचा वायू, तेज, आप व पृथ्वी ह्या तत्त्वांशी अनुक्रमें संबंध आहे. दैनिक जीवनांत भोजनांत जर आकाश तत्त्वाचा म्हणजे उपवासाचा समावेश करतां आला तर 'मानस' अनुसार 'समतोल आहार' होऊं शकतो. व अशा समतोल आहारानें शरीर निरोगी व सुदृढ होऊं शकते. माझी समजूत अशी आहे कीं गीतेमध्यें सुद्धां हाच सिन्नान्त प्रतिपादिलेला आहे. पंधराव्या अध्या-याच्या १४ व्या श्लोकांत 'पचाम्यन्नं चतुर्विधम्' असे म्हट-लेले आहे. म्हणजे चार तत्त्वांशी निगडित अशा चार प्रकारांच्या भोजनाचा, आहाराचा येथे उल्लेख आहे; व त्याचे स्पष्टीकरण ८ व्या अध्यायाच्या २६ व्या श्लोकात दिले आहे.

पत्रं पुष्पं फलं तोयं

म्हणजे अनुक्रमे वायु, पृथ्वी, तेज व आप ह्या तत्त्वांचा समावेश येथें प्रस्तुत आहे. अशा प्रकारच्या अर्थामध्यें एक दर्शन व तंत्र विद्यमान असते व त्यांचा क्रियात्मक प्रयोग केला असतां सर्व रोगांचे निवारण होऊं शकते.

जेवणांत काय पदार्थ खावेत याविषयींची चर्चा करतांना किती खावे व कोणत्या वेळी खावे ह्याविषयींही कांहीं नियम आहेत त्या नियमांचे पालन करावयास पाहिजे. परमेश्वर वैश्वानर आहे. यास्तव आंतून ज्या वेळीं व जेवढी अन्न-ग्रहणाची मागणी येईल त्यावेळीं व तेवढेंच अन्न खावयास पाहिजे. भूक नसतांना व केवळ जिव्हालौल्याकरितां अधिक खाणें म्हणजे वैश्वानराची अवहेलना करण्यासारखे आहे आणि त्याचा परिणाम म्हणजे शरीरास कोणता तरी रोग होणें हा आहे. परमेश्वराचा अनादर केल्याने रोग उद्भवतो असा सिद्धांत 'मानसा' मध्यें नमूद केला आहे.

बहुरोग वियोगन्हि लोग हये
भवदंघ्रि निरादर के फल ये ।।

आतां रोगाचा परमेश्वराबद्दल अनादर दाखविण्याशीं

काय संबंध आहे हे समजून घेणें जरूर आहे. जे कांहीं मला समजून आलेले आहे ते भगवान वैश्वानराचेच रूप आहे. पहा.

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः

अशा भगवंताची अवहेलना आपण केव्हां करतो तर ज्या वेळीं आपण भुकेशिवाय आप्त किंवा मित्र यांच्या आग्रहास्तव किंवा जिभेच्या चोचल्याकरितां जास्त अन्न खातो तेव्हां. भोजनाचा संबंध शक्तीशी असल्याने श्रम करण्याच्या अगोदर अन्नग्रहण करणे हाही भगवंतांचा अनादर केल्यासारखे आहे. म्हणून रामायणांत दोन प्रहर होण्याच्या अगोदर अन्न ग्रहण करूं नये असे सांगितलेले आहे.

रिषय संग रघुवंश मनि करि भोजन विश्राम।
बैठे प्रभु भ्राता सहित दिवस रहा भरि जाम ।।

म्हणजे भोजनोत्तर विश्रांति घेतल्यानंतर एक प्रहर म्हणजे तीन तास दिवस बाकी राहिला. म्हणजे त्यांनी मध्यान्हसमयीं भोजन केले असे स्पष्ट केले आहे. "रिषय संग" या शब्दांचा अर्थ असा आहे कीं विरक्तांच्या भोजनाची ही वेळ आहे. विरक्त म्हणजे ते लोक कीं ज्यांना दिवस भरांत कांहीं विशेष काम करावे लागत नाहीं असे. अयोध्या कांडामध्यें जेथें गृहस्थी लोकांच्या भोजनाची चर्चा केलेली आढळते तेथें संध्याकाळच्या वेळी भोजन होत होते असा उल्लेख आहे.

पय अहार फल असन एक,
निसि भोजन एक लोग ।
करत राम हित नेम व्रत;
परिहरि भूषन भोग ।।

भोजनासंबंधी अंतिम व अत्यन्त आवश्यक नियम असा आहे कीं परमेश्वर वैश्वानराच्या रूपानें सर्व प्राणिमात्रांच्या शरीरांत वास करीत असतो. म्हणून भोजनोत्तर काही वेळ वैश्वानराकरितां घालविणें अनिवार्य आहे. गीतेमध्यें भगवंताने म्हटलेले आहे

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ।।

यज्ञाच्या शेष भागाचे ग्रहण करणारे सज्जन सर्व पापांपासून मुक्त होतात; तसेच स्वतःकरितांच केवळ जे अन्न भक्षण करतात ते पाप भक्षण करतात; ते पापी होत. अशाच अर्थाचे मनुस्मृतीमध्येंही असेच वचन आहे.

अघं स केवलं भुंक्ते यः पचंत्यात्मकारणात् ।

म्हणजे भोजनाच्या अगोदर कांहीं अन्न काढून ठेवणें जरूर आहे. तो भाग माझ्या समजुतीप्रमाणें चतुर्थांश भाग होय; कारण भोजन चतुर्विध आहे. अशा प्रकारे जो मनुष्य अन्न ग्रहण अन्न कोणत्या प्रकारचे खावे, किती खावे, केव्हां खावे या सर्व गोष्टींचा विचार करून करतो त्याला आरोग्य निरंतर प्राप्त होते.

दुसऱ्या सोरठामध्यें सूर्यास अभिवादन केले आहे :—

मूक होइ बाचाल, पंगु चढ़इ गिरिवर गहन ।
जासु कृपा सो दयाल, द्रवउ सकल कलि-मल-दहन ।।

छान्दोग्योपनिषद्—प्रपाठक ६ खंड ५ मधील तिसऱ्या ऋचेमध्यें असे म्हटलेले आहे :—

तेजोऽशितं त्रेधा विधीयाते । तस्य यः
स्थविष्टो धातुस्तदस्थि भवति, यो मध्यमः
स मज्जा, योऽणिष्टः सा वाक् ।।

म्हणजे जे तेज आम्ही खातो त्या तेजाचे स्थूल भागाने हाडे, मध्यम भागाने मज्जा व सूक्ष्मतम भागाने वाणी बनते. पुढल्या ऋचेमध्यें असेच सांगितले आहे.—तेजोमयी वागिति । म्हणजे वाणी ही तेजोमय आहे.

अशा प्रकारे अग्नितत्त्वाचा वाणी व अस्थि यांच्याशी संबंध आहे. "मुक्या" माणसाला "वाचाळ" व "पंगू" माणसाला "उंच पर्वत" चढण्याचे सामर्थ्य सूर्याच्या शक्तीपासूनच मिळते. तसेच "कलिमल दहना" मधील दाहकता हाही ह्या अग्निचा, तेजाचा गुण आहे. विनयपत्रिकेचे दुसरे पद जे "दीन दयालु दिवाकर देवा" यामध्येही 'दयालु' शब्दाचा अर्थ जसा मानसाच्या दुसऱ्या सोरठामध्यें वापरण्यांत आलेला आहे तो सूर्याचाच वाचक आहे. म्हणजे मानसामध्यें दुसऱ्या सोरठांत सूर्यासच वंदन, नमन केलेले आहे असे सिद्ध होते.

शरीरामध्यें वास करीत असलेल्या सूर्यदेवतेचे स्थान मणिपूर चक्र हे आहे. त्या देवतेच्या कृपेनें मल जळून जातो. विकारवादाच्या सिद्धांतानुसार मलामुळें शरीरांत कमजोरी येते. म्हणून मलनाश झाला म्हणजे शरीरांत शक्तीचा संचार होतो. संपूर्ण मलनाश झाला म्हणजे अखण्ड शक्ति जागृत होते.

ह्या सिद्धान्ताच्या क्रियात्मक प्रयोगासाठीं मानस-प्रतिपादित उपोषणाचा सिद्धान्त असा आहे कीं साधकानें क्रमा-

क्रमानें अन्न कन्दमूल, फळे व शाकभाजी यांचा त्याग करून केवळ जल व वायू भक्षण करून राहावे :—

संवत् सहस मूल फल खाए। साग खाइ सत वरष गंवाए।
कछु दिन भोजन बारि बतासा, किये कठिन कछु दिन उपवासा।

अशी ही मानसामध्यें उपवासाची पद्धति सांगितलेली आहे.

तिसऱ्या सोरठामध्यें विष्णूस वंदन केलेले आहे. विष्णु ही जलाची अधिष्ठात्री देवता असून तिचे स्थान अनाहत (हृदय) चक्रामध्यें आहे व मानसामध्यें जलाचा संबंध रसाशी आहे :–

बिनु जल रस कि होइ संसारा।

रसाची उत्पत्ति हृदयामध्यें होत असते. म्हणून विष्णूची कृपा झाली म्हणजे अखण्ड रसाची (आनंदाची) प्राप्ती होऊं शकते. हे विष्णुव्यापक तत्त्व आहे. मानसामध्यें असे निर्देशन आहे कीं जी सत्ता सर्वांठायीं व्यापून आहे तिचा क्रियात्मक आदर करणें म्हणजे तिची समय, शक्ति, धन व भोजन यांच्या द्वारा सेवा करणें आहे. अशा प्रकारे सर्वांचे हित साधल्यानें दुःखाचा नाश होतो.

कबहुं कि दुःख सबकर हित ताके।

परंतु सेवेमध्यें सच्चा भाव आणल्यानेच ती सेवा फलदायि होते. ह्या सेवेबद्दल रामायणांत खालील शब्दांनीं उल्लेख केलेला आहे.

हमहिं कृतारथ करन लगि, फल तृन अंकुर लेहु।

कोणत्या तरी दीन दुःखी माणसास 'मदत' करणे म्हणजे कांहीं वास्तविक पाहतां सेवा करणें नव्हे. विवेक व सामर्थ्य यांना अनुसरून, परमेश्वराला स्मरून सेवाभावाने दुसऱ्यांकरितां जो समय, जी शक्ति, जे धन अर्पण केले जाते त्या सेवेस मानसाच्या ह्या पंच-सूत्री साधनप्रणालीमध्यें "विवेकपूर्ण सेवा" अशी संज्ञा दिली आहे. ह्या साधनप्रणालीतील हा तिसरा अवयव. अशा सेवेनें अखण्ड रसाची प्राप्ति होते. माझ्या समजुतीप्रमाणें मनुष्य दहा इंद्रियांकरवीं सुखाची अपेक्षा करतो तेव्हां आपल्या धनाचा, पैशाचा एक दशमांश त्यानें सेवेकरतां खर्च केला पाहिजे.

चवथ्या सोरठामध्यें श्री शंकरास वंदन केले आहे. शंकर ही वायूची अधिष्ठात्री देवता असून तिचे शरीरामधील स्थान आज्ञाचक्रामधील भ्रूमध्य. प्राणायामाच्या अभ्यासानें श्वासाची गति रोखली जाते किंवा प्रेमातिरेकामध्यें जेव्हां श्वासाची गति अवरुद्ध होत जाते तेव्हां मन स्थिर किंवा निर्विषय होऊं लागते. जेव्हां चित्ताच्या वृत्ति निरुद्ध केल्या जातात तेव्हां त्या स्थितीस योग म्हणतात :—

"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" आणि मानसप्रणीत सिद्धांतानुसार योगाभ्यासानेच ज्ञान प्राप्त होते. धर्म ते विरति जोग ते ज्ञाना।

म्हणजे शंकराच्या कृपेनें अखंड ज्ञान प्राप्त होते. परंतु त्यासाठीं 'विधिवत्' ध्यानाचा अभ्यास करणें आवश्यक आहे. त्याची प्रक्रिया 'मानसा' मध्यें नारदाच्या प्रकरणामध्यें अशा प्रकारें दिलेली आहे. प्रथम मनास केंद्रीभूत करण्याकरितां कोणत्या तरी बिन्दूवर (शब्द, रूप आदि) ध्यान लावावयास पाहिजे.

निरखि सैलसर बिपिन बिभागा।
भयउ रमापति पद अनुरागा।।

नंतर सुमिरनची स्थिति प्राप्त होते. ज्या स्थितीमध्यें मनाच्या दोन्ही अवस्था मल-लय व विक्षेप राहूं शकत नाहीत :—

सहज विमल मन लागि समाधि।

आणि अहंकार समूळ नष्ट होतो. अशा प्रकारें अभ्यासाने बुद्धीमध्यें प्रकाश येतो व त्यामुळें सगळीकडे एकच सत्ता दृष्टिगोचर होऊं लागते. असे झाल्यानें भय नाश पावते कारण भय हे द्वैतभावातून निर्माण होते.

शेवटल्या पाचव्या सोरठामध्यें गुरूस वंदन केले आहे. गुरूचे तत्त्व आकाश व चक्र सहस्र दल कमल आहे. आकाश हे व्यापक तत्त्व आहे व अद्वैताची अनुभूति झाल्यावर त्या सर्वव्यापक प्रभूस शरण गेल्यानें, त्यास सर्वस्व समर्पण केल्यानें निजत्व संबंध प्रस्थापित होतो. पहा :—

सुर नर मुनि सचराचर साईं।
मैं पूछउं निज प्रभु की नाईं।।

अथवा

विश्वनाथ मन नाथ मुरारी।

हा निजत्व संबंध प्रस्थापित करण्याकरितां सर्वभावेन आत्मसमर्पण करणें जरूर आहे. ज्याप्रमाणे कन्या विवाहसमयीं आपल्या पतीला सर्वभावेन आत्मसमर्पण करते त्याप्रमाणें शरणागत भक्तानें भगवंतास आत्मसमर्पण करावयास पाहिजे.

स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिन्हके सब तुम्ह तात–

असे समजून भक्त प्रभूला आत्मसमर्पण करतो. हा बुद्धीच्या पलीकडील विषय आहे. ह्याचा अनुभव फक्त विशेष अशा गुरु-कृपेनेंच होऊं शकतो.

मराठी अनुवादक–गणेश नीलकंठ पुरंदरे.

रामचरित मानस ग्रंथामध्ये श्रद्धा व विश्वास यांचे दर्शविलेले स्वरूप

– परमपूज्य श्री हृदयनारायण (य गीजी)

भवानी शंकरौ वंदे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ।।

रामचरितमानस या आपल्या ग्रंथामध्ये प्रारंभीच गोस्वामी तुलसीदासजी यांनी शिव व पार्वती यांस नमन केले आहे. या त्यांच्या कृपेखेरीज हृदयस्थ अशा परमात्म्याचा साक्षात्कार होणे नाही असे आग्रहपूर्वक सांगितलेले आहे. रामायणामध्ये रामच परमात्मा, हृदयस्थ ईश्वर समजला गेला आहे.

अन्तरयामी राम 'तथा' सबके उर अन्तर बसहुं' आदि । वगैरे वचनामध्ये अशा प्रकारे शिव-पार्वती यांच्या कृपेने रामाचे दर्शन होते असे सिद्ध होते. तेव्हा राम हे साध्य व शिव हे साधन असा रामचरितमानामधील सिद्धांत आहे. हा अर्थ खालील शब्दांमध्येही दिलेला आढळेल :

सिव सेवा कर फल सुत सोई ।
अविरल भगति राम-पद होई ।।
जा पर कृपा न करहिं पुरारी ।
सो न पाव मुनि भगति हमारी ।।

म्हणजे शिवकृपेने राम-भक्तीचा लाभ होतो व राम-भक्तीची रूपरेखा खालील शब्दात स्पष्ट केली आहे––

राम भगति मनि उर बस जाके ।
दुःख लवलेस न सपनेहुं ताके ।।

म्हणजे ज्याच्या हृदयामध्ये रामभक्ति रूपी मणि वसत आहे त्याला स्वप्नांत सुद्धा दुःखाचा लवलेशही सहन करावा लागणार नाही. अशा तऱ्हेची दुःख–लवलेश–विहीन–अवस्थेची मागणी ही प्राणिमात्राची मौलिक मागणी आहे. व ह्या मागणीची पूर्ति शिव–पार्वतीच्या कृपेने होऊ शकते. जर राम म्हणजे दुःख–लवलेश–विहीन अवस्था मानली तर शिव–पार्वती हे भक्ति व ज्ञानरूपी साधन आहे. ह्या साधनाचेद्वारा दुःखाची निवृत्ति होते.

ग्यानहि भगतिहि नहिं कछु भेदा ।
उभय हरहिं भव-सम्भव खेदा ।।

अशा प्रकारे साधनतत्त्वाचे दोन भाग केले आहेत. एक विचार-प्रधान व दुसरा भावना–प्रधान–किंवा असे समजा की साधनाचे दोन मार्ग आहेत. एक म्हणजे ज्ञान किवा चिकित्सेचा मार्ग; व ज्याला श्रद्धा किंवा सत्य-शोधनाचा मार्ग असेही म्हणता येईल. व दुसरा म्हणजे भक्ति किंवा सरळ विश्वास हा मार्ग.

भवानी शंकरौ वंदे श्रद्धाविश्वास रूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्।।

ह्या श्लोकांत "याभ्यां" असा जो शब्द आहे त्यावरून हे स्पष्ट होते की भगवान्–साक्षात्कारासाठी शेवटी दोन्ही गोष्टीची जरूरी आहे. म्हणजे जाणणारा मानतो व मानणारा समजून घेतो. अर्धनारीश्वराच्या स्वरूपाचे हेच रहस्य आहे.

अशा प्रकारे आपण पाहतो की श्री रामचरितमानस ग्रंथामध्ये पार्वतीस विचारप्रधान व शंकरास भावना–प्रधान साधकाच्या रूपाने वर्णिलेले आहे.

विचार–प्रधान साधनेच्या दृष्टीने सर्वात प्रथम ही गोष्ट आवश्यक आहे की साधकास आपल्या विचार-प्रणालीमध्ये संशय किंवा अविश्वास उपन्न होणे. कारण तो मानीत असलेल्या विचारप्रणालीमध्ये असंतोष किवा अविश्वास किंवा संशय उत्पन्न झाल्याखेरीज संशोधनाची किंवा चिकित्सा करण्याची प्रवृत्ति त्याचे ठिकाणी निर्माण होणार नाही. मानसामध्ये पार्वतीचे जे चरित्र

दिले आहे ते वाचले असता असे समजूत येते की प्रथम तिचा असा विचार होता की :–

ब्रह्म जो व्यापक विरज अज, अकल अनीह अभेद ।
सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत वेद ।।

परंतु जेव्हा तिने शंकराच्या तोडून

"जय सच्चिदानन्द जग पावन ।"

असे शब्द ऐकले तेव्हा सतीच्या मनात संदेह उत्पन्न झाला की आपले ज्ञान बरोबर आहे की नाही. तिच्या पुढे एक अडचण उभी राहिली. एक असे की तिची समजूत अशी होती की चराचरामध्ये व्यापून राहिलेली सत्ता एका रूपात अवतरत नाही व दुसरे असे की तिने प्रत्यक्ष आपल्या डोळ्यांनी पाहिले की श्रीराम जानकीच्या वियोगाने अडाणी माणसासारखे दुःखाने व्याकुळ झालेले आहेत अशा श्री रामचंद्राला भगवान् शंकर प्रणाम करीत आहेत व त्यांचे रूप पाहून आनंदात रममाण होत आहेत. ह्या समस्येमुळेच सतीच्या मनांत, तिच्या विचारात संदेह उत्पन्न झाला व त्या संदेहामुळे तिच्या मनांत श्रद्धा किंवा चिकित्सा जागृत झाली व सत्याच्या ह्या आंतरिक स्वरूपाचे ज्ञान झाले व शंकरांनी तिला अनेक प्रकारे समजून सांगण्याचा प्रयत्न केला की त्यांनी श्रीरामचंद्राना परमेश्वरस्वरूप मानावे. यासंबंधी मानसांत स्पष्ट उल्लेख आहे. तो असा —

मुनिधीर जोगी सिद्ध संतत विकल मन जेहि ध्यावहीं ।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं ।।
सोइ राम व्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी ।
अवतरउ अपने भगत हित निजतंत्र नित रघुकुलमनी ।।

परंतु

'लाग न उर उपदेस जदपि कहेउ सिव बार बहु ।"

असे होणे स्वाभाविक होते; कारण सतीची विचार सरणी ही शंकराच्या विचार सरणीहून सर्वथैव भिन्न आहे. जेथे शंकर भक्ति किंवा सरळ विश्वास पाहून म्हणजे हृदय जाणून त्याच्या दर्शनाची इच्छा करतात तर सती आपल्या बुद्धिने संपूर्ण माहिती मिळविल्यानंतरच त्याला मान्यता देण्यास तयार होत आहे. जेथे शंकर व पार्वती यांच्या विचारांत किंवा मार्गात इतका महत्त्वाचा फरक आहे तर सती शंकर सांगतील ते नीट समजून घेतल्याखेरीज, त्याची चिकित्सा केल्याखेरीज कसे कबूल करणार ? तेव्हा शंकराची आज्ञा पाळून त्यांच्या सांगण्याच्या खरेपणाची परीक्षा करण्याकरिता ती प्रवृत्त झाली.

पुनिपुनि हृदय विचारि करि,
धरि सीता कर रूप ।
आगे चलि होई पंथ तेहि,
जेहि आवत नर भूप ।।

सतीचा अंदाज असा होता की जर श्रीराम नुसते एखादे राजपुत्र असले तर तिचे कृत्रिम रूप पाहून तिला सीताच समजतील परंतु जर ते परमेश्वरस्वरूप असले तर शंकरांनी सांगितल्याप्रमाणे ते असे समजतील की त्यांची परीक्षा घेण्याकरिता सती सीतेचे रूप धारण करून बसली आहे. परंतु भगवान रामचंद्राने तिला पाहिल्यावर तिच्यापुढे हात जोडले व नमस्कार केला. यावरून हे सिद्ध झाले की त्यांनी सतीस बरोबर ओळखले. एवढेच नव्हे तर त्याच्याहीपुढे जाऊन त्यांनी सतीस विचारले की, "शंकर कुठे आहेत व आपण या अरण्यात एकटे का हिंडत आहात ?" ह्या प्रश्नाच्या उत्तरात दोन अर्थाचे दिग्दर्शन होईल. एक सर्वज्ञता व दुसरी अल्पज्ञता. या प्रश्नाने सतीला आपल्या इन्द्रियजन्य व बुद्धिजन्य ज्ञानाची विफलता कळून चुकली. इन्द्रियजन्य ज्ञानामुळे सतीला श्रीराम एखाद्या राजपुत्रासारखे दिसले. व आपल्या बुद्धिजन्य ज्ञानामुळे ती सीतेचा वेश धारण करून या गोष्टीची परीक्षा घेण्यास निघाली की श्रीराम हे परमेश्वराचे अवतार आहेत की एक साधारण मनुष्य प्राणी आहेत. परंतु या कामीसुद्धा तिच्या बुद्धीने पलट खाल्ली व अशा तऱ्हेने आपल्या बुद्धिजन्य ज्ञानाचीही निरर्थकता तिच्या दृष्टोत्पत्तीस आली. आणि शेवटी तिला असे वाटू लागले की श्रीरामचंद्राना आपण आपल्या इंद्रियजन्य ज्ञानानेही (Perecptual knowledge) ओळखू शकणार नाही की आपल्या बुद्धिजन्य ज्ञानानेही (Intellectual knowledge) नाहीं.

जेव्हा साधकाची अशी मनःस्थिति होते म्हणजे जेव्हा त्यास "दुःख" होते तेव्हा परमेश्वर त्याला आपल्या स्वरूपाचे किंचिद् दर्शन देतो.

जाना राम सती दुख पावा ।
निज प्रभाव कछु प्रगट जनावा ।।

व सतीला एक विलक्षण अनुभूति झाली –

जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना ।
सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रवीना ।।

अशा प्रकारच्या दर्शनाने "हृदय कंप तन सुधि कछु नाहीं" अशी स्थिती तिची होऊन गेली व डोळे मिटून ती मार्गामध्येच बसूनराहिली. आणि पुन: डोळे उघडले तो काय ? पुढे काहीच दिसून आले नाही.

सती–चरित्रामध्ये ह्या प्रसंगाचे विस्तृत वर्णन आहे. पण थोडक्यात सांगावयाचे म्हणजे ह्या अनुभूतीचे दोन परिणाम घडून आले.

(१) अशा तऱ्हेच्या शोधामध्ये (Trial & error) दोष राहतात. व ह्या दोषांमुळे साधकाला दु:ख भोगावे लागते.

'सती कीन्ह सीता कर वेषा ।'

शंकराच्या इष्टदेवाच्या स्त्रीचे रूप फक्त परीक्षा पाहण्याच्या हेतूने धारण केले हे खरे पण शंकराच्या दृष्टीनुसार (भक्तिपंथानुसार) ही चूक झाली व त्याचा परिणाम असा झाला की तिला शंकराचा परित्याग करावा लागला व कष्ट भोगावे लागले––

हृदय सोचु समझत निज करनी ।
चिन्ता अमित जाइ नहिं बरनी ।।

म्हणून शंकरांनी

"एहि तन सतिहि भेंट मोहिं नाहीं ।"

असा महान् संकल्प केला.

(२) सतीला असे समजून चुकले की दक्षाची मुलगी झाल्याकारणाने सत्याची अनुभूति प्राप्त करण्यास ती असमर्थ ठरली कारण दक्षाचे व शंकरांचे वैमनस्य होते. बुद्धीच्या मार्गाने जाणाऱ्याला तत्त्वाचे ज्ञान होण्याच्या कामी ज्ञाता व ज्ञेय यामध्ये कार्यकरण संबंध (Subject obect relation) राखावा लागतो. ह्यामुळेच बुद्धिवाद्याला अद्वैततत्त्वाची अनुभूति होणें कदापिही शक्य नाहीं. आणि असे पाहून सतीने आपल्या शरीराचा त्याग केला.

पिता मंदमति निंदत तेही । दच्छ सुक्र सम्भव यह देही ।।
तजिहउं तुरत देह तेहि हेतू । उर धरि चन्द्रमौलिबृष केतू ।।

शेवटी सतीने दक्षकन्येच्या शरीराचा त्याग केला व ती पार्वती किंवा हिमालयाची कन्या म्हणून पुन: जन्मास आली. आता तिने ज्ञानाच्या तिसऱ्या मार्गाचा अवलंब केला. तो मार्ग म्हणजे इंद्रिये व बुद्धि यांना रोखून, निरोधून ज्ञान मिळविण्याचा मार्ग. ह्या मार्गास अपरोक्ष अनुभूतीचा मार्ग म्हणतात. ह्यास तपस्या म्हणतात व ह्या मार्गाची तीन क्रियात्मक अंगे आहेत.

१. बुद्धिचा निरोध करणें.
२. इंद्रियांचे दमन करणें.
३. अन्नग्रहण न करणें.

उर धरि उमा प्रानपति चरना ।
जाइ बिपिन लागीं तप करना ।।
अति सुकुमारि न तन तप जोगू ।
पति पद सुमिरि तजेउ सब भोगू ।।
नित नव चरन उपज अनुरागा ।
बिसरी देह तपहि मन लागा ।।
संवत् सहस मूल फल खाये ।।
साग खाइ सत बरष गंवाये ।।
कछु दिन भोजन बारि बतासा ।
किये कठिन कछु दिन उपवासा ।।
बेलपाति महि परइ सुखाई ।
तीन सहस संवत् सोइ खाई ।।

अशा तऱ्हेने साधनेच्या तीन्ही मार्गांचा, ज्ञान, विचार व श्रद्धा यांचा अवलंब करून आपली प्रगति करून घेऊन पार्वतीमातेस आपल्या ध्येयाची प्राप्ती झाली :––

भयउ मनोरथ सुफल तव, सुनु गिरिराज कुमारि ।
परिहरु दुसह कलेस सब, अब मिलिहहिं त्रिपुरारि ।।

गीतेमध्येंसुद्धां ज्ञान प्राप्त करून घेण्याविषयीं अशाच तऱ्हेचे वर्णन केलेले आहे. "श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्पर: संयतेन्द्रिय: " म्हणजे श्रद्धावान् तत्परता व इंद्रिय संयम (तपस्या) यांच्या जोरावर ज्ञान उपलब्ध करून घेतो. श्रद्धा प्राप्त होण्याच्या अगोदर साधकाच्या मनांत संदेह

उत्पन्न होतो. आपण शिरोधार्थ केलेल्या विचारामध्ये अविश्वासाची भावना निर्माण झालेली असते. ही अवस्था होऊन गेल्यावर मग श्रद्धा उत्पन्न होते. आणि श्रद्धा जागृत होण्याच्या दृष्टीने श्रीरामचरित मानस हा ग्रंथ फार उत्तम आहे, अनिवार्य आहे. अशा प्रकारे या ग्रंथानुसार ज्ञान किंवा श्रद्धा यांच्या मार्गानें जीवनाचे ध्येय प्राप्त करण्याच्या कामीं, श्रीरामाची प्राप्ति होण्याच्या कामीं खाली दिलेल्या चार पायऱ्या चढल्या पाहिजेत.

१. समस्या. २. श्रद्धा. ३. तत्परता व ४ तपस्या

१. समस्या म्हणजे साधकास आपल्या चालू विचारसरणीत वाटू लागणारा संदेह किंवा अविश्वास.

२. श्रद्धा ज्यामुळे साधकाच्या मनामध्ये सत्य शोधून काढण्याची प्रवृत्ति किंवा प्रबळ इच्छा निर्माण होते.

३. तत्परता, जिच्यामुळे साधक आपली चालू विचारसरणी बदलण्याकरिता शोधून काढलेल्या मार्गावर आपल्या ध्येयाची प्राप्ति होईतोपर्यंत सतत चालत राहतो.

४. तपस्येचा माझा अर्थ असा आहे कीं, आलेल्या अडचणीचा आनंदाने स्वीकार करणे.

श्रीरामचरित मानसामध्ये पार्वतीचे जे चित्र रेखाटले आहे त्यांत ह्या चारी पायऱ्यांचा निर्देश आहे. ह्या पायऱ्या चाढल्यावर तिला आपले ध्येय प्राप्त करण्यामध्यें यश मिळाले.

महात्मा तुलसीदासांच्या 'मानस' ग्रंथांत एक बाजूस पार्वतीमातेचे चरित्र देऊन "ज्ञान" अथवा श्रद्धा या मार्गाचे दिग्दर्शन केले आहे तर दुसऱ्या बाजूस भगवान् शंकराचे चरित्र "भक्ति" किंवा विश्वास या मार्गाचे प्रतीक म्हणून वर्णन केलेले आहे. भक्तिमार्ग म्हणजे आपल्या सरळ स्वभावानुसार अदृश्य गोष्ट प्रत्यक्ष पाहात आहोत असा विश्वास धारण करणे, हृदयविकाराला प्राधान्य देऊन पुढें चालण्याचा मार्ग आहे. भक्तिमार्गांत साधक आपण होऊन कांहीं एक सायास –प्रयास करीत नाहीं. हा तर श्रमरहित शरणागतीचा मार्ग आहे.

सेवक सुमिरत नाम सप्रीती
बिनु श्रम प्रबल मोह दल जीती ।।

शक्तीची साधना श्रवणानें सुरू होते हे मानस ग्रंथांत खालील प्रसंगाच्या संदर्भानें स्पष्ट केले आहे.

राम कथा मुनिवर्ज बखानी ।
सुनी महेस परम सुख मानी ।।

ह्या प्रसंगामध्यें याचा उल्लेख करणें जरूर आहे कीं वाल्मीकि ऋषींच्या आश्रमावर जेव्हा भगवान् रामचंद्र गेले होते तेव्हां मुनिवर्यांनीं त्यांना अशी चौदा ठिकाणे सांगितली कीं जेथें ते सीता व लक्ष्मण यासहीत राहिलेले होते. तर तेथेंही प्रथम श्रवण व मग दर्शनाची इच्छा असा क्रम दिला आहे.

जिनके श्रवण समुद्र समाना ।
कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ।।
भरहिं निरंतर होंहिं न पूरे ।
तिन्ह के हिय तुम कहँ गृह रूरे ।।

ह्याच्या नंतर दर्शनाची इच्छा :—

लोचन चातक जिन्ह करि राखे ।
रहहि दरस जलधर अभिलाषे ।।

अशा प्रकारें आपणांस दिसून येते कीं भक्तिमार्गामध्यें श्रवणानंतर दर्शनाचा क्रम आहे. भक्त जेव्हां भगवंताचे गुणानुवाद ऐकतो तेव्हां त्याच्या हृदयामध्ये त्याच्या दर्शनाची प्रबळ इच्छा आपोआप जागी होते व तशी ती होणे अगदी स्वाभाविक आहे. कुंभज ऋषीच्या आश्रमामध्यें भगवान रामचंद्राचे गुणगान ऐकल्यावर शंकरांच्या मनांत त्यांना (श्री रामचंद्राना) पाहण्याची उत्कट इच्छा उत्पन्न झाली. ही गोष्ट 'मानसाच्या' खालील ओळींत फार सुंदर पद्धतीने सांगितलेली आहे:—

हृदय बिचारत जात हर
केहि विधि दरसन होइ ।

भक्त म्हटला म्हणजे त्याला काही योग्यता, असावयास पाहिजे असे नाही की त्याने काही प्रयास करावयास पाहिजेत असे नाही की त्याने काही साधना करावयास पाहिजे असे काही नाही. त्याला फक्त तीव्र अभीप्सा पुरेशी आहे; व "राम सदा सेवक रुचि राखी ।" या वचनानुसार शंकराना श्रीरामाचे दर्शनही झाले व ते आनंदात मग्न होऊन गेले.

संभु समय तेहि रामहि देखा ।
हिय उपजा अति हरषु विसेषा ।।

परंतु भक्ताच्या जीवनामध्ये हा आनंद कायमचा टिकण्याकरिता त्याचे अंतःकरण परासक्ति व पराश्रय याविरहित सर्वथैव झाले पाहिजे. शंकर आपली अर्धांगी जी सती तिच्याबद्दल त्यांना ममत्व होते व तिच्यावर त्यांचे अतिशय प्रेम होते. ह्या संसारात जोपर्यंत कोणत्याही वस्तूच्या किंवा व्यक्तीच्या बाबतीत आत्मीयता व प्रीति यांची वाढ होत नाही तोपर्यंत आनंदाची धारा सतत चालू राहात नाही. तेव्हा शंकराचा विकास होण्याच्या दृष्टीने ही गोष्ट अत्यंत आवश्यक होती की सतीच्या बाबतीतली त्यांची ममत्वाची भावना नष्ट व्हावी व त्यासाठी भगवंताने सतीच्या डोक्यांत सीतेचा वेष धारण करावा अशी कल्पना निर्माण केली व तो वेष धारण करून रामचंद्राची परीक्षा घ्यावीं अशी बुद्धि तिच्यामध्ये निर्माण केली अशा तऱ्हेने एकीकडे ज्ञान मार्गावलंबी सतीने आपल्या कल्याणाच्या दृष्टीने इन्द्रियजन्य ज्ञान, त्यानंतर बुद्धिजन्य ज्ञान व त्यानंतर आत्मज्ञान अशा एकामागून एक क्रमाने सोपानावरील पायऱ्या चढल्या तर दुसरीकडे सतीकडून सीतेचा वेष धारण केला गेल्याने सीतेशी आपल्या स्त्रीसारखा प्रेमभाव राखणे हे भक्तिनिष्ठेच्या दृष्टिकोनातून शंकर पाप समजले :—

सती कीन्ह सीताकर वेषा ।
सिव उर भयेउ विषाद विशेषा ।।
जो अब करउं सती सन प्रीती ।
मिटइ भगति पथ होइ अनीती ।।

परंतु

परम प्रेम नहिं जाइ तजि
किये प्रेम बड़ पाप ।

शंकराच्या ज्या हृदयामध्ये श्रीरामाला पाहून आनंद झाला त्याच हृदयात आता 'तीव्र संताप' आला; आणि याचे कारण तेच ममत्व की जे नष्ट करण्याकरिता त्यांनी स्वतः ही परिस्थिती निर्माण केली. आणि अशी ही समस्या उपस्थित झाल्यावर भक्तास भगवंताला शरण जाण्याखेरीज दुसरा कोणताही उपाय सुचत नाही. तेव्हा शंकरानी फक्त श्रीरामचंद्राचे ध्यान केले. त्याबरोबर त्यांच्या अंतःकरणात सतीचा त्याग करण्याविषयीचा आदेश स्फुरित झाला व त्याकरिता पुरेसे मनः सामर्थ्य प्राप्त झाले. हे खाली दिलेल्या चौपाईवरून स्पष्ट दिसून येते.

तब संकर प्रभु पद सिर नावा ।
सुमिरत राम हृदय अस आवा ।।
एहि तन सतिहि भेंट मोहिं नाहीं ।
शिव संकल्प कीन्ह मन माहीं ।।

वरती आलेलेच आहे की भक्तिमार्गाच्या साधकाला स्वतः होऊन काही प्रयास किंवा परिश्रम करावे लागत नाहीत. ह्या मार्गाप्रमाणे फक्त भगवंताचे नामस्मरण पुरेसे आहे. तेव्हा शंकरानी आपली समस्या सोडविण्याच्या दृष्टीने भगवंताचे चिन्तनस्मरण केले तेव्हा त्यांना आदेश मिळाला की आपल्या शरीराने सतीचा त्याग करण्याचा संकल्प करावा व असा त्याग करण्यास्तव पुरेसे मनःसामर्थ्य त्यांना मिळाले. हे प्रकरण फार लांब आहे पण थोडक्यात सांगावयाचे म्हणजे सतीने आपल्या पित्याच्या यज्ञांत, यज्ञकुंडामध्ये आपल्या शरीराचा त्याग केला व त्याबरोबर शंकराच्या हृदयात वैराग्य निर्माण झाले :—

जब ते सती जाइ तनु त्यागा ।
तब ते शिव मन भयेउ विरागा ।।

वैराग्याचा उदय झाल्यावर भक्त सारखा नाम–जप घेऊं लागतो व सज्जनांच्या सहवासांत आश्रय घेतो जो भक्तिमार्गामध्ये अनिवार्य आहे:—

जपहिं सदा रघुनायक नामा ।
जहँ तहँ सुनहिं राम गुन ग्रामा ।।

ह्यामुळे हृदयात आनंद व बुद्धीमध्ये ज्ञान संचरू लागते व मोह समूळ नष्ट होऊन जातो :—

चिदानन्द सुखधाम शिव,
बिगत मोह मद काम ।

ह्यानंतर भक्त परमेश्वराला स्मरून हे प्राप्त झालेले ज्ञान व प्राप्त झालेला आनंद इतर जिज्ञासू व भक्त, त्यांची जशी योग्यता असेल व त्यांची जशी आवश्य-

कता असेल त्याप्रमाणे त्यांच्यामध्ये वाटून देण्याकरिता बाहेर पडतो :—

बिचरहिं महि प्रभु हृदय धरि,
सकल लोक अभिराम ।

अशा तऱ्हेनं हे ज्ञान लोकाना देत असताना ज्याच्या त्याच्या योग्यतेप्रमाणे विचार व ज्ञान यांचा मार्ग अनुसरणाऱ्यांना ज्ञान तसेच भक्ति व विश्वास यांचा मार्ग अनुसरणाऱ्यांना, अशा साधकांना ते भगवंताचा गुणानुवाद ऐकवितात :—

कतहुँ, मुनिन्ह उपदेसहिं ग्याना ।
कतहुँ रामगुन करहिं बखाना ।।

अशा तऱ्हेने काही काळ गेल्यावर भक्तिनिष्ठा दृढ होत जाते व श्रीरामाचे सम्यक् दर्शन प्राप्त होते. हे खालील ओळींवरून ध्यानात येते:—

नेम प्रेम संकर कर देखा ।
अविचल हृदय भगति कै रेखा ।।
प्रगटे राम कृतग्य कृपाला ।
रूप सील निधि तेज बिसाला ।।

आणि हे दर्शन झाल्यावर भक्तिमार्ग अनुसरणाऱ्या भक्ताच्या हृदयामध्ये कोणत्याही प्रकारची कामना शिल्लक राहात नाही. ही स्थिति प्राप्त झाल्यावर भक्त हा भगवंताचे निमित्त बनून जातो व त्याच्याच केवळ आज्ञेनुसार कर्मानुचरण करू लागतो. ह्याचेही प्रमाण मानसामध्ये मिळते. ज्या प्रकरणात श्रीराम शंकरांना पार्वतीला विवाह करण्याविषयी सुचवितात :—

"अब बिनती मम सुनहु सिव,
जो मो पर निज नेहु ।

जाइ बिबाहहु सैलजिहिं,
यह मोहि मांगे देहु ।।"

या विनंतीचा शंकरानी स्वीकार केला पण त्याबरोबर ते हेही म्हणाले की असे करणे उचित होणार नाही पण आपली आज्ञा आहे ती पाळली पाहिजे:—

कह सिव जदपि उचित अस नाहीं ।
नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं ।।

अशा प्रकारे आपणास दिसून येते की जेव्हां विचार, श्रद्धा किंवा ज्ञान या मार्गांनी इंद्रिय–जन्य ज्ञान व आत्मज्ञान यांच्याद्वारा साधकास सत्याचा अनुभव होतो तेव्हां भक्ति किंवा विश्वास या साधनमार्गामध्ये साधकास क्रमश: विकासाच्या सोपानाच्या खालीलप्रमाणे पायऱ्या चढाव्या लागतात :—

१. परमेश्वराच्या गुणानुवादाचे श्रवण.
२. त्याच्या दर्शनाची लालसा.
३. परमेश्वराचे किंचित् दर्शन होणें.
४. परमेश्वरकृपेनें विद्यमान परिस्थितीद्वारा दोषांची निवृत्ति.
५. सतत नामजप व सत्संग.
६. चिदानन्दाचा लाभ आणि जिज्ञासू व भक्त यांच्यामध्ये अधिकार भेदानुसार त्या चिदानंदलाभाचे समुचित वितरण कीं जेणेकरून
७. परमेश्वराचे सम्यक् दर्शन प्राप्त होते व भक्त परमेश्वराचा निमित्तमात्र बनून जातो.

'ज्ञान' व 'भक्ति' किंवा श्रद्धा व विश्वास या दोन्ही मार्गांनी साधकाच्या ह्या संसारातील सर्व दु:खांचा लोप होतो. पण त्यांतसुद्धा परमेश्वराला भक्तजन अधिक प्रिय ह्या कारणाकरितां होतात कीं ते परमेश्वराचेच निमित्तमात्र बनून, किंकर होऊन त्याच्या लीलेच्या खेळामध्ये सहभागी होतात व ज्ञानीजन संसाराला अनित्य व दु:खदायक समजून **"अनित्यं असुखं लोकम्"** मोक्षाची प्राप्ति करून घेतात.

तिन्ह महँ प्रिय बिरक्त पुनि ग्यानी ।
ग्यानिहु ते अति प्रिय बिग्यानी ।।
तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा ।
जेहि गति मोहि न दूसरि आसा ।।

मराठी अनुवादक :— गणेश नीलकंठ पुरंदरे,
ॲडव्होकेट, मुंबई.

उपवासाची मीमांसा व ते करण्याचे तंत्र

– श्री कुबेर प्रसाद गुप्त

साधारणपणें उपवासाचा अर्थ भोजन न करणे असा होतो व त्याचा हेतू पचनेंद्रियांना विश्रांति देणें असा असतो. परंतु उपवासाचा मुख्य उद्देश हा आध्यात्मिक स्वरुपाचा असून शारीरिक उद्देश हा गौण स्वरूपाचा असतो, आणि आजकालच्या युगांत उपवासाचा प्रयोग राजनैतिक स्वरूपामध्ये शस्त्र ह्या रूपानें केला जाऊ लागला आहे.

उपवास हा शब्द दोन शब्द जोडून केला गेला आहे. उप आणि वास. उप याचा अर्थ जवळ व वास याचा अर्थ बसणें किंवा वास करणें. उपवासाचा उद्देश त्या परमेश्वराच्या जवळ बसणें कीं जो शक्ति, ज्ञान व आनंद यांचे अक्षय भांडार आहे व उपवास करण्याची योग्य पद्धति समजावून घेऊन ती आपण आत्मसात् करणे असा आहे. विस्तावाच्या जवळ बसून आपण त्याचा गुण जो उष्णता त्याचा असाच अनुभव घेतो. त्याच प्रकारे परमेश्वराचेजवळ बसून आपणांस शक्ति, ज्ञान व आनंद यांची प्राप्ति होईल. परंतु उपवास म्हणजे भोजन वर्ज्य करणें व पचनेंद्रियांना विश्रांति देणें असा अर्थ साधारणतः घेतला जात असल्याकारणानें या ठिकाणीं आम्ही उपवासाची मीमांसा व तो कसा करावा याच्या तंत्राचे विवरण करण्याचे योजिले आहे. मानस-साधना मंडलाच्या पंचसूत्री साधनेमधील उपवास हे दुसरे अंग आहे व ह्या अंगामध्यें शास्त्रीय पद्धतीनें उप-वास करून अखंड शक्ति कशी जागृत करून घ्यावी याचे विवरण केले आहे. तशी शक्ति जागृत होऊं शकते असे ह्यात आश्वास दिलेले आहे.

ह्या पुस्तकामध्यें आपणांस जागोजागीं असे संदर्भ मिळतील कीं त्यांवरून ही गोष्ट स्पष्ट व सिद्ध होईल कीं भोजन शक्ति उत्पन्न करीत नाही. ते फक्त शरीराचे पोषण करते. आणि असे असल्यानें भोजन व घेतल्याने एक वेळ शरीराचे वजन (श्रमाने होणारी झीज भरून न निघाल्यानें) कमी होईल पण जीवनशक्तीचा ऱ्हास किमपिही होत नाहीं ही गोष्ट निर्विवाद आहे. परंतु साधारणपणें लोकांचा असा अनुभव असतो व जे मी सांगत आहे त्यांत असल्याचा बिलकुलही अंश नाही कीं जेवण टाकल्यानें अशक्तता वाटूं लागते व जेवण घेण्याचे पुनः सुरू केल्यावर पुनः श्रम करण्यास अंगात ताकद येऊं लागते. ह्या विरोधाभासाची आपण येथे छाननी करू या.

आपल्या शरीरांत जीवनशक्ति मुख्यत्वें करून तीन प्रकारचे कार्य करीत असते. पहिले कार्य म्हणजे जेव-लेल्या, खाल्लेल्या अन्नाचें पचन करणें; दुसरे कार्य म्हणजे आपल्या दैनंदिन कार्यक्रमास आवश्यक जो श्रम ते आपल्याकडून करवून घेणें व तिसरे कार्य म्हणजे आपल्या शरीरांत एकत्र झालेल्या अनिष्ट विषारी, विजातीय द्रव्यांचा, जमलमत्रादि पदार्थांचा निचरा करणें. ह्या जीवनशक्तीची काही स्वाभाविक वैशिष्टचें सुद्धां आहेत. त्यांत एक वैशिष्ठ्य असे आहे कीं, ह्या जीवन-शक्तीचा उपयोग रुपये–पैसे यांच्या क्रम-शक्तीप्रमाणें तीन्ही कार्यांकरितां एकाच वेळीं करतां येत नाहीं. म्हणजे तीन्ही प्रकारची कार्ये एकाच वेळीं जीवनशक्ति तीन-हिश्श्यांत वाटून करतां येणार नाहींत. तिचा उपयोग एखाद्या नोकरासारखा करता येतो. म्हणजे एका वेळीं एकच काम तो जसे व्यवस्थितपणें करतो. उदहरणार्थ आपल्याला असा कधी कधी अनुभव आलेला असेल कीं जेवणानंतर आपण जर काम करूं लागलो तर आळस

परहित सरिस धरम नहिं भाई ।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ।।

येतो व कधी कांहीं कारणानें जवण न करतां जर आपण काम करू लागलो तर जेवल्यानंतरच्या पेक्षा ते काम अधिक व्यवस्थितपणे व चांगले होते. याचे कारण केवळ इतकेच आहे की, ज्या वेळी आपण जेवण करतो त्यावेळी जीवन शक्ति ते अन्न पचविण्याच्या कामी ओढ घेत असते तर आपण त्या जीवनशक्तीला श्रम करण्याच्या कामीं ओढून घेत असतो. ह्या ओढाताणीमध्ये कोणतेही काम नीट होत नाही व जेवण न घेता आपण जर ते श्रमाचे काम करूं लागलो तर सगळी जीवनशक्ति केवळ त्या श्रमाच्याच कामामध्ये वापरली जाऊन ते काम त्यामुळे फार चांगले होते.

ह्या जीवनशक्तीचे दुसरे एक वैयक्तिक वैशिष्टच आहे. आजकालच्या पीढीच्या लोकांच्या शरीरात मलसंचय फार झालेला आहे. तेव्हा जीवनशक्तीला जेव्हां-जेव्हां अवसर मिळतो तेव्हां तेव्हां हा मल काढून टाकण्या करिता ती स्वतःच इटू लागते. आणि म्हणून आपण अन्न जरी खाल्ले नाही तरी पचनाचे कार्य करावयाचे नसल्यामुळे जीवनशक्ति हे मल काढून टाकण्याच्या कामाला आपण होऊन लागते. आयुर्वेदामध्ये दिलेले आहे—

'आहारं पचति शिखी दोषानाहार वर्जितः'

ह्या सूत्रांत ह्याच सिद्धांताचे प्रतिपादन केले आहे. शिखी (जठराग्नीच्या रूपातील जीवन शक्ति) अन्न पचविते पण अन्न दिले नसल्यास ती जीवनशक्ति मल निष्कासन दोषांच्या पचनाच्या कार्यास प्रवृत्त होते. आणि जर शरीरामध्ये मल फार साठलेला असेल तर तो मल शरीराबाहेर काढून टाकणें अत्यावश्यक झालेअसेल तर जीवन शक्तीची स्वाभाविक प्रवृत्ति अशी आहे की पचनाच्या कार्यापासून सुट्टी मिळाल्याबरोबर मल काढून टाकण्याच्या कामापासूनसुद्धा सुट्टी मिळावी म्हणून ती ते काम अधिक जोराने व त्वरेने करू लागते; आणि त्याचा परिणाम असा होतो की शरीरातली उष्णता वाढते व कधी तापही येतो. जेव्हा जीवनशक्ति प्रज्वलित झालेली असते व शरीरांत साचलेला मल शरीरात अधिक वेळ राहू देणे धोक्याचे असते कारण त्यामुळे तोंडास अरुचि प्राप्त होते व शरीरात मलसंचयामुळे उष्णताही वाढते व त्यामुळे श्रमाचे काम करणे कष्टाचे होऊन जाते अशा वेळीं ही जीवनशक्ति आता फक्त मल काढून टाकण्याच्याच कामाला लागते. आपण हे पाहिले असेल की घामाच्या मार्गाने किंवा शौचद्वारा शरीरातून जेव्हां मल बाहेर पडतो. तेव्हां अंगातली उष्णता कमी होते. ताप आपोआप उतरतो. आता पुनः ह्याच विवेचनानुसार असे पहा की ज्या वेळी एक दोन दिवस आपण अन्न घेत नाही व जीवनशक्ति श्रमांचे काम करण्यास जो आपला हिस्सा वापरते तो हिस्साहि तिने जर मल काढून टाकण्याच्या कामीं लागला तर श्रमकरण्यास आपल्याजवळ शक्ति राहणार नाही व या प्रकारालाच आपण अशक्तता आली असे म्हणतो. उपवास केल्यानें जी अशक्तता येते त्याचेकारण हे असे आहे. आता उपवास केल्याने अशक्तता आल्यानंतर पुनः अन्नग्रहण सुरु केल्यावर श्रमाचे काम करण्यास ताकद ताबडतोब कोठून येते ह्या रहस्यमय घटनेचा आपण आता विचार करू. कारण अन्नग्रहण सुरू केल्यावर पचनाचे कर्य व मल निष्कासनाचे कार्य अशी दोन्ही कार्ये पुनः सुरू होतात.

वरती आम्ही सांगितलेले आहेच कीं या जीवनशक्तीचे एक वैशिष्टच असे आहे कीं ही आपली तीन्ही कार्यें, पाचन, मलनिष्कासन व श्रम ही एक समयावच्छेदेकरून व्यवस्थितपणे करते व अन्नग्रहण न केल्यावर पाचनाचे कार्य न उरल्यामुळे शक्तीची जी बचत होते; ती शक्ती मलनिष्कासनाच्या कामीं खर्ची पडते. शरीरांत मल साचलेला असल्यावर जेवण न घेतल्याने वाचलेली शक्ति श्रम करण्याकरितां वापरण्यास आपण मुखत्यार नाहीं. परंतु जीवनशक्ति पाचनाचे कार्य करीत असतांना, ते कार्य स्थगित करून तेथे कार्य करीत असलेली शक्ति श्रमाचे कार्य करण्यास आपण लावूं शकतो. ह्या जीवन शक्तीचे वैशिष्ठच असेही एक आहे कीं तिच्या समोर जर

परहित लागि तजहिं जे देही ।
संतत संत प्रसंसत तेही ।।

वाचनाचे कार्य असेल तर ती मला निष्कासनाचे कार्य करूं शकत नाहीं. ह्याविषयीं जास्त खुलासा उपवासाच्या तंत्राच्या विवेचनाच्या वेळीं अधिक स्पष्ट करू असो. ह्या कारणामुळें जेवण न घेतल्यानें अशक्तता वाटू लागल्यावर मग जेव्हां अन्न आपण खाऊं लागतो तेव्हां मल-निष्कासनाचे कार्य सोडून जीवन-शक्ति अन्न पचविण्याचे काम करूं लागते. जीवन शक्तीकडून अन्न पचविण्याचे काम घ्यावे की श्रमाचे काम करून घ्यावे हा आपल्या मर्जीचा प्रश्न आहे. तेव्हां पचनाचे कार्य बाजूस सारून श्रम करण्याच्या कामास आपण त्या शक्तीला लावतो व आपल्याला वाटते कीं ही शक्ति अन्न खाल्ल्यानें प्राप्त झाली. पण ही चुकीची समजूत आहे. अन्न खाल्ल्यावर ताबडतोब आपल्या अंगात ताकद येते, जीवन शक्ति उत्पन्न होते असे आजचे शरीर विज्ञान-सुद्धां सांगू शकणार नाहीं. आपण नेहमीं लाखों-घोटचवधी माणसे पाहतो कीं जीं सकाळी ९ वाजतां जेवण करून दिवस भर काम करीत असतात; त्याचेही कारण हेच आहे कीं आपल्या मर्जीनुसार पचनाच्या कामीं खर्च होत असलेली शक्ति तेथून काढून घेऊन ती श्रम करण्याच्या कामीं लावू शकतो. आतां कदाचित हे स्पष्ट झाले असेल कीं जेवण न घेतल्यानें जीवनशक्ति साधारणतः श्रमाच्या कार्याकडे खर्च न करतां श्रमशक्तीलासुद्धां मला निष्कासनाच्या कामीं लावते व त्यामुळें आपल्याला अशक्तता वाटते परंतु जेव्हां आपण जेवण घेऊं लागतो तेव्हां ती जीवनशक्ति मल निष्कासनाचे कार्य सोडून देऊन पचनाचे काम हाती घेते व मग आपण आपल्या इच्छेनुसार पचनकार्य स्थगित करून ती शक्ति श्रमाच्या कार्याला उपलब्ध करून देतो व आपली अशी चुकीची समजूत होऊन जाते कीं, अन्न न घेतल्यानें अशक्तता आली व ते घेतल्यानें शक्ति परत आली. आपल्याला स्वतः या रहस्याचा प्रत्यक्ष अनुभव घ्यायचा असेल तर आपण दोन किंवा तीन दिवस मध, लिंबाच्या सरबतावर किंवा हिरव्या पालेभाज्यांच्या रसावर राहून पहा. आणि अशक्तता जर वाट लागली तर एनिमा (त्या पाण्यांत कांहीही न टाकतां) घ्या. एनिमा घेतल्यावर ५–७ मिनिटांनीं शौचाला जाऊन स्नान करा. आपल्याला आढळून येईल कीं एनिमा घेण्याच्या पूर्वीची अशक्तता कुठल्या कुठे निघून गेली आहे व आपल्या अंगात नवीन शक्तीचा व स्फूर्तीचा संचार होऊं लागला आहे. ह्याचेही रहस्य आपण समजावून घ्या. जेवण न घेतल्यानें जीवन शक्तीने श्रमाचे कार्य करणाऱ्या शक्तीला मल निष्कासनाच्या कामाला गुंतून टाकले व त्यामुळें आपल्याला अशक्तता वाटू लागली होती पण जेव्हां आपण एनिमा घेऊन स्नान केले व त्या योगे मल-निष्कासनाच्या कामाला हातभार लावला तेव्हां जीवन शक्ति तेथून मोकळी होऊन श्रमाचे काम करावयाला मोकळी झाली. वर दिलेल्या विस्तृत विवेचनावरून आपल्या ध्यानांत आले असेल कीं जीवन शक्ति ही नित्य कांहींना कांहीं कार्य करीतच असते. तुमच्या जेवण्याशी किंवा न जेवण्याशीं त्याचा कांहीं अर्थाअर्थी संबंध नाहीं. कारण आपण जेव्हां कसरत करतो त्या वेळीं सुद्धां श्वासोच्छास व घाम या मार्गांनीं विकाराचे (मलाचे) निष्कासन होत असते. तेव्हां ह्या प्रकारनेंसुद्धां अशक्तता वाचण्याविषयीची जी चुकीची समजत होते त्याबद्दल खात्री होईल. शरीरांतील विजातीय द्रव्यांना बाहेर काढून टाकल्यावर आपली कांहीं स्वाभाविक इच्छा व हानिकारक सवयी यांपासून सुटका होऊन जाते. ह्या इच्छा व संसयी दृढ इच्छा शक्तीच्या प्रयोगाला, विकासाला सतत विरोध करीत असतात; किंवा त्या काबूत ठेवल्या तरी त्यांच्यापासून कायमची सुटका होणें शक्य नसते.

आतां प्रश्न असा उपस्थित होतो कीं जर अन्न न घेतल्यानें मलनिष्कासनाचे कार्य तीव्र गतीनें सुरू होते व श्रमाचे कार्य करावयास सुद्धां शक्ति शिल्लक राहात नाहीं तर मग उपवास करावा कीं नाहीं व जर करावयाचा ठरला तर सर्व प्रकारची श्रमाची कार्यें बंद ठेवावयाची कीं काय ? आतां उपवास-कालांत श्रमाचे काम न करतां पूर्ण विश्रांति घेता आली तर फारच उत्तम. त्यामुळें उपवासाचा पुरेपूर फायदा घेता येईल. पण असे जरी शक्य न झाले तरी मल-निष्कासनाची एक अपेक्षेपलीकडील सरळ व सोयीची पद्धति आहे कीं जिचा प्रयोग केला असतां शरीर हळहळू मलविरहित

राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार ।
तुलसी भीतर बाहिरहू, जो चाहसि उजियार ।।

करता येते. ह्या दोन्ही परिस्थितीत (विश्रांति मिळो कीं न मिळो) उपवासाचे तंत्र, त्याचा प्रकार एकच आहे. आतां आपण उपवासाच्या तंत्राचा विचार करण्याच्या मुद्यापर्यंत आलो आहोत. परंतु त्याचा विचार करण्यापूर्वी आपण कांहीं जरूरीच्या गोष्टींचा विचार करूं. त्या गोष्टी म्हणजे अशा शरीरातून मलविसर्जन होते वेळीं, दररोज एकत्र साचलेला मल कोणत्या तऱ्हेनें व्यवस्थितपणें निघून जाईल त्याचा विचार; दररोज खाल्लेल्या अन्नाचे कोणत्या प्रकारे नीट पचन होईल व श्रमाचे काम करावयास आपणांस जितक्या शक्तीची जरूरी आहे ती कशी उपलब्ध होऊं शकेल याचा विचार करूं.

शरीर निरोगी ठेवण्याकरितां व थकवा न येण्याकरितां आपल्याला जेवणासंबंधीं चार गोष्टी ध्यानांत ठेवल्या पाहिजेत. प्रथम हा सिद्धांत आपण चांगला समजून घेतला पाहिजे कीं भोजन हे शरीर-निर्मिति तत्त्व असून भोजनानें कांहीं जीवन-शक्ति प्राप्त होत नाहीं. दुसरी गोष्ट म्हणजे जेवणासंबंधीची वेळ. वरती आम्ही सांगितलेले आहेच कीं ही जीवन शक्ति एकाच वेळीं एकच काम व्यवस्थितपणें करते. म्हणून मलाचा निचरा होणें, श्रमा काम करणें व अन्नपचन करणें या तिन्हीं कार्यांकरितां आपण वेळेची योग्य वाटप करणें हे शहाणपणाचे ठरेल. परंतु ही वाटप निसर्ग आपण होऊनच करीत असते. जरूरी एवढीच आहे कीं ही वाटप कशी होत असते हे आपणच समजून घेऊन त्याप्रमाणें आपण आहार-विहार ठेवणें निसर्गाच्या नियमाप्रमाणें सकाळचा वेळ हा मलाचा निचरा करण्याकरितां आहे. दिवसाचा वेळ काम करण्याकरितां व क्षीर सागरांत शेष-शायी भगवान् विष्णु जसे विश्रांति घेत असतात त्याप्रमाणें शरीराचे पोषण केल्यानंतर, जेवणानंतर विश्रांति घेण्याकरितां संध्याकाळ. आमच्या प्राचीन ऋषींनीं ध्या गोष्टीस फार महत्त्व दिले आहे. त्यांनीं एकादशी, प्रदोष वगैरे व्रतांचे पारणें फेडण्याकरितां संध्याकाळचीच वेळ सांगितली आहे. मुसलमान बंधुसुद्धां संध्याकाळच्याच वेळीं आपला उपवास, रोजा सोडतात; व ख्रिस्ती धर्मांतसुद्धां व्रत-उपवास (लेन्ट) यांच्या वेळा पत्रकांत जेवणाची वेळ संध्याकाळचीच दिलेले आहे. तेव्हां ही गोष्ट लक्ष्यात ठेवणें जरूर आहे कीं जर आपण सकाळ कांहीं खाल्ले (आतां सकाळ म्हणजे ऋतुमानाप्रमाणें दुपारीं १२ वाजेपर्यंतही लांबू शकते) व तो पदार्थ पचण्याकरितां ज्या पाचन शक्तीची जरूरी आहे ती जीवन शक्ति आपल्या स्वभावानुसार मल-निष्कासनाचे काम सोडून देऊन पाचनाच्या कामाला जुंपली जाईल व मलनिष्कासनाच्या कामात व्यत्यय उत्पन्न होऊन परिणामीं थकवा वाटू लागेल व शरीराचे आरोग्य बिघडेल. (आणि अशा पाषनाच्या कामांत व्यग्र असलेली जीवनशक्ति आपण आपल्या इच्छेनुसार श्रमाच्या कामाला लावली तर ते मलनिष्कासनाचें कामही नीटपणें होणार नाहीं) म्हणून आपण साधारणपणें १२ वाजेपर्यंत कांहीं खाऊं नये. रात्रीच्या खाल्लेल्या अन्नाचा निचरा करण्याच्या दृष्टीनें मनुका किंवा बेदाणा रात्रभर भिजून ठेवून सकाळी त्या खाण्यात किंवा लिंबाचे सरबत मध टाकून घ्यावे किंवा हिरव्या पालेभाज्यांचा रस घ्यावा. परंतु हे कांहीं न घेतांना शौचास स्वाभाविकपणें ठीक झाले तर फार उत्तम. कारण कीं दिवसभर आपल्याला ऑफिसमध्यें किंवा उद्योग धंद्यामध्यें किंवा श्रमाचे काम करावे लागते तेव्हां आपल्याला दिवसा असे अन्न घेणें श्रेयस्कर आहे कीं जे पचावयास हलकें आहे व पोटांत जरा जास्त वेळ पडून राहिले तरी कुजणार नाहीं. अशा प्रकारचे अन्न म्हणजे ऋतु कालोद्भव व ज्या ठिकाणीं जी फळें किंवा हिरव्यागार पिकलेल्या पालेभाज्या हे होय. अशा तऱ्हेचे अन्न घेतल्यानें श्रमाचे का करण्यांत व्यत्यय कमी होतो. नंतर संध्याकाळीं, श्रमाचे काम करून टाकल्यावर साधे अन्न घ्यावे व त्यानंतर कमीत कमी एक किंवा अर्धा तास निश्चित होऊन पूर्ण विश्रांति घ्यावी. दिवसांतून एक वेळ व तेही सायंकाळीं जेवण घ्यावे याबद्दल आम्ही एक जुन्या इतिहासातला दाखला देतो. पूर्वी रोम व ग्रीसमध्यें शारीरिक शक्तीला फार महत्त्व दिले जात असे. तेथील सैनिक ज्या दिवशीं फक्त एकच वेळ व तेही संध्याकाळचे खात त्या दिवशीं त्यांची ताकत व सदनशक्ति वाढत असे. रोमन सैनिकांची

बारि मथे बरु होइ घृत, सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल ॥

तर अशी गोष्ट सांगतात कीं त्यांना भारी वजनदार शस्त्रास्त्रें वाहून न्यावी लागत; तो बोजा इतका असावयाचा कीं तो घेऊन आजकालच्या शिपायांना जर लढावयास सांगितले तर त्यांच्याकडून लढणें शक्य होणार नाहीं; पण अशी जवनदार शस्त्रास्त्रें धारण करून रोमन सैनिक मात्र फार जलदीने दौड मारूं शकत असत *डॉक्टर व शेतकरी, ज्यांना दिवसांच जेवण घेतल्यानंतर विश्रांतीकरितां वेळ मिळू शकतो त्यांनीं १२ वाजल्यानंतर जेवण घ्यावें व रात्रीं फलाहार करावा किंवा दूध घ्यावें. व ते सगळचांत शेवटीं झोप घेण्यापूर्वी घ्यावे.

भोजनासंबंधी तिसरी गोष्ट म्हणजे ते किती घ्यावयाचे ह्याचे प्रमाण. याबद्दल दोन गोष्टी विशेष ध्यानांत ठेवल्या पाहिजेत. कारण असे अन्न हे शरीर निर्मितीचे तत्त्व आहे म्हणून जोपर्यंत शरीराची वाढहोत आहे म्हणजे २५-३० वयोमानापर्यंत जे भोजन घ्यावयाचे ते व त्या वयोमानानंतर शरीराची वाढ होणें बंद होते व थोडे श्रम केल्यावरही शरीराची थोडी बहुत झीज होऊं लागते त्या वेळीं घ्यावयाचे भोजन याच्यामध्यें फार फरक आहे. आपल्या ध्यानांत आले असेलच कीं वर जो भोजनाचा क्रम दर्शविला आहे त्यामध्यें भोजनाचा निम्मा भागच अन्नाचा असतो. दुसरी गोष्ट अशी कीं जेवण कांहीही घ्या पण भुकेपेक्षां चार घास कमी खा; कीं ज्यामुळें खाल्ल्यानंतर पोटांत निरनिराळ्या पाचक रसांची क्रिया व्यवस्थितपणें चालूं शकेल. किती खावयाचे याचे प्रमाण असे सांगता येईल कीं भूक जितकी असेल त्याच्या तीन-चतुर्थांश इतके अन्न घ्यावे.

भोजनासंबंधी चवथी व शेवटली ध्यानांत ठेवण्यासारखी गोष्ट म्हणजे ते कशा पद्धतीनें घ्यावे. आजचे आहारशास्त्र ज्या गोष्टींवर (म्हणजे अन्नाचे प्रकार, त्यामधील क्षार, त्यामधील आम्लत्त्व, खनिज द्रव्यें, व्हिटॅमिन्स वगैरे) सर्वांत जास्त भर देते त्या गोष्टींना मानस साधना मण्डलाच्या विचारसरणीनुसार, पहिल्या दर्जाचे तर नव्हेच पण दुसऱ्या किंवा तिसऱ्या दर्जाचासुद्धा दर्जा दिलेला नाहीं. त्या गोष्टींना चवथा म्हणजे अगदी शेवटला दर्जा दिलेला आहे. हे शरीर आकाश, वायु, तेज, आप व पृथ्वी या तत्त्वांचे बनलेलें आहे. त्यापैकीं भोजनामध्यें आकाश तत्त्वाचा संबंध येत नाहीं. बाकीच्या चारी तत्त्वामध्यें खाद्य पदार्थांचे वर्गीकरण केलेले आहे. पृथ्वी तत्त्वामध्यें, धान्य, दाळीं येतात, जलटत्त्वामध्यें भाज्या, तेज तत्त्वामध्यें, मुद्दाम उबवून पिकविलेली अशी नसून केवळ सूर्याच्या उष्णतेनें पिकलेली फळें येतात व वायु तत्त्वामध्यें सर्व प्रकारच्या पालेभाज्या विशेषेकरून येतात. म्हणजे आपल्या जेवणांत शरीराचे आरोग्य राखण्याच्या दृष्टीनें आकाश तत्त्वाखेरीज बाकीच्या चारी तत्त्वांचा समावेश होणें आवश्यक आहे. शुद्ध रक्तामध्यें ८० टक्के क्षार व फक्त २० टक्के आम्लता असते. अन्नामधील (डाळी, गहूं, तांदूळ) बहुतेक पदार्थांत आम्लता जास्त असते व पालेभाज्यांमध्यें क्षार सर्वांत जास्त असतात. फळांमध्येंही क्षार तत्त्व अधिक प्रमाणांत असते. यासाठीं एकंदर जेवणांत अन्न असें थोडे व इतर पदार्थ जास्त असावयास पाहिजेत. आपल्या लक्ष्यांत आले असेलच कीं वर दर्शविलेल्या भोजनक्रमामध्यें ही शर्तही पुरी केली गेलेली आहे.

भोजनाचे प्रकार तसेच त्यामधील विविध पदार्थांच्या उपयोगित्वाबद्दलचे वर्णन पंच-सूत्री साधनेच्या अवयवांविषयीं जे विवरण केले आहे त्यात आलेच आहे. ह्या

* The armies of Rome & Greece, where at the height of their efficiency & when both kingdoms were pre-dominant, on account of their military strength, ate but one meal a day & That in ⁊he evening & it is reported of the Roman Soldier that the combined wesght of armour & equipment was so great that the average modorn soldier could not carry it & fight, while the Roman soldier ran at good speed, fully encumbered.

'Health via Food'
by
Dr. Howard Hay, M. D.

तिमि सुख सम्पत्ति बिनहिं बुलाये ।
धर्मसील पँहि जाहिं सुभाये ।।

ठिकाणीं मल संचयाच्या प्रमुख कारणांविषयीं थोडी चर्चा करणें उचित ठरेल. ज्याप्रमाणें मनामधील आसक्ति (चिकटण्याची वृत्ति) व बुद्धीमधील अहंकार (जळण्याची जाळण्याची वृत्ति) आपल्यामधील आध्यात्मिक प्रगतीच्या मार्गांत अडथळे आणते त्याचप्रमाणें शारीरिक स्तरावर श्लेष्मा (Mucus) व अम्ल (Acid) युक्त अन्न मल-संचयाचे प्रमुख कारण आहे. ह्या दोन्हीतसुद्धा अम्लयुक्त भोजन श्लेष्मायुक्त भोजनापेक्षां अधिक हानिकारक आहे. खल किंवा चिकटण्याची वृत्ति ज्यांमध्यें जास्त असे पदार्थ श्लेष्मा निर्माण करतात उदाहरणार्थ गहूं, तांदूळ, बटाटा वगैरे. आतां अम्लयुक्त पदार्थांची उदाहरणें घेऊ. सुक्या मेव्यातील बदाम, काजू, अक्रोड, शेंगदाणा ह्या पदार्थांपासून आम्ल जास्त निर्माण होते. गरापेक्षा सालीमधून, कवचामधून जास्त निर्माण होते. इतर पदार्थांत तांदूळ, गहूं, डाळी, मांस व चहा यांमध्यें उत्तरोत्तर जास्त जास्त अशी आम्लता निर्माण करण्याची प्रवृत्ति असते. आजकाल चहाला कोणी हानिकारक समजत नाहीं उलट थोडचा फार प्रमाणांत तो लाभप्रद आहे असेच समजतात. कांहीं कांहीं डॉक्टर लोक तर आजारी माणसांनी व लहान मुलांनीं सुद्धां चहा घेत जावा असे सांगतात. ह्या चहाच्या ठिकाणीं मांसापेक्षां ८ पर आम्लता निर्माण करण्याची ताकद आहे. चहामध्यें आम्लता किती मोठचा प्रमाणावर असते हे जर पाहावयाचे असेल तर डॉ. हेग एम्. डी. यांचे निवेदन जरूर वाचावे. डॉ. हेग यांनीं या विषयावर पुष्कळ वर्षें संशोधन केलेले असून प्रयोगही केलेले आहे. व अशा संशोधन-प्रयोगांतीं त्यांनी निवेदन केले आहे. ते म्हणतात :—'मला जर या जगांतील सर्वांत जास्त विषारी अशा पदार्थांची यादी करावयास सांगितली तर त्यांत अग्रस्थान, पहिला नंबर मी चहाला देईन.*

आतां फक्त उपवासाच्या तंत्राविषयीं, (विधिविषयीं) सांगावयाचे शिल्लक राहिलेले आहे. मानस साधना मण्डलाच्या पंच-सूची साधन-प्रणालीच्या पहिल्या व दुसऱ्या अवयवाच्या विवेचनामध्यें प्रथम सांगितलेलेच आहे; तेव्हां त्यांतील कांहीं मुद्यांची पुनरुक्ति येथें होण्याचा संभव आहे

उपवासासंबंधींच्या प्रविधिमध्यें आपण तीन प्रकारचे भोजनक्रम पाळावयास पाहिजेत. एक दैनिक, दुसरा साप्ताहिक व तिसरा नवरात्रांत पाळावयाचा. दैनिक भोजनासंबंधी, याचा उद्देश, याची वेळ, प्रमाण व प्रकार हे समजून घेतल्यावर याप्रमाणें आपल्या जेवणांत हळू हळू फरक करावयास हवा. सकाळीं जर जलपान करीत असाल तर ते ताबडतोब बंद करावयास हवे. सकाळीं ९–१० चे सुमारास जर कांहीं खात असाल तर त्याचे प्रमाणे थोडेसे कमी करावयास हवे; व प्रकारांत अन्नाचे प्रमाण कमी करून त्याऐवजीं भाज्या जास्त प्रमाणांत खाल्ल्या पाहिजेत. अशा प्रकारें कांहीं दिवसांनीं अन्न अजिबात बंद करून व भाज्यांचे ही प्रमाण हळू हळू कमी करीत जाऊन भाज्यांचे ऐवजीं जी फळे आपल्या गांवांत व चालू ऋतूंत मिळत असतील ती खावींत. त्यानंतर सकाळच्या ९–१० च्या वेळीं अशी फळेंही खाण्याचें बंद करून त्याऐवजीं त्या वेळीं फक्त मध किंवा लिंबाचे सरबत घ्यावे किंवा रात्री भिजविलेल्या मनुका किंवा बेबाणा यांचे पाणी फक्त घ्यावे. दुपारच्या वेळीं फळें किंवा भाजीपाला घ्यावा व संध्याकाळच्या वेळीं अन्न प्रधान (तांदूळ, गहूं, डाळ, भाजी यांचे) भोजन घ्यावे.

---

* If I was asked to prepare a list of the most poisonous foods in the world, I would place TEA at the Top.

Dr. Haig. M. D.

जिमि सरिता सागर महिं जाहीं ।
जद्यपि ताहि कामना नाहीं ।।

साप्ताहिक भोजनाच्या क्रमामध्यें आपण आठवडयांतून एक दिवस व्रत पाळायला पाहिजे. ह्यांत एकच प्रकारचे भोजन कांहीं एक आठवडे घेत राहणें ह्याचाही समावेश होतो. ह्या व्रतानें शरीर नवीन परिस्थिति आपण होऊन अनुकूल करून घेऊं शकते. ह्या व्रताचा क्रम असा. प्रथम जेवणातून धान्य काढून टाकून फक्त फळे, पाले भाज्या व दूध यांवर राहावे. नंतर जेवणातून दूधही काढून टाकून फक्त फळें व भाज्या यांवर राहावे. नंतर भाज्याही काढून टाकून फक्त फळे घ्यावी व शेवटीं फळें सुद्धां काढून टाकून नंतर फळांच्या किंवा भाज्यांच्या रसावर किंवा मध व लिंबू यांच्या सरबतावर राहावे. याच्याही पुढें जाऊन फक्त पाण्यावर राहण्याचा अभ्यास करावा.

नवरात्रामध्यें लागोपाठ नऊ दिवस उपास करतात. यामध्येंही साप्ताहिक व्रताच्या क्रमानुसारच भोजनात फरक करीत जावा. पहिल्या वर्षी दोन्ही नवरात्रांत अन्न-रहित भोजन, दुसऱ्या वर्षीच्या नवरात्रांत अन्न-दूध-रहित व फक्त फळें व भाज्या यांचे भोजन, तिसऱ्या वर्षीच्या नवरात्रांत फक्त रस व फळें यांचे भोजन व चवथ्या वर्षीच्या नवरात्रांत फळे व भाज्यां यांचा रस किंवा मध व लिंबू यांचे सरबत असे भोजन करीत जावे. असे व्रत केल्यानें पुढें पुढें तर असा अनुभव येतो; कीं दिवसां नेहमीचे काम करीत राहूनही कोणत्याही प्रकारचा थकवा येत नाहीं. केवळ फळांवरच राहण्याचे व्रत पाळल्यानें साधकानें मध्येंच दोन किंवा तीन दिवस फक्त हवेवरच राहण्याचा अभ्यास करून पाहावा; त्यात त्यास यश येईल. व्रतांच्या संबंधी पंच-सूत्री साधनेच्या पहिल्या व दुसऱ्या अवयवांच्या विवेचनामध्यें विस्तारपूर्वक विवरण केले आहे. तेही पाहावे. आतां शेवटीं फक्त नवरात्र व्रतासंबंधी दोन गोष्टींचे विवरण करतो. तेवढें पुरेसे आहे.

व्रतांच्या संबंधीं आणखी एक गोष्ट ध्यानांत ठेवली पाहिजे. जेव्हां उपवास व्रतामध्यें केवळ फळें व भाज्यांचा रस किंवा मध व लिंबू यांचे सरबत यांवर जेव्हां काम भागवले जाते किंवा केवळ पाण्यावर नि र्वा ह केला जातो तेव्हां दररोज सकाळीं साध्या पाण्याचा किंवा किंचित् साबण टाकलेल्या पाण्याचा एनिमा घ्यावा. व प्राण्याचे प्रमाणही वाढ यत जावे. जेव्हां उपवास सोडायचा तेव्हां प्रथम कोणत्या तरी फळाचा रस किंवा भाजीचे पाणी घ्यावे व कोणत्या तरी फळाचा रस किंवा भाजीचे पाणी घ्यावे व ते घेतल्यानंतर दोन अडीच तासांनी हिरव्यागार पाले भाज्यांचे भरपूर जेवण घ्यावे; अशाकरितां कीं आंतड्यांमध्यें जो मल थोडा बहुत साचलेला असेल तो अशा रेचक व भाजीपाल्याच्या जेवणानें एकदम बाहेर निघून जाईल.

आपल्या नेहमींच्या कार्यक्रमात साप्ताहिक उपवासाच्या ऐवजीं असेही व्रत करतां येईल कीं प्रत्येक महिन्यामध्यें चार किंवा पाच दिवस लागोपाठ असा उपवास करावा आणि महिन्याच्या शेवटीं साधारणपणें एकच वेळ जेवण घेण्याचे ठरवावे. अशा तऱ्हेच्या उपवासाने फायदा झालेला आढळून आलेला आहे.

आतां उपवासासंबंधीं शेवटीं अगदी सगळयात जास्त महत्त्वाच्या गोष्टीसंबंधाने चर्चा करून हा विषय समाप्त करतो. भोजनासंबंधी वर दर्शविलेल्या क्रमवार व्रतपालन करण्याच्या पद्धतीचा अवलंब करून आपण रोगमुक्त व्हाल; जुनाट रोगांचे सुद्धां निर्मूलन होईल व आंतरिक शक्ति जागृत होईल व त्यामुळें अखंड शक्तीचा लाभ होईल. परंतु त्याबरोबर अशी एक शक्यता आहे कीं, कांहीं दिवसांनी वर निर्दिष्ट केलेल्या भोजन-क्रमाचा लाभप्रद अनुभव घेऊनसुद्धां त्या क्रमाचा त्याग करून पुनः आपल्या

बिधि हरिहर कबि कोबिद बानी ।
कहत साधु महिमा सकुचानी ।।

पूर्वीच्या भोजन पद्धतीचा अंगिकार केला जाणे. अशी उदाहरणें घडलेली आहेत म्हणून सांगण्याचे कारण पडत आहे. अशा तऱ्हेची प्रतिगामी बुद्धि होऊं नये म्हणून, अर्थात् पुन:कोणत्याही रोगाची बाधा न होतां अखंड आरोग्य प्राप्त व्हावे म्हणून आणि कोणत्याही तऱ्हेचा थकवा न येतां जागृत झालेली शक्ति अखंड टिकावी म्हणून पूज्य योगीजींनी एक नियम सांगितला आहे (व त्या नियमाचे पालन केल्यानें शंभर टक्के सफलता झालेली निदर्शनास आलेली आहे) व तो असा. जेवण झाल्यावर आपल्या जठराग्नीस आवश्यक असलेल्या अन्नाचा एक चतुर्थांश भाग किंवा उपवास केला असल्यास ते वाचलेले अन्न दुसऱ्या कोणास कीं ज्याचा जठरासी प्रदीप्त झाला आहे त्या वैश्वानरास तृप्त करण्याकरितां अर्पण करावे व आपली परमेश्वराच्या ठिकाणची कृतज्ञताबुद्धि दर्शवावी. मग तो दुसरा कोणी मनुष्य असो कीं पशू असो कीं पक्षी असो; फक्त एवढेच कीं त्याच्याशीं तुमचा कोणताही, कांहींही संबंध असूं नये. तो तुम्हाला अगदी परका असावा. ह्या विशिष्ठ प्रकारच्या अन्नदानाच्या पद्धतीचा अवलंब केल्यास उपवासांनीं प्राप्त झालेलें आश्चर्यजनक, लाभदायी आरोग्य कायमचे टिकेल व पुन: पूर्वीच्या भोजन पद्धतीचा अंगिकार केला जाण्याची शक्यता राहणार नाहीं.

मराठी अनुवादक : गणेश नीलकंठ पुरंदरे, ॲडव्होकेट, मुंबई.

भाँय कुभाँय अनख आलसहूँ ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ।

जीवनको सब प्रकार सुखी करने के सिद्धान्तों के वैज्ञानिक विवेचन तथा
प्रयोग की व्यावहारिक विधियों के लिए पढ़ें—हिन्दी मासिक

साधना-रहस्य

वार्षिक मूल्य : पांच रुपये । डी-१२/४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ ४

मानस साधना मण्डल, डी–१२/४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ के लिए श्री कुबेरप्रसाद गुप्त द्वारा मुद्रित, सम्पादित तथा प्रकाशित । मुद्रण स्थल : श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस, ७वीं खेतवाडी, बम्बई–४.

उत्तरप्रदेशमें स्वर्ण नियन्त्रणसे प्रभावित व्यक्तियोंके पुनर्वासन हेतु

शासन द्वारा प्रदत्त सुविधाएं

१. इच्छानुसार नये व्यवसाय अथवा उद्योग चलानेके लिये आसान शर्तों, कम ब्याज व लम्बी अवधि वाले ऋण। दिनांक ३१-३-६६ तक प्रस्तुत आवेदन पत्र पर ऋण वितरणकी व्यवस्था है।

२. बिजली, कच्चा माल, आयात-निर्यात व कृषि-हेतु भूमि आदि की सुविधाएं।

३. कक्षा ७ तथा उसके ऊपरके छात्रों व छात्राओंको मासिक पुनर्वासन छात्रवृत्तियां। ३१-३-६६ तक जो छात्र किसी वर्ग (कोर्स) विशेषमें प्रवेश पा चुके थे उन्हें यह अब भी उपलब्ध है।

४. तक्नीकी प्रशिक्षणके लिए सुरक्षित स्थान तथा विशेष सुविधाएं।

५. दीन, दुखी, रोगी, असहाय, वृद्ध पुरुष, विधवाओं तथा अनाथ बच्चोंके लिए विशेष अनुदान-सहायता। परिचय प्रमाण-पत्र सहित प्रार्थनापत्र आने पर।

६. बस या टैक्सी तथा स्कूटर रिक्शा के परमिटके लिए प्राथमिकता व अन्य सुविधाएं।

७. सस्ते गल्ले, शक्कर तथा कोयला डिपो, तेल, ईंट भट्टा आदिकी दूकानों सम्बंधी सहायता।

८. हर जिलेमें स्वर्णकारोंके पुनर्वासन हेतु जिला परामर्शदात्री समितियोंका गठन।

९. सोनेकी चोर-बाजारी (स्मगलिंग) तथा भ्रष्टाचार सम्बन्धी सूचनाएं भी भेजें।

१०. उपरोक्त तथा अन्य किसी भी प्रकारकी कठिनाई या समस्याके निवारणके लिए नीचे लिखे पते पर लिखें:—

जगदीश प्रसाद सिंह

विशेष कार्याधिकारी (स्वर्ण नियंत्रण)

उत्तर प्रदेश शासन, सचिवालय, लखनऊ

ग-५०३०

"अस्पृश्यता निवारण का अर्थ है मनुष्य के बीच की और भिन्न-भिन्न श्रेणी के प्राणियों के बीच की दीवार तोड़ डालना।"

—"महात्मा गाँधी"

"मैं तो यही कहूँगा कि जिस मन्दिर में हरिजन नहीं जा सकते वह मन्दिर नापाक है।"

—"महात्मा गाँधी"

पूज्य बापू के इन विचारों से कुछ कट्टर पंथी सहमत नहीं हुए और वे अब भी अस्पृश्यता मानते हैं अथवा मन्दिर प्रवेश पर रोक लगाते हैं। इस समस्या के समाधान के लिए सरकार ने अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम १९५५ तथा मन्दिर प्रवेश अधिनियम १९५६ पारित किया जिसमें अस्पृश्यता मानना तथा मन्दिर प्रवेश पर रोक लगाना कानूनन दण्डनीय घोषित किया गया। अधिनियम के अन्तर्गत ५००-०० (केवल पांच सौ रुपये) जुर्माना तथा ६ माह की सजा का प्राविधान है।

प्रगतिशील समाज में बाधक ऐसे कट्टर पंथियों को कानून के हवाले कर हम सच्चे नागरिक का कर्तव्य निभायें।

निदेशालय, हरिजन तथा समाज कल्याण, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित

ग-६५७९

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी

तथा

राष्ट्रनायक लाल बहादुर शास्त्री के

जन्म-दिवस पर

'साधना रहस्य' तथा 'बाल-जगत'

की

भावभीनी श्रद्धांजलियाँ

मानस साधना मण्डल

डी-१२१४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ-४

फोन: २६११३

सियाराम मय सब जग जानी । करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी ।।

दि वैस्ट कोस्ट पेपर मिल्स लि०
श्रीनिवास हाउस, वाडबी रोड, बम्बई—१

रजिस्टर्ड संख्या - एल ७६२] सितम्बर-अक्तूबर, १९६९ [इस अंक का मूल्य - दो रुपये

जो सुमिरत सिधि होइ, गननायक करिबर बदन ।
करउ अनुग्रह सोय, बुद्धि रासि सुभ गन सदन ।। १ ।।

मूक होइ बाचाल, पंगु चढ़इ गिरिवर गहन ।
जासु कृपा सो दयाल, द्रवउ सकल कलिमल दहन ।। २ ।।

नील सरोरुह स्याम, तरुन अरुन बारिज नयन ।
करउ सो मम उर धाम, सदा छीर सागर सयन ।। ३ ।।

कुंद इंदु सम देह, उमा रमन करुना अयन ।
जाहि दीन पर नेह, करउ कृपा मर्दन मयन ।। ४ ।।

बंदउँ गुरु पद-कंज, कृपा-सिंधु नररूप हरि ।
महामोह तम-पुंज, जासु बचन रविकर निकर ।। ५ ।।

श्री रामचरित मानस के उक्त प्रारम्भिक पाँच सोरठों के अनुसार मानस साधना मण्डल की मान्यताएं

१. मानव की मौलिक मांगें	– स्वास्थ्य	शक्ति	आनन्द	ज्ञान	प्रेम
२. पञ्च कोष	– अन्नमय	प्राणमय	मनोमय	विज्ञानमय	आनन्दमय
३. पञ्चदेव	– गणेश	सूर्य	विष्णु	शिव	गुरु
४. पञ्च चक्र	– मूलाधार	मणिपुर	अनाहत	आज्ञा	सहस्त्रधार
५. पञ्च तत्व	– पृथ्वी	अग्नि	जल	वायु	आकाश
६. पञ्च स्तर	– शरीर	इन्द्रियाँ	मन	बुद्धि	अहम्
७. पंच स्तरीय विकार	– रोग	निर्बलता	शोक	भय	द्वैत
८. विकारों के कारण	– औषधिसे स्वास्थ्य प्राप्ति की आशा	भोजन से शक्ति प्राप्ति की आशा	धन से सुख प्राप्तिकी आशा	पुस्तकीयसूचना से ज्ञान प्राप्ति की आशा	जो अपने नहीं है उनमें अपनत्व मानना
९. निवारण का उपाय	– संतुलित आहार	युक्तियुक्त उपवास	विवेकपूर्ण सेवा	विधिवत ध्यान	सर्वभावेन आमसमर्पण
१०. जीवनमें प्राप्ति	– अखंड स्वास्थ्य	अखंड शक्ति	अखंड आनंद	अखंड ज्ञान	अखंड प्रेम

मानस साधना मण्डल

प्रधान कार्यालय- डी – १२/४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ –४

फोन : २६११३

शुभकामनाओं सहित

बागलकोट सीमेण्ट कम्पनी लिमिटेड

पंजीकृत कार्यालय : स्टेडियम हाउस, वीर नरीमन रोड, बम्बई–२०

तार : 'लाइमस्टोन' फोन : २९५४५६/२९५४६६

कारखाना : बागलकोट, (जिला–बीजापुर-मैसूर)